उजड़े घर

विश्वम्भर 'मानव'

किताब महल इलाहाबाद

वीणापाणि सान्याल को
जीवन जिनका आभारी रहेगा

उजड़े घर

अमरनाथ का विवाह मुरादाबाद में पक्का हो गया। विवाह करने की उसकी इच्छा बिल्कुल नही थी। वह सोचता था कि उसका जीवन ऐसे ही व्यतीत हो जाय, तो अच्छी बात हैं। लेकिन मनुष्य जो चाहता है वह होता नहीं, होता है वह जो वह नहीं चाहता। अमरनाथ का लालन-पालन उसके ननिहाल के गाँव में हुआ था; अतः बारात वहीं से गयी थी। उसमें सभी प्रकार के लोग थे। श्वसुर उसके सम्पन्न, प्रतिष्ठित और प्रभावशाली व्यक्ति थे; और उन्होंने पूरी शक्ति से बारात का स्वागत किया था, अतः बाराती बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट थे। द्वार पर जब झलमल करते थाल में दीपक लेकर उसकी सास ने आरती उतारी, तो उसने उनकी ओर दृष्टि उठाकर देखा। वे लम्बे आकार की गौर वर्ण और रम्य आकृति वाली महिला थीं। रेशम की साड़ी पहनने के कारण वे और भी भव्य लग रही थीं। अमरनाथ ने विवाह के पूर्व अपनी पत्नी को देखा न था, अतः सास को देखकर उसे संतोष हुआ। लेकिन विवाह-मंडप के नीचे जब उसने एक हाथ को बढ़े हुए देखा, तो वह कुछ उदास हो गया। हाथ का रंग साँवले-पन की ओर बढ़ता हुआ गेहुँआ था। मनुष्य जब तक किसी के गुणों को नहीं पहचानता, वह प्रायः उसकी आकृति से ही उसे जानता है।

वह इस मनोदशा में था ही कि उसकी ओर के पंडित ने पूछा, "गणेश जी कहाँ हैं?"

"गणेश जी का पूजन तो नहीं हो सकता।" कन्या पक्ष के पण्डित बोले।

"तक यह विवाह कैसे होगा?"

"विवाह आर्यसमाजी ढंग से होगा। हम ये ढोंग नहीं मानते।" लड़की के पिता ने एक-एक शब्द पर बल देते हुए कहा।

अमरनाथ के मामा ने उतने ही ज़ोर से उत्तर दिया, "तब यह विवाह नहीं होगा।"

आँगन में सन्नाटा छा गया। दोनों पक्ष अपनी हठ पर थे और दोनों में से कोई भी झुकने के लिए तैयार न था। यह प्रश्न दोनों के आत्म-सम्मान का प्रश्न बन गया था। ऊपर छज्जों पर महिलाओं के बीच भय-मिश्रित आतंक लहराने लगा। अमरनाथ के पिता उसके पास ही बैठे थे। उन्होंने अपने साले की ओर देखा। उनकी आकृति पर कठोरता का भाव था, अतः उन्होंने अपनी दृष्टि झुका ली। फिर कुछ खिसककर उन्होंने अपने बेटे के कन्धे पर हाथ रखा। हाथ अमरनाथ ने हटा दिया। वे एकदम चुप हो गए। अब जो होना हो, वह हो, उन्होंने सोचा।

अमरनाथ सोच रहा था कि यह सम्बन्ध टूट जाय, तो अच्छा है। लड़की देखने उसके गुरु आये थे और मात्र इतने पर यह सम्बन्ध निश्चित हो गया था। अमरनाथ ने अपनी भावी पत्नी को स्वयं देखने का आग्रह किया था। इस बात पर न उसके गुरु सहमत हुए थे और न लड़की के पिता। अमरनाथ चाहता था कि कन्या-पक्ष वाले लड़की को उठा ले जायँ, तो वह भी उठे। इतने में घूँघट से टूटकर एक आँसू सहसा सामने बायें हाथ पर गिरा।

अमरनाथ हिल उठा। इसकी उसने कल्पना तक न की थी। सामने बैठे आर्यसमाजी पण्डित को सम्बोधित करते हुए वह बोला, "आप अपने ढंग से इस विधि को सम्पन्न कीजिए।"

"और मेरी दक्षिणा?" अमरनाथ के पण्डित ने पूछा।

"वह मिल जायगी।"

"लेकिन अमरनाथ···" मामा जी ने टोका।

"लेकिन कुछ नहीं मामा जी।" अमरनाथ ने दृढ़ता से कहा।

अमरनाथ के वृद्ध पिता आगे बढ़ आए। आर्यसमाजी पण्डित से बोले, अब क्या देर कर रहे हैं पण्डित जी?"

इस ओर का भार एक दूसरे आर्यसमाजी पण्डित को दे दिया गया। वर-पक्ष के लोगों को कुछ कम आनन्द आया, लेकिन चारों ओर एक आनंद की लहर फैल गई। इसके उपरान्त विवाह में किसी को भी किसी प्रकार का विघ्न डालने का साहस नहीं हुआ।

ट्रेन में दोनों को एक इन्टर के डिब्बे में बिठा दिया गया। चंदोसी पर गाड़ी बदली तो एक छोटा डिब्बा पीछे की ओर लगा हुआ मिला। चंदोसी-अलीगढ़ के बीच उन दिनों बहुत कम यात्री ऊँचे दर्जों में यात्रा करते थे। एक वृद्ध सज्जन उसमें आये भी, लेकिन नव-दम्पति को देखकर वे दूसरे डिब्बे में जा बैठे। अमरनाथ को उनका यह शिष्ट व्यवहार बहुत अच्छा लगा।

रात का समय था और पीला बड़ा चाँद आकाश में देर का उग आया था। वह खिड़की से बराबर दिखाई दे रहा था। इधर पत्नी ने घूंघट खींच रखा था। अमरनाथ अपने कॉलेज-जीवन में न जाने कितनी शिक्षित लड़कियों के सम्पर्क में रहा था। उसने कल्पना तक न की थी कि उसकी पत्नी घूंघटवाली होगी। लेकिन जो यथार्थ है उससे वह कैसे मुँह मोड़े। फिर भी घूंघट में कुछ था जो मोहक था—क्योंकि वह कृत्रिम नहीं था।

'उमा!' अमरनाथ ने एकदम आत्मीयता के स्वर में पुकारा—जैसे वह न जाने उससे कब से परिचित है।

उमा थोड़ी हिली; लेकिन बोली कुछ नहीं। उसने सम्भवतः अपनी सहेलियों से कुछ क़िस्से सुन रखे होंगे। वैसी ही किसी घटना की आशा से वह शंकित थी।

"उमा, तुम्हें पता तो होगा कि तुम शहर से गाँव जा रही हो और जहाँ जा रही हो वह ग़रीब आदमियों का घर है—इतना मामूली कि वहाँ किसी प्रकार की सुविधा नहीं है; अतः वहाँ कोई सपना लेकर जाना ठीक नहीं होगा।"

उमा चुप।

"अब मैं हूँ, मेरे माता-पिता हैं और तुम। हमारा छोटा-सा परिवार

है। जहाँ भी रहेंगे, सुख से रहेंगे। मैं जल्दी ही कहीं नौकरी पर चला जाऊँगा।"

उमा फिर हिली; पर घूँघट नहीं सरका।

"घर ठीक है। पिता मेरे देवता हैं; लेकिन मा पुराने संस्कारों से युक्त है। स्वभाव से थोड़ी कठोर है—मर्यादा का पालन करने वाली। छुआछूत मानती है। प्रारम्भ में तुम्हे थोड़ी उलझन होगी।"

उमा चुप ही रही।

"तुम सोओगी न ?"

उमा ने सिर हिलाया। तात्पर्य था—नहीं।

अमरनाथ फिर खिड़की के बाहर ताकने लगा। रात में किसी समय उसे नींद आ गई। बीच में उसकी आँख खुली तो पाया उसके सिर के नीचे तकिये लगे हुए हैं। ट्रेन गंगा के पुल को पार कर रही थी और एक विचित्र लय में बँधकर 'घड़' 'घड़' हो रही थी। गाँव का स्टेशन पास आ गया था। अमरनाथ ने आँखें खोलीं। उमा दूसरे कोने पर खिड़की के सहारे बैठी थी। उसने हाथ जोड़कर गंगा जी को प्रणाम किया। अमरनाथ ने एक पुलक का अनुभव किया—यह तो आर्यसमाजी की लड़की नहीं मालूम होती। हो सकता है यह वातावरण का प्रभाव हो। उसने फिर आँख बन्द कर लीं। चाँद के उजाले में उसने उस मुख को देखा—सौम्य, शांत, पावन। आँख मींचकर वह फिर सो गया।

गाँव पहुँचकर उमा ने उन सब रीति-रिवाजों, प्रथाओं और विधियों का पालन किया, जिन्हें करने का आदेश उसकी सास ने दिया। अमरनाथ को विवाह का अनुभव बहुत ही विलक्षण लगा। बारात बिदा होने से पहले ही 'घुड़चड़ी' हुई थी। गाँव के एक ठाकुर साहब के यहाँ से एक बहुत सुन्दर और ऊँचा घोड़ा मँगवाया गया था। अमरनाथ पहली ही बार घोड़े पर चढ़ा था। उसे बार-बार डर लग रहा था कि कहीं गिर न जाय। मौर बाँधने की उसकी इच्छा नहीं थी, फिर भी उसे बाँधना पड़ा। उसे बाँधकर न जाने वह कैसा लगता था—बिल्कुल कार्टून जैसा। यहीं तक नहीं, उसकी एक दूर

की भाभी ने उसके चौड़ा काजल लगाया। उसकी इच्छा हुई वह उसे पोंछ दे। यह क्या तमाशा है! मुरादाबाद में जब बारात चढ़ी तो उसे चार सफ़ेद घोड़ों की बग्घी में बिठाया गया। इसके लिए कलक्टर से विशेष रूप से अनुमति लेनी पड़ी थी। बारात सारे शहर में घुमायी गयी थी और उसे देखने के लिए नगर की हिन्दू-मुसलमान महिलाएँ दरवाज़ों या छज्जों पर एकत्र हो गई थीं। यह सोचकर कि सब उसी को देख रही हैं, उसे बड़ा अच्छा लगा। सौभाग्य की बात यह थी कि मौर के कारण वह तो जिसे चाहे देख सकता था, पर उसकी आकृति को, जब तक वह न चाहे, कोई नहीं देख सकता था। इन महिलाओं में से कुछ नवयुवतियाँ वास्तव में बहुत सुन्दर थीं। उन्हें देखकर वह मुग्ध हो गया। एक की ओर तो वह इतना आकर्षित हुआ कि उसने निश्चय किया विवाह के उपरांत वह उसे देखने आया करेगा। तुरन्त ही उसके मन में एक भावना उठी—यह अनुचित है। अब उसे अपने मन को बहुत पवित्र रखना चाहिए। फिर उसने सोचा: अभी मेरा कौन-सा विवाह हो गया है, जो यह बंधन मैं अपने ऊपर स्वीकार करूँ? पर क्या विवाह होने पर कोई भी प्राणी अपने मन को सौंदर्य से अप्रभावित रहने की गारंटी ले सकता है? मन तो एकदम निर्बंध है। उस पर शासन कैसा? एक दरवाज़े पर कुछ लड़कियाँ बारात को देखकर कुछ हँस रही थीं। हँसतीं क्यों नहीं? आखिर, थी तो गाँव की ही बारात। जब बग्घी दरवाज़े के सामने से निकली तो एक नवयुवती ने दूसरी को हाथ के इशारे से कुछ समझाया। संभवतः अमरनाथ के उन कपड़ों की ओर संकेत किया जो वह दूल्हे के रूप में पहने हुआ था। और वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। अमरनाथ ने इस बात को लक्ष्य किया और उसकी ओर हाथ जोड़ दिए। नवयुवती ने अपनी सहेली की नीली साड़ी का पल्ला खींचकर कहा—देख, तुझे नमस्ते कर रहे हैं। हमें पता होता कि पहले से जान-पहचान है, तो हम क्यों बतलाते। फिर तो वह हँसी हुई कि न पूछिए। ऐसे ही जब अमरनाथ की आरती उतारी गई तो उसे एक विचित्र प्रकार की अनुभूति हुई। दूल्हा होने पर भी वह इस बात को नहीं भुला पा रहा था कि वह अछूत

साधारण स्थिति का व्यक्ति है। बचपन से ही उसने बहुत-सी बारातें देखी थीं; लेकिन वह अनुभूति सीधी नहीं आयी थी। इस समय तो उसके साथ कुछ इस प्रकार का व्यवहार किया जा रहा था जैसे वह कहीं का राजकुमार हो।

इन्हीं दिनों उसने अनुभव किया कि विवाह की कुछ प्रथाएँ ऐसी हैं जो पति-पत्नी को एक दूसरे से परिचित कराने के लिए प्रचलित की गई हैं। विवाह-मंडप के नीचे वर और वधू के परिवारों का गोत्रसहित परिचय दिया जाना, वर-वधू का एक दूसरे के लिए वचन देना, एक दूसरे के हाथ में हाथ देना या साथ-साथ प्रदक्षिणा करना, सब उसी परिचय की भूमिकाएँ उसे लगीं। पलकाचार के समय पलंग पर दोनों का पास-पास बैठना या दूसरे दिन कंगन खोलना उस परिचय को और घनिष्ठता में बदलना प्रतीत हुआ। दूसरे दिन उसे ससुराल में ही स्नान करने के लिए बुलाया गया, बीच में पर्दा कर दिया गया। एक ओर उसे बिठाया गया, दूसरी ओर उसकी पत्नी को। नाई उसके उबटन मलने लगा, नाइन उसकी पत्नी के। और फिर एक ही पानी से दोनों को स्नान कराया गया। उसकी पत्नी को वे कपड़े पहनाए गए जो उसके यहाँ से आये थे, उसे अपने कपड़े अपनी ससुराल से मिले। उसकी समझ में ही न आया कि ऐसा क्यों किया जा रहा है? पर शायद यह दोनों को और निकट लाना था।

गाँव आते ही उन्हे गठ-बंधन करके गंगा-स्नान के लिए जाना पड़ा। इसके लिए दोनों को भरे बाज़ार से निकलना पड़ा, साथ-साथ जल में प्रवेश करना पड़ा, साथ-साथ डुबकियाँ लगानी पड़ीं। घर आकर कुल-देवता की पूजा करनी पड़ी। फिर गाँव की परिक्रमा के लिए दोनों निकल पड़े। यह शायद गाँव की सीमाओं से उन्हें परिचित कराना था। एक सीमा पर ठहर कर दोनों ने वहाँ स्थापित एक प्राचीन मूर्ति की पूजा की। पास में ही एक घनी अमराई थी। साथ चलने वाली गाँव की महिलाओं ने कहा कि अब 'छड़ी का खेल' होगा। अमरनाथ की समझ में कुछ न आया। कहने की आवश्यकता नहीं कि उमा सारे दिन घूंघट काढ़े रही।

एक लड़की ने एक साँटी उमा के हाथ में देकर कहा—खेलो।

उमा की समझ में न आया तो उसने समझाया—इन्हें साँटी मारो।

उमा संकोच से गड़ गई। उसने साँटी लड़की को लौटानी चाही।

लड़की ने कहा—भाभी, ये तो जीवन भर मारेंगे। आज तुम अपने मन की निकाल लो। जितने ज़ोर से इन्हें मार सको, मारो।

उमा ने सिर हिलाया और साँटी सास के हाथ में देनी चाही। सास ने लड़के को पास बुलाकर उमा के हाथ से साँटी अमरनाथ के छुआ दी।

इस पर एक दूसरी लड़की ने कहा—ओहो, अभी से इतना ध्यान। मेरे हाथ में साँटी होती, तो बताती।

तीसरी लड़की ने उसे चिढ़ाते हुए कहा—घबराती क्यों है, ब्याह तो तेरा भी होगा, तब मन की कसक निकाल लेना।

चौथी बोली—अरी देखना, यह तो अपने दूल्हे को ऐसा प्यार करेगी कि आँचल की छाया मे ही उसे छिपा लेगी।

पहली लड़की ने तिनककर कहा—चल-चल, मैं तेरी तरह नहीं हूँ। न शरीर पर नील डाल दिये तो मेरा नाम बदलकर रख देना।

उमा ने खींचकर उसके कान में कहा—फिर बीबी जी मरहम-पट्टी भी तो तुम्हें ही करनी होगी।

लड़की खिलखिला कर हँस पड़ी।

गाँव में अमरनाथ के मामा जी का मकान पक्का था। उसमें एक लंबे कमरे को खाली कर दिया गया था। उसी में विवाह का दहेज़ रखा था। निवाड़ का वह पलंग भी उसी में बिछा था जो ससुराल से आया था। कमरे में खिड़कियाँ नहीं थीं; अतः अमरनाथ को उसमें बड़ी घुटन-सी मालूम देती थी। फिर भी गाँव में उसे जितना सुन्दर बनाया जा सकता था, बना दिया गया था। रात होने पर उमा अपनी सास के पास गयी। सास दूसरे कमरे में थी। उमा बैठकर उनके पाँव दबाने लगी।

अमरनाथ की सास ने कहा, "अरी बहू, यह क्या करती है? अभी तो तेरे मेंहदी के हाथ भी मैले नहीं हुए।"

लेकिन उमा पैर दबाती रही । थोड़ी देर में सास ने कहा, "अब तू जा ।"

तुलसी के बिरवे के पास न जाने कब तक बैठी उमा बाहर तारों का खेल देखती रही और कल्पना में खो गयी । सास ने एक बार रात में करवट ली, तो उसे कुछ मुलायम-सा लगा । उसने चकित हो कर पूछा, "कौन है ?"

"मैं हूँ माता जी ।" उमा ने कहा ।

"तू अपने कमरे में नहीं गयी ?"

"नहीं ।" धीरे-से उमा ने कहा ।

"क्यों ?"

"मुझसे नहीं जाया जाता । मै आपके पास ही सोऊँगी ।"

सास ने बहू को अपने हृदय से लगा लिया और उसके सिर पर हाथ रखकर कुछ आशीर्वाद-सा दिया । इस घटना को कोई भी नहीं जानता; लेकिन इसके उपरांत अमरनाथ की मा से जो कोई मिलने आता, उससे सबसे पहली बात वे यही कहतीं—अपनी जैसी शीलवंती बहू मैंने दुनिया में दूसरी नहीं देखी ।

२

अमरनाथ के पिता पंडित दीनबन्धु गौर वर्ण के मझोले कद के सुन्दर व्यक्ति थे । उनके पिता एक गाँव के रहने वाले थे और खेती-बाड़ी का काम करते थे । उनके चार लड़के थे । इनमें सबसे बड़ा अरायज़नवीस था, दूसरा प्राइमरी स्कूल में अध्यापक, तीसरा पहलवान । केवल दीनबन्धु से पिता को यह आशा थी कि वह सच्चा किसान बनेगा और खेती के काम में उनका हाथ बटायेगा । लेकिन दीनबन्धु का मन इस काम में बिल्कुल नहीं लगता था । पिता ने जब ऐसी दशा देखो तो वे थोड़े कठोर पड़े और भूल से एक दिन दीनबन्धु को मार बैठे । दीनबंधु प्रभात होने से पहले ही गाँव

से क़स्बे भाग गये और वहाँ उन्होंने एक वजाज़ की दूकान में नौकरी कर ली।

दीनबंधु ने परिश्रम और ईमानदारी से काम किया। दूकान की बिक्री बढ़ने लगी। दूकान के स्वामी ने इन्हे रहने के लिए अपने घर मे ही स्थान दे दिया और यह निश्चय किया कि वह इन्हें प्रति रुपया एक पैसा दिया करेगा। ग्राहकों से इनका व्यवहार इतना अच्छा था कि उसकी चर्चा होने लगी और आस-पास की दूकानों के ग्राहक टूटकर इनकी दूकान पर आने लगे। इनके समझाने से इनका मालिक अपना माल दूसरे दूकानदारों की अपेक्षा कुछ कम लाभ लेकर बेचने लगा। इससे बिक्री और भी बढ़ गयी। दीनबंधु क़स्बे के आस-पास के गाँवों में चक्कर लगाने लगे। इस व्यक्तिगत परिचय से उन्हें बहुत लाभ हुआ। दूकानदार एक पैसे के स्थान पर अब उन्हें एक आना रुपया देने लगा। पाँच वर्ष के भीतर ही ऐसा हुआ कि दीनबंधु उस दूकान में चार आने के हिस्सेदार हो गए और अगले पाँच वर्षो में उन्होंने अपनी अलग दूकान खोल ली। दूकानदार से उनका सद्भाव जीवन भर बना रहा। थोक कपड़ा लेने के लिए दीनबंधु अब बाहर जाने लगे; लेकिन आवश्यकता पड़ने पर वे ग्राहकों को एक दूसरे के यहाँ भेज देते। जिस समय अमरनाथ का जन्म हुआ, दीनबंधु की बजाज़े की दूकान ख़ूब चल रही थी।

और पं० दीनबंधु ने इसी डिबाई को अपना निवास-स्थान बनाया और फिर वे अपने गाँव सतोहा लौट कर नहीं गए—पिता की मृत्यु पर भी नहीं। यहीं से उन्होंने विवाह किया। लेकिन संयोग की बात कि एक पुत्री को जन्म देकर पत्नी की मृत्यु हो गई। दीनबंधु अपनी पत्नी को बहुत प्यार करते थे और उसकी मृत्यु से उन्हें बड़ा आघात लगा। क़स्बे से पाँच-छः मील दूर कर्णवास में गंगा जी थीं। डिबाई के कुछ लोग प्रति रविवार को वहाँ स्नान करने जाया करते थे। उन्हीं के साथ दीनबंधु भी जाने लगे। छोटी बच्ची को वे अपनी सास के यहाँ कर आये। एक दिन स्नान से लौटते समय उन्हे कुछ देर हो गई। दोपहरी की तीव्र धूप थी। दीनबंधु ने कुछ थकावट और आकुलता का अनुभव किया और बीच रास्ते में एक बाग़

में वे रुक गए। थोड़ी देर विश्राम करने के उपरांत वे उठे तो लघुशंका के लिए आगे बढ़कर वे एक पेड़ के नीचे बैठ गए। उन्हें इस बात का ध्यान ही न रहा कि वह पीपल का एक पुराना पेड़ था। बस फिर क्या था, दो प्रेतात्माएँ उनके पीछे लग लीं। दीनबंधु ने डरने के स्थान पर उनकी पूजा करनी प्रारंभ कर दी। प्रेतात्माएँ उन्हें सिद्ध हो गई। इनमें से एक थे, 'ठाकुर साहब' और दूसरे का नाम था 'माना'। दीनबंधु ने संकट के समय इन्हें बराबर स्मरण किया; फिर भी जीवन भर कोई अनुचित लाभ नहीं उठाया।

कर्णवास में गंगा-स्नान करने के साथ वे कभी-कभी अपने ग्राहकों से भी मिल लेते थे। इस समय गाँव की एक मुख्य गली से वे निकले हुए जा रहे थे कि एक कुँए पर उन्होंने एक लड़की को पीतल के कलशे में पानी खींचते हुए देखा। लड़की की अवस्था होगी यही कोई चौदह-पन्द्रह वर्ष की—लंबा क़द, गेहुँआँ रंग, बड़ी-बड़ी आँखें, आकृति पर एक प्रकार की तेजस्विता। दीनबन्धु प्यासे थे।

उन्होंने आगे बढ़ कर कहा, "प्यास लगी है।"

लड़की ने पूछा, "कौन ज़ात हो?"

दीनबन्धु ने हँसकर कहा, "शूद्र।"

"जा, मैं शूद्र को पानी नहीं पिलाती। मेरा कलसा अशुद्ध हो जायगा।"

दीनबंधु आगे बढ़ गए। लड़की ने कुँए से उतर कर इधर-उधर देखा। फिर आवाज़ दी, "ओ!"

दीनबंधु लौट आये।

लड़की बोली, "कोई हो। पानी पी जाओ। मैं कलसा माँज लूँगी।" और भीतर से लोटा लाकर उसने कलस में से लेकर पानी पिला दिया। पानी पिलाकर उसने पूछा, "तुमने झूठ क्यों बोला?"

"कैसा झूठ?"

"तुम शूद्र नहीं हो सकते।"

"तो कौन हूँ ?"

"कोई हो, शूद्र नहीं हो सकते।"

दीनबंधु क़स्बे को लौट गये। आगे चलकर इस लड़की से उनका विवाह हो गया। यही विद्यावती अमरनाथ की मा थी।

विद्या का एक छोटा भाई था, उससे छोटी एक बहिन। मा कुछ वर्ष हुए विधवा हो गई थी। चारों कठिनाई का जीवन व्यतीत कर रहे थे। दीनबंधु का विवाह यद्यपि दूजिया का था; लेकिन विद्या की मा ने संतोष की साँस ली और आँखों में आँसू भरकर भगवान को सिर झुकाया। दूसरी लड़की दया अभी बहुत छोटी थी। उसके विवाह तक कुछ न कुछ हो जायगा ऐसा उसने सोचा। विद्या क़द की लम्बी थी; अतः चौदह-पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ही अठारह-उन्नीस की सी लगती थी। पास-पड़ौस की औरतों ने विद्या के विवाह को लेकर उसकी मा की नाक में दम कर दिया था; अतः बड़ी बेटी के विवाह से एक बहुत बड़ी चिंता उसकी मा की मिट गयी।

लड़कियों के मन में मा और भाइयों के लिए सामान्य रूप से दुर्बलता रहती है। बहिनों के सम्बन्ध में यही बात निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सकती। कभी-कभी वे अपनी बहिनों को भी बहुत प्यार करती हैं; फिर भी एक प्रकार की ईर्ष्या ही बहिनों-बहिनों के बीच पायी जाती है। किसी भी व्यक्ति को यदि अपनी पत्नी के प्रेम पर बहुत भारी विश्वास हो, तो किसी दिन वह उसके मायके की बुराई करके देख ले। वह स्थिति खड़ी होगी कि बहुत दिनों तक वह उसे भुला नहीं पायेगा। विद्या के मन में अपनी मा, भाई और बहिन के लिए जो दुर्बलता और ममता थी उसकी टक्कर की ममता सामान्यतया कम देखने में आती है।

विद्या के पिता ज्योतिषी थे और पंडिताई का काम भी करते थे। उनके पास थोड़ी-सी ज़मीन थी; लेकिन क्योंकि वे प्रायः बाहर रहते थे; अतः भूमि उन्होंने गाँव के एक चमार को उठा दी थी। उनकी मृत्यु से पंडिताई की आमदनी बन्द हो गई। ज़मीन से बहुत अधिक मिलता नहीं था। विद्या की मा काश्तकार से अब रुपयों के स्थान पर ज़मीन में उत्पन्न

अन्न स्वीकार करने लगी थी। कुछ रुपये उसने जोड़ रखे थे। गाँव में खर्च अधिक था नहीं। फिर बच्चे छोटे थे और लड़का अभी बहुत दिन तक कुछ करने योग्य नहीं था; इसी से विद्या की मा को घर की चिन्ता खाये जाती थी। विद्या बचपन से ही कुछ बुद्धिमती थी। घर की स्थिति को वह समझती थी। विवाह के उपरांत जब वह अपने घर पहुँची, तो उसने देखा किसी प्रकार का कोई अभाव नहीं है। गौने के उपरांत अपनी छोटी बहिन को वह अपने साथ ले आई। बीच-बीच में भाई भी दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह दिन रहने लगा। दीनबन्धु को इसमें कोई आपत्ति न थी। उन्होंने देखा इससे विद्या अकेली भी नहीं रहेगी और उसका मन भी लग जायगा। मायका दूर नहीं था; अतः दीनबन्धु जब कपड़ा लेने दिल्ली या बम्बई जाते तो विद्या अपने गाँव चली जाती थी। विद्या के विवाह के उपरांत उनका व्यापार और भी चमक उठा; अतः साले और साली का रहना उन्हें बिल्कुल नहीं अखरा। आगे चलकर दया स्थायी रूप से अपनी बड़ी बहिन के पास ही रहने लगी। उन दिनों जैसा भी संभव था, दया की शिक्षा का प्रबन्ध दीनबंधु ने कर दिया। घर के कामकाज में विद्या उसे निपुण कर ही रही थी।

क़द में अपनी बहिन के समान लम्बी होने पर भी दयावती रूप में एकदम भिन्न थी। विद्यावती का रङ्ग जहाँ गेहुआँ था, वहाँ दयावती का एकदम कर्पूर गौर। उसके अङ्ग-अङ्ग में ऐसा लावण्य था, ऐसी कोमलता थी, ऐसा लोच था कि उसकी गणना सुन्दरतम युवतियों में की जा सकती थी। जैसे-जैसे वह बड़ी हो रही थी, वैसे ही वैसे उसका लावण्य निखर रहा था। उस पर किसी की दृष्टि न पड़ जाय, इस डर से विद्या ने उसका पढ़ना और बाहर निकलना बन्द कर दिया और अपने पति से कहा कि उसके लिए लड़का ढूँढ़ें। दीनबन्धु को अपने काम से बहुत कम अवकाश मिलता था; फिर भी लड़का ढूँढ़ने में उन्होंने कोई कसर बाकी न रखी। लेकिन विद्यावती थी कि उसको कोई लड़का पसन्द ही न आया और जैसे-जैसे दया बड़ी होने लगी विद्या की चिंता भी बढ़ने लगी।

विद्या के मायके के पानी में कुछ ऐसा प्रभाव और जादू था कि या तो वहाँ की लड़कियाँ बहुत साधारण होती थीं या फिर अनुपम सुन्दरी। यह बात ब्राह्मण और क्षत्री दोनों की लड़कियों के लिए समान रूप से कही जा सकती थी। ब्राह्मणों की कुछ लड़कियों का अपने इसी रूप के कारण बहुत बड़े घरों में विवाह हुआ था। ठाकुरों की कुछ लड़कियों को देखकर लगता था कि चित्तौड़ की पद्मिनी के रूप की जो प्रशंसा सुनने में आती है, वह ठीक ही होगी। वहाँ तो एक ही पद्मिनी थी; लेकिन यहाँ न जाने कितने घरों में पद्मिनियों ने जन्म ले लिया था। रूप था कि मनुष्य यदि उसकी ओर दृष्टि उठाकर देख ले तो मैला हो जाय। तो विद्या इस बार जब अपने मायके से लौटी, तो बहुत उत्साहित थी।

दीनबन्धु को रात को खाना खिलाने के उपरांत उसने कहा, "अलीगढ़ ज़िले में अतरौली एक जगह है।"

"है तो।"

"वहाँ एक राव साहब हैं।"

"जरूर होंगे।"

"वे छह गाँवों के ज़मींदार हैं।"

"तुम कोई कहानी सुना रही हो मुझे?" दीनबन्धु ने पूछा।

"नहीं कहानी नहीं, काम की बात है। उनकी पत्नी का अभी देहान्त हो गया है; लेकिन वे दूसरा विवाह करने को तैयार नहीं हैं···"

"तुम्हें यह सब कुछ कैसे मालूम है?"

"गाँव में सुनकर आयी हूँ। ऐसे लड़के को कौन छोड़ता है। तो मैं चाहती हूँ कि दया के विवाह की बात तुम उनसे पक्की करके आओ।"

"तुम समझती हो कि जो काम कोई नहीं कर सका, वह मैं कर सकूंगा?"

"लेकिन तुम जाओ तो सही। कौन जानता है इसके भाग्य में राज-

रानी होना लिखा हो। अगर लड़का एक बार कैसे ही दया को देखने को तैयार हो जाय, तो यह सम्बन्ध पक्का हो जायगा, ऐसा मेरा मन कहता है। तुम्हें कुछ नहीं करना है, केवल एक बार दया को उन्हें दिखाना भर है।"

दीनबन्धु असमंजस में पड़ गये। वे स्वभाव से महत्वाकांक्षी नहीं थे—अपने लिए भी, दूसरों के लिए भी। दया के विवाह की चिंता उन्हें भी थी; क्योंकि वे जानते थे कि यह काम सास की शक्ति के बाहर था और साला उनका छोटा था और किसी योग्य नहीं था। किसी खाते-पीते घर दया का विवाह हो जाय, इतना ही वे चाहते थे और यह कोई कठिन बात न थी। लेकिन इस समय पत्नी से तर्क करना व्यर्थ था। उन्होंने भी एक बार सोचा—लाओ प्रयत्न कर देखें। किसी के भाग्य की बात कोई नहीं जानता। बहुत संभव है प्रयत्न सफल हो ही जाय।

राव साहब के वैभव को देखकर दीनबंधु दंग रह गए। बड़े फाटक को पार करने के उपरांत बायें हाथ को मुख्य हवेली थी। कुछ ऊँचाई पर उसका चौड़ा दरवाज़ा था। उसके सामने काली जी का मंदिर था। दोनों के बीच लंबी कोठी थी जिसमें हाकिम लोग आकर ठहरते थे और रावसाहब अपने आसामियों से मिलते ये। फाटक, हवेली के दरवाज़े और कोठी के सामने सिपाहियों का पहरा था।

पूछने पर पता चला आजकल राव साहब हवेली के भीतर ही अकेले रहते हैं। उनके पास केवल उनका हुक्का भरने वाला नौकर ही जा सकता है। वे न किसी से मिलते हैं और न बात करते हैं। रात को बारह बजे के आसपास कहीं बाहर निकल जाते हैं और फिर चार-पाँच बजे लौटते हैं। कहाँ जाते हैं, कुछ कहा नहीं जा सकता। न ठीक-से खाते हैं और न सोते हैं। उनकी इस दशा से सब परेशान हैं। हुक्का भरने वाले नाई का कहना है कि उनके तख़्त पर भरी हुई दुनाली बंदूक़ रखी रहती है।

यह सब सुनकर दीनबंधु की इच्छा हुई—लौट चलें; लेकिन पत्नी का हठ! क्या करें?

इतने में चिलम भरने वाला नाई उधर से निकला। एक सिपाही ने इशारे से उसे बतला दिया। दीनबंधु ने पास जाकर कहा, "नाई-ठाकुर मेरी एक चिट्ठी है। राव साहब के पास पहुँचानी होगी।" चिट्ठी के साथ पाँच रुपये का एक नोट उन्होंने उसकी ओर बढ़ा दिया। चिलम भरने वाला नाई 'ठाकुर' शब्द के प्रयोग पर ही प्रसन्न हो गया था। नोट देखकर तो वह एकदम सीधा हो गया। दीनबंधु को उसने कोठी में एक पलंग पर बिठा दिया और भीतर चला गया। थोड़ी देर बाद वह लौटकर आया और बोला—आपको फ़ौरन बुलाया है।

चलते-चलते दीनबंधु ने नाई-ठाकुर से पूछा,—"राव साहब की ऐसी हालत पत्नी की मृत्यु के कारण हुई?"

"हाँ, साहब।"

"बहुत सुन्दर थीं?"

"बहुत कबूलसूरत थीं साहब।"

"रात को ये कहाँ जाते हैं?"

"मसान में घूमते रहते हैं।"

"और क्या बात है?"

"उनके फूलों मे से बचाकर कुछ ले आये हैं। एक सफ़ेद पोटली में बाँधकर उन्हें अपने पास रख छोड़ा है। कभी-कभी पोटली को कलेजे से लगाते हैं और रोते हैं। हमसे तो देखा नहीं जाता साहब। अपने मालिक को ऐसी दशा में देखने से तो अपनी मौत हो जाती तो अच्छा था।"

"ठीक हो जायँगे।" दीनबंधु ने उसे आश्वासन दिया और राव साहब के पास पहुँचे।

राव साहब तख्त पर ही खाते, सोते और बैठते थे। दीनबंधु को देखते ही उन्होंने उनसे तख्त पर बैठने के लिए संकेत किया। नाई वहाँ से पहिले ही चला गया था।

"कहिए?" राव साहब ने उदास स्वर में पूछा।

"आपके इस दुःख की चर्चा दूर-दूर तक फैल गई है; अतः मुझे

सुनकर उस आदमी को देखने की उत्सुकता हुई जो इस युग में भी अपनी पत्नी को इतना प्रेम कर सकता है…"

राव साहब की आँखों में आँसू आ गए। बोले, "मुझसे कुछ बन नहीं पड़ा। अपनी सारी कोशिशों के बावजूद मै उन्हें बचा नहीं सका। मेरा जीना अब व्यर्थ है। इसमें कुछ सार नहों रहा…"

"हुआ क्या ?"

"कुछ दिनों से वे कहने लगी थीं कि उनका कभी-कभी जी घबराता है और ऐसा लगता हैं जैसे दिल बैठा जा रहा हो। कभी-कभी थोड़ी बेहोश हो जाती थीं और कहती थीं—यह मेरा घर नहीं है। मेरा घर तो बहुत सुन्दर है। मैं वहीं जाऊँगी। मेरा जी यहाँ नहीं लगता। जिस किसी को भी दिखाया, उसने यही कहा कि इन्हें कोई रोग नहीं है। लेकिन मुझे विश्वास नहीं हुआ और मैं उन्हें दिखाने के लिए बाहर भी दूर-दूर तक ले गया। एक दिन उन्होंने मुझसे कहा—उनकी कुछ सहेलियाँ आई हुई हैं। वे उनसे बात करना चाहती हैं। लेकिन मुझसे शरमाती हैं, इससे पास नहीं आ रहीं। मैं हट जाऊँ। मैंने चारों ओर देखा। कोई नहीं था। मैं बाहर टहलने चला गया। लौटकर देखता हूँ उनका प्राण पखेरू उड़ गया है। अब आप बताइए, यह सब कुछ क्या है ?"

दीनबंधु थोड़ी देर सोचते रहे। बोले, "उनकी स्वाभाविक मृत्यु नहीं हुई…"

राव साहब टोकते हुए बोले,—"यही तो, यही तो। लोगों से मैंने मना किया कि इन्हें न जलाया जाय; लेकिन मेरी बात किसी ने नहीं मानी।"

"फिर भी उनकी मृत्यु हो चुकी हैं, यह निश्चित है।"

"इसमें आपने क्या नई बात कही ? यह तो मुझे भी मालूम है।"

"लेकिन आपके प्यार को देखते हुए मैं एक बार उन्हें आपको दिखा सकता हूँ…"

"आप ?" राव साहब ने उछलकर कहा।

"जी हाँ, मैं।" दीनबंधु बोले।

राव साहब ने दीनबंधु को गले से लगा लिया और रोने लगे।

घोर अँधेरी रात थी। बारह का समय। दीनबंधु और राव साहब दूर आँगन में चुप बैठ थे। फूलों वाली पोटली सामने दालान में रखी थी। दालान काफ़ी लंबा था और उसमें पाँच ऊँचे खंभे थे।

थोड़ी देर में राव साहब ने देखा कि उनकी पत्नी सचमुच एकदम श्वेत वस्त्रों में दालान के एक कोने से चलकर धीरे-धीरे दूसरी ओर जा रही हैं। एक बार उन्होंने राव साहब की ओर देखा। राव साहब से रुका नहीं गया। वे दौड़कर उधर जाने को उद्यत हुए। दीनबंधु ने उन्हें कसकर पकड़ लिया। वे इस बात के लिए पहले से ही तैयार थे।

आत्मा इस बीच अदृश्य हो चुकी थी।

"आपने मुझे रोका क्यों ?" क्रुद्ध होते हुए राव साहब ने पूछा।

"आप उन्हें छूना चाहते थे न ?"

"हाँ।"

"आपकी मृत्यु हो जाती।"

"हो जाने देते।"

"जी हाँ, हो जाने देता।"

"आपकी क्या हानि थी ?"

"तब क्या मैं इस फाटक से जीता निकल सकता था ?"

"यह तो ठीक है।"

"मैं बीबी-बच्चों वाला आदमी हूँ।"

"आप क्या इन्हे एक बार मुझे और नहीं दिखा सकते ?"

"जी नहीं।"

"आप जो कहें मैं देने को तैयार हूँ।"

"एक लाख रुपये देने पर भी मैं यह काम दोबारा नहीं कर सकता इससे आत्माओं को कष्ट होता है। लेकिन..."

"लेकिन क्या ?" राव साहब ने उत्सुकता से पूछा।

"इन्हें बहुत सुन्दर तो नहीं कहा जा सकता।"

राव साहब आवेश में आकर बोले,—"यदि आप मेरे मेहमान न होते तो सामने जो बंदूक रखी है, उसी की गोली से मैंने आपको उड़ा दिया होता···"

"खैर, यह तो कहने की बात है। लेकिन अपने इतने बड़े दुःख में जब आप अपने को ही नहीं मार सके, तो मुझे क्या मार सकेंगे। मरना और मारना इतना आसान नहीं राव साहब, जितना आप समझते हैं। और इस समय आपकी बन्दूक़ में गोलियाँ भी नहीं है। चाहें तो आप देख सकते हैं।"

राव साहब डर गए।

दीनबन्धु बिना रुके बोले, "मैंने आपके मन को दुःख पहुँचाने के लिए कुछ नहीं कहा; लेकिन मेरा विश्वास कीजिए कि आसपास में ही ऐसी सुन्दर लड़कियाँ हैं जिनके सामने ये कुछ भी नहीं।"

"आपने इनसे सुन्दर किसी को देखा है ?"

"जी हाँ, एक तो मेरी साली ही है।"

"आपकी साली ?"

"जी, हाँ।"

दूसरे दिन दीनुबन्धु राव साहब को चुपके से अपने साथ ले आये। राव साहब ने दयावती को देखा तो देखते ही रह गए। विवाह पक्का हो गया।

गाँव में जब यह ख़बर फैली तो सब आश्चर्य-चकित रह गए। लेकिन यह चमत्कार तो विद्यावती का था। पं० दीनबन्धु तो माध्यम मात्र थे।

घर लौटने पर रावसाहब की मनोवृत्ति बदल गई। वे स्वाभाविक ढंग से व्यवहार करने लगे और जीवन में रस लेने लगे। ज़मींदारीं का काम व्यवस्थित ढंग से चलने लगा। इसका प्रभाव दूसरी दिशाओं में भी पड़ा। दयावती को देखकर जब वे लौटे थे, उन्होंने कहा था कि विवाह साधारण ढंग से ही होगा, लेकिन थोड़े दिनों में ही सूचना आई कि यदि अधिक न हो सके तो १०००) सगाई में, १०००) लगन पर, १०००) दरवाज़े पर

और १०००) खाँड़ कटोरा में वे अवश्य दें। बारात मे सभी आने को उत्सुक हैं, इससे ऐसा लगता है कि ५०० आदमी अवश्य आवेंगे। उनके एक रिश्तेदार अपने साथ हाथी लायेंगे और ज़मींदारी के कम से कम २५ घुड़सवार होंगे।

दीनबन्धु ने पत्र विद्यावती को दिखाया। उसने कहा, "तो क्या हुआ। विवाह वे अपनी हैसियत के अनुसार ही तो करेंगे।"

विवाह गाँव से ही हुआ। विद्यावती वहाँ बहुत पहले पहुँच गई थी। उसने अपनी ओर से कोई कमी नहीं होने दी। गाँव में एकता थी, इसलिए बरातियों को शिकायत का कोई अवसर नहीं मिला। जहाँ तक रुपये का प्रश्न था, वह विद्यावती ने खुले दिल से उठाया। इस विवाह की धूम तो चारों ओर मच गई और दयावती बड़े और ऊँचे घर भी पहुँच गई; लेकिन अपनी पत्नी की बात रखने के लिए दीनबन्धु ने अब तक के परिश्रम से जो कुछ जोड़ा था, वह सब बराबर हो गया। जहाँ तक विद्यावती का प्रश्न था उसने अपना दिल बिल्कुल मैला नहीं किया। वह केवल प्रसन्न थी। उसने एक बार भी इस बात पर गम्भीरता से विचार नहीं किया कि उसके पति का इतना रुपया जो व्यर्थ नष्ट हो गया है और उसकी वजह से उनके छोटे से व्यापार को जो धक्का पहुँचा है, उसका क्या होगा।

दया के विदा होने पर विद्या फिर एकाकीपन का अनुभव करने लगी। पति रात को देर से लौटते थे। इस बीच विद्या ने एक लड़के को जन्म दिया। थोड़े दिन बाद ही उसे 'लिवर' का रोग हो गया और वह मर गया। विद्या कुछ उदास-सी रहने लगी। पं० दीनबन्धु अब भी नियमित रूप से प्रति रविवार को कर्णवास गंगा-स्नान को जाया करते थे और कभी-कभी सास के पास हो आते थे। एक बार अपने लड़के की ओर संकेत करके उनकी सास ने कहा कि अपनी बहन के पास रहने को इसका बहुत मन है और जब वह गंगा-स्नान करके लौटे तो उन्होंने देखा—उनका साला साथ चलने को तैयार है। पं० दीनबन्धु ने रोकने का भी प्रयत्न किया; लेकिन साले के मन में अपनी बड़ी बहिन के लिए अत्यधिक

अनुराग देखकर और अपनी पत्नी की उदासी का ध्यान करके उसे अपने साथ लाना ही उन्होंने उचित समझा। लेकिन वह साधारण अनुराग न था। साले को जो अच्छा खाना-पीना मिला, तो वह वहीं रम गया। विद्या ने पहले अपने पति को समझाया कि वे दूकान पर अकेले बैठते हैं; अतः वह भी उनका कुछ हाथ बटाये तो अच्छी बात है। लेकिन उसका मन वहाँ बहुत दिन लगा नहीं। विद्या ने भाई को पढ़ाने का भी प्रयत्न किया। वह भी विफल रहा। अन्त में एक पंडित के पास उसने उसे लगा दिया। इस विद्या को उसने थोड़े ही दिन में सीख लिया। सम्भवतः कुछ पैतृक संस्कार थे या ब्राह्मण का बेटा था इसलिए, संस्कार कराने और कथा बाँचने में अपने गुरु को उसने बहुत सहायता पहुँचाई। काम में निपुण होने पर गुरु ने आशीर्वाद देकर उसे विदा किया। इस प्रकार नित्यानन्द आदमी बनकर और बहिन के पास चार-पाँच साल रहकर घर लौट आया। थोड़े दिनों में उसका विवाह हो गया। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस विवाह का सारा खर्च भी पंडित दीनबन्धु को ही उठाना पड़ा। लेकिन इस बार भी विद्या ने अपने पति से यह नहीं कहा—चलो अच्छा हुआ, तुम्हारे प्रयत्न से एक आदमी खाने कमाने लायक तो हो गया।

विद्या की मा के पास अधिक रुपया था ही नहीं। सौभाग्य से एक ललाइन से उसका मेल था। पचास-सौ रुपये तक तो उसने उसे दे दिए; लेकिन जब बात आगे बढ़ी तो उसने रुपये लाला जी से दिलवाने प्रारम्भ किए। विद्या ने अपने भाई और बहिन पर कुछ भी खर्च किया हो; लेकिन उसकी मा तो दामाद का पैसा अपने लिए नहीं स्वीकार कर सकती थी। इस पर थोड़ा-बहुत उसने विद्या, दया और नित्यानन्द के विवाह में भी खर्च किया ही था। परिणाम यह हुआ कि लाला जी ने उसका बाग़ और ज़मीन धीरे-धीरे अपने नाम लिखवा लिए। एक बार विद्या जब गाँव गयी तो उसकी मा ने इस बात की चर्चा बहुत दुःखपूर्वक उससे की। विद्या अपनी मा के अभाव के जीवन पर बहुत दुःखी हुई और उस रात उसे नींद नहीं आई। घर लौटते ही उसने पं० दीनबन्धु के सामने इस विकट समस्या को रखा।

दीनबंधु ने कहा, "लेकिन घर की स्थिति तो तुमसे छिपी नहीं है। हमारे पास जो कुछ भी था, वह दया की शादी में उठ गया। बाद में जैसे-तैसे करके हज़ार-पाँच सौ जुटाए थे, वे नित्यानन्द के विवाह में चले गए। अब तुम्हारे पास जो कुछ हो सो हो, मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं है।"

"कुल सात-सौ रुपये की तो बात है। कहीं से उधार नहीं मिल सकता? तुम जिनके यहाँ पहले काम करते थे, उनसे पूछकर देखो। शायद ही मना करें। तुम्हें संकोच लगे तो मैं उनकी बहू से बात करूं? तीन सौ रुपये भी यदि वे दे दें, तो चार-सौ शायद मेरे पास निकल आयेंगे।"

दीनबंधु ने विद्या की ओर देखते हुए कहा, "तुम समझती हो, हमें इस बात के लिए क़र्ज लेना चाहिए?"

"क़र्ज़ को तो मैं भी बहुत बुरा समझती हूँ; लेकिन बाप-दादा की चीज़ है। मिट्टी के मोल बनिया बाग़ और ज़मीन लिए जा रहा है। मैं सोचती हूँ कि उससे छुड़ाकर क्यों न हम दोनों चीजें अपने नाम करा लें। इससे बाग़ और ज़मीन बाहर भी नहीं जायँगे और इज़्ज़त भी बनी रहेगी।"

दीनबंधु ने समझ लिया क़र्ज़ लेना ही पड़ेगा।

रुपया लेकर जब वे अपनी ससुराल को चलने लगे तो विद्या उनके पास आई। बोली,—"तो फिर यही ठीक रहा कि ज़मीन और बाग़ उस बनियें से छुड़ाकर तुम अपने नाम करा लोगे?"

"यही तो तुमने कहा था न?" दीनबंधु ने ठिठक कर पूछा।

"मैं सोच रही थी कि गाँव के लोग हैं। न जाने क्या बात फैला दें?"

"तुम्हें क्या आशंका है?"

"भीतर की बात कोई नहीं जानता। सब यही कहेंगे कि दामाद ने साली के विवाह में मदद की थी, सो बाग़ और ज़मीन अपने नाम लिखा लिए।"

पं० दीनबंधु प्रायः मुस्कराते ही रहते थे। इस समय वे खिलखिलाकर

हँस पड़े। ससुराल जाकर बनिये को उन्होंने रुपये दिए और बाग़ और ज़मीन सास को लौटा आये।

दीनबन्धु वहाँ से लौटे तो एक दिन असावधानी से कपड़े की दूकान में आग लग गई। इस प्रकार सब स्वाहा हो गया।

इसी समय अमरनाथ का जन्म हुआ।

दीनबन्धु के सामने आर्थिक संकट खड़ा हो गया था; लेकिन उन्होंने साहस और धैर्य से काम लिया। कपड़े के जिस व्यापारी के यहाँ उन्होंने सब से पहले काम करना प्रारम्भ किया था, वह अब बहुत वृद्ध हो गया था। दूकान पर उसका लड़का बैठता था। दीनबन्धु जब उसके पास गए तो उसे बहुत दुःख हुआ और अपने लड़के से कहकर उसने उनके लिए रोज़ की बिक्री पर एक आना रुपया निश्चित करा दिया। दीनबन्धु का रोज़ का काम चलने लगा। उन्होंने अपना मकान बदल लिया और एक दूसरे मकान में वे आ गए। यह मकान छोटे बाज़ार में था। नीचे के हिस्से में मकान मालिक रहते थे, ऊपर के हिस्से में दीनबन्धु। अमरनाथ बड़ा होने लगा। मकान मालिक के अभी तक अपना कोई बच्चा नहीं हुआ था; अतः उनकी पत्नी अमरनाथ को बहुत प्यार करने लगी। उसके पति का नाम अमरनाथ था। यह नाम विद्यावती को इतना पसन्द आया कि उसने अपने लड़के का नाम भी अमरनाथ रख लिया। मालिक मकान की पत्नी के लिए यह बड़ी उलझन की बात हुई। वह अमरनाथ को उसके नाम से नहीं पुकार सकती थी। परिणाम यह हुआ कि वह उसे 'लाला जी' कहकर पुकारने लगी। लाला जी हिन्दू घरों में देवर को कहा जाता है। विद्यावती ने अपने लड़के को समझाया कि वह उसे 'भाभी' कहा करे। इस भाभी से अमरनाथ को इतना अनुराग हो गया कि वह उसे अपनी मा से अधिक प्यार करने लगा। भाभी ने भी उसे वह ममता दी कि कोई सगी मा भी नहीं दे सकती थी। भविष्य में अमरनाथ ने जब कभी अपने दुःख में 'मा' शब्द का ज़ोर से उच्चारण किया, तब उसका आशय इसी भाभी को पुकारना होता था। विद्या यह सब देखकर थोड़ी निश्चिन्त हो गई। अब जब वह अपने मायके जाती तो

अमरनाथ को प्रायः इस भाभी के पास ही छोड़ जाती। वह हँसी में कभी-कभी कहा करती थी—बहू, तूने तो मेरे लड़के को मुझसे छीन लिया।

अमरनाथ जब चार वर्ष का हुआ तो विधाता की इच्छा से एक घटना घटी—घटना जिसने अमरनाथ के जीवन की गति को ही बदल दिया।

पं० दीनबन्धु चार भाई थे। उनमें से तीन गाँव में ही रहते थे और ये भाग कर क़स्बे में आ गए थे। चारों भाइयों के दो-दो विवाह हुए, लेकिन दीनबन्धु को छोड़ कर लड़का किसी भाई के न था। पिता की मृत्यु तो बहुत पहले हो चुकी थी। इस बीच दो भाई मर चुके थे। केवल सबसे बड़े भाई अभी तक जीवित थे। तमस्सुक लिखने के कारण गाँव के सब लोग उन्हें 'मुन्शी जी' कहते थे। बरसात के दिन थे कि गाँव का एक आदमी पं० दीनबन्धु को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आ पहुँचा। आते ही उसने समाचार दिया—मुन्शी जी का अंत-काल है। उन्होंने अपने भाई और भतीजे को उनका मुँह देखने के लिए बुलाया है और कहा है कि जब तक वे नहीं आयेंगे मेरे प्राण उन्हीं में अटके रहेंगे।

तीसरे पहर का समय था। वर्षा हो रही थी। दीनबन्धु अपनी पत्नी और पुत्र को लेकर अपने जन्म-स्थान को चले गए।

गाँव पहुँचकर पं० दीनबन्धु ने देखा कि उनके बड़े भाई थोड़ी देर के मेहमान हैं। वे चुप जाकर उनकी चारपाई के पास खड़े हो गए। मुन्शी जी ने भाई की ओर देखकर कहा, "अच्छा किया तुम आ गए।" विद्यावती को तालियों का गुच्छा सौंपते हुए बोले' "बहू, इस घर को सँभालने की ज़िम्मेदारी अब तुम्हारे ऊपर है। कुल की प्रतिष्ठा का ध्यान रखना।" तब उन्होंने एक करवट ली। उनकी चादर के नीचे चाँदी के पाँच सौ रुपये बिछे हुए थे। वे उन्होंने अमरनाथ को दे दिए और उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया, "भगवान करें तुम इस कुल के दीपक हो।" अमरनाथ को समझ में कुछ नहीं आया। सबसे विनोद की बात उसके लिए यह थी कि उसकी मा आज घूंघट काढ़ें हुए थी। इसके उपरांत उन्होंने

अपने तकिए के खोल में से एक लिफ़ाफ़ा निकाल कर अपने छोटे भाई को देते हुए समझाया, "कहाँ क्या रखा है, इसमें सब लिखा है।" इतना कहते-कहते वे जैसे थक-से गए। एक बार उन्होंने फिर सबको देखा और अंतिम साँस ली।

पं० दीनबन्धु के कुछ दिन बहुत सुख से व्यतीत हुए। मुंशी जी ने पंचास बीघा ज़मीन छोड़ी थी। हज़ारों ही रुपया घर में था। हज़ारों बाहर लोगों पर क़र्ज़ था। उनके मृदुल मिलनसार स्वभाव के कारण गाँव के लोग उन्हें प्यार करने लगे। लेकिन दूर के कुटुम्बियों में ईर्ष्या की आग धीरे-धीरे सुलग रही थी और वे उपद्रव करने को तैयार थे। वे इस बात को सहन ही नहीं कर सकते थे कि एक व्यक्ति बाहर से आकर मुंशी जी के घर, ज़मीन और रुपये पर अधिकार कर ले। जिसने उस सम्पत्ति को पैदा करने में कुछ भी श्रम नहीं किया था, वह उसका सहसा स्वामी हो जाय, यह बात उन्हें जैसे काटे खा रही थी। मृत्यु से पहले उन्होंने मुंशी जी का आत्मीय बनने का अभिनय किया, उनकी सेवा की; उनसे कुछ लिखवाने का प्रयत्न भी किया, लेकिन मुंशी जी जीवन भर मुकदमे लड़वाते रहे थे, अपने जीवन का मुकदमा कैसे हार जाते। अंत में उन्होंने अपने भाई को ही याद किया और उसे सब कुछ सौंपकर चले गए। 'आख़िर, ख़ून-ख़ून को ही पचता है', ऐसा कहकर लोग चुप हो गए। लेकिन क्या वे चुप होने वाले थे ?

मुशी जी के घर से मिले हुए छह-सात घर एक गोलाकार स्थान में बने हुए थे। सबके निकलने का रास्ता एक था, नाली एक थी। मकानों के सामने जो स्थान ख़ाली थे वे परम्परा से निश्चित थे। उन्हें लेकर कभी किसी में कोई झगड़ा नहीं उठा था। मुंशी जी की गाय जिस स्थान पर बँधती थी, वह पास वाले मकान से मिला हुआ था; लेकिन था मुंशी जी का ही। पं० दीनबन्धु से सबसे अधिक ईर्ष्या इसी मकान वालों को थी। इनके बाबा कभी एक रहे होंगे, लेकिन ये अब भी अपने को मुंशी जी का उत्तराधिकारी मानते थे। नाम तो इनका सुखदेव था; पर थे ये पूरे दुखदेव। पत्नी का नाम रंपा था। पं० सुखदेव काफ़ी वृद्ध थे। अपने यौवन-काल

में कहीं लाठी चलाने में वे चपेट में आ गए थे और उनकी टाँग ऐसी टूटी कि एक प्रकार से अपाहिज से हो गए थे। घर पर वे रहते नहीं थे। खेत में उन्होंने मढ़ैया डाल रखी थी। वहीं उन्हे खाना पहुँच जाता था। एक दिन रंपा ने गाय वाली ज़मीन को लेकर विद्यावती से झगड़ा किया। विद्यावती ने पास-पड़ोस की स्त्रियों से पूछा। उन्होंने कहा—ज़मीन तो मुशी जी की है। रंपा ने पड़ोसियों को गाली देना प्रारम्भ कर दिया। विद्यावती चुप हो गई। इसके उपरांत उसने कुत्ते बिल्ली पर ढालकर विद्यावती को कोसना प्रारम्भ किया। विद्यावती ने तब भी कुछ नहीं कहा। गाय वहीं बँधती रही। गाय का जो गोबर होता, उसे तो रंपा उठा ले जाती, लेकिन स्थान की गंदगी को लेकर उल्टी-सीधी गालियाँ देती। एक दिन विद्यावती ने देखा रंपा गाय के पैरों में डंडा मारकर भीतर घुस गयी है। यह बात उसे बहुत बुरी लगी। पूछने पर रंपा ने कहा, "अभी तो हमने जानवर के पैर तोड़े हैं, अब हम आदमियों के पैर तोड़ेंगे। हमारी ज़मीन में जो आयेगा, उसका हम यही हाल करेंगे।"

विद्यावती ने अपने पति को समझाया कि कोई आदमी घर पर बैठे कुआभरी माया खा गया था, अतः अपना काम चाहे कितना ही साधारण हो उसे छोड़ना नहीं चाहिए। परिणाम यह हुआ कि दीनबन्धु बज़ाज़ की दूकान पर फिर बैठने लगे। वे घर से खाना लेकर आठ बजे चले जाते और रात को आठ-नौ बजे तक लौट आते थे। अमरनाथ गाँव के प्राइमरी स्कूल में पढ़ने बैठ गया था।

उस छोटे-से स्थान को लेकर सुखदेव से झगड़ा बहुत बढ़ गया था। पं० दीनबंधु ने विद्या को समझाया कि वह उस ज़मीन को छोड़ दे। विद्या ने कहा—आदमी का कर्त्तव्य है कि पुरखों की दी हुई ज़मीन-जायदाद को बढ़ाये न कि घटाये। आज यह हमें इस ज़मीन से हटा देगी, कल को घर से और फिर गाँव से निकाल देगी। दीनबंधु चुप हो गये। झगड़ा अब सीधा रंपा और विद्या के बीच था।

संध्या का समय था। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। विद्या ज़ीने

से उतरकर नीचे आ रही थी। इतने में उसने देखा पं० सुखदेव लँगड़ाते और हाँफते हुए उसके आँगन की ओर बढ़े चले आ रहे हैं। उनके हाथ में मिट्टी खोदने का एक कसुला था। विद्या सीढ़ी पर ठिठककर रह गयी। उन्होंने कसुला को उठाकर अपने माथे पर हल्के से मारा और चिल्लाकर बोले, "आ मार मुझे, आ मार!" इतने में उन घरों की महरी उधर से निकली। वह संध्या का पानी भरने आयी थी। यह दृश्य देखा तो दौड़कर पं० सुखदेव का हाथ उसने पकड़ लिया और बोली, "बुढ़ापे में ताऊ, तुम यह क्या कर रहे हो।" इतने में गाय के पास खड़ी रंपा ने शोर मचा दिया, "हाय, मेरे बुड्ढे को इस कमबख़्त ने मार डाला। हाय, मुझे क्या पता था कि ऐसी हत्यारिन हमारे मुहल्ले में आई है।" पं० सुखदेव के माथे से रक्त बह रहा था; रंपा गाली दे रही थी; विद्या चुप थी और मेहरी आँखें फाड़े खड़ी थी। पास-पड़ौस के लोग फिर आये; लेकिन ख़ून का मामला समझकर सरक गए। गाँव भर में यह बात फैल गयी कि पं० दीनबंधु की घरवाली ने पं० सुखदेव के सिर में फावड़ा दे मारा। ठीक बात का किसी को पता न था। जितने मुँह, उतनी बातें। रंपा बुड्ढे को भीतर ले गई और अपनी अटारी पर चढ़कर उसके मन मे जो आया, वह उसने कहा।

दो घण्टे के अन्दर दारोग़ा जी गाँव में आ पहुँचे। सम्भवतः रंपा ने चौकीदार को ठीक करके पहले ही क़स्बे भेज दिया था।

रंपा और पं० सुखदेव घटना-स्थल पर आ गए। कसुला अभी वहीं पड़ा था। रक्त की बूँदों के चिह्न लिपे-पुते आँगन में स्पष्ट दिखाई देते थे। पास-पड़ौस की स्त्रियों ने रंपा को फुसफुसाकर गालियाँ दीं। इन घरों में थानेदार कभी नहीं आया था, सो आज उसने बुला दिया।

थानेदार ने आँगन में खड़े होकर पूछा, "इस घर में कौन रहता है?"

पं० सुखदेव ने कराहते हुए कहा, "दीनबंधु"

"वे तुम्हारे कौन लगते हैं?"

"कोई नहीं।" सुखदेव बोले।

"हमारा कौन लगता मिटा।" रंपा ने धीरे से कहा।

"वे इस वक्त कहाँ हैं ?"

"शहर गया है।" सुखदेव बोले। कराहते हुए उन्होंने फिर कहा, "हजूर, उसकी औरत ने कुछ समझ बूझकर पहले से ही उसे शहर भेज दिया था। इस वक्त तक तो वह लौट आता था; लेकिन देखिए, आज अभी तक नहीं आया।"

इतने में एक लालटेन लेकर सुखिया ऊपर से उतरी। एक लालटेन रंपा ने पहले ही जलाकर कुछ दूर पर रख दी थी। एक लिफाफा उसने दारोगा जी को दिया और बोली, "सरकार बहू जी पर्दा करती हैं। बातचीत पंडित जी आकर आप से करेंगे। लेकिन यह सब झूठ है। बहू जी को जो कहना था, उन्होंने इसमें लिखकर दे दिया है।"

दारोग़ा ने लिफ़ाफ़े को हाथ से टटोला। दया के यहाँ से चिट्ठी आई थी। उसी में से चिट्ठी निकालकर ख़ाली लिफ़ाफे में दस-दस के पाँच नोट विद्या ने रख दिये थे। दारोग़ा जी ने कोना उठाकर भीतर झाँका भर। लिफ़ाफ़ा उन्होंने जेब में रख लिया। उनका रुख़ सहसा बदल गया।

"अच्छा मैं इसे देखूँगा।" महरी की ओर मुँह करके उन्होंने पूछा, "तुम कौन हो ?"

"मैं सरकार, इस मोहल्ले की मेहरी हूँ। मेरा नाम सुखिया है।"

"जब बारदात हुई तब तुम कहाँ थीं ?"

"मैं साँझ का पानी भरने आई थी माई-बाप। मैंने देखा पं० सुखदेव के हाथ में कसुला है। बहू जी जीने की सीढ़ी पर ऊपर खड़ी हैं और…"

"तुम घबराती क्यों हो ? जो बात हो साफ़-साफ़ बतलाओ।"

"हुजूर इससे पहले कि मैं दौड़कर पं० सुखदेव का हाथ पकड़ूँ, उन्होंने कसुला अपने सिर में दे मारा…"

"झूठ बोलती है।" रंपा ने क्रोध में भर कर कहा।

"अन्नदाता, मैं राम जी की सौगंध खाकर कहती हूँ, जो मैंने बिल्कुल झूठ बोला हो ?"

"आप तो मढ़ैया पर रहते हैं पंडित जी ?" दारोग़ा ने पं० सुखदेव से पूछा।

"जी।"

"आप यहाँ क्यों आए ?"

"हुजूर, यह जो ज़मीन आप देख रहे हैं, जिसमें गाय बँधी है, वह हमारी है। दीनबंधु की बहू कहती है वह उसके जेठ की है। इस ज़मीन को लेकर मेरी पत्नी और दीनबंधु की पत्नी में रोज़ झगड़ा होता है। तो मैं उसे समझाने आया था।"

"दीनबंधु की बहू आपसे पर्दा करती है ?"

"जी, हुजूर, करती तो है।"

"पर्दा क्या है, दिखावट है। जो औरत बुड्ढे आदमी पर हाथ छोड़ सकती है, वह पर्दा करे तो, न करे तो बराबर है।" रंपा बोली।

दारोग़ा ने रंपा की बात पर ध्यान नहीं दिया। उसने फिर पूछा, "आप अकेले समझाने आये थे ?"

"जी।"

"अपनी पत्नी को लेकर समझाने क्यों नहीं आए ?"

"उसकी बात वह हजूर सुनती कहाँ है ?"

"आदमियों को औरतों से बात करने की ही क्या ज़रूरत है, हुजूर। यह बात हमारी समझ मे नहीं आती।" सुखिया ने कहा। दारोग़ा मुस्कराया। सुखिया बोली, "हुजूर जान बख्शें तो एक बात हम कहें।"

"हाँ, हाँ, बोलो।" दारोग़ा जी ने आश्वासन दिया।

"जब हम इनके घर से घड़ा उठाने गए तो ये इन्हे कुछ समझा रही थीं। पं० सुखदेव राज़ी नहीं हो रहे थे। इन्होंने गुस्सा होते हुए कहा, अब तुम्हें कितने दिन और जीना है। सब सुख तो भोग लिए। मरना ही है तो इसके सिर हत्या लगाकर क्यों नहीं मरते, यह बात हमने अपने कानों से सुनी, हुजूर।"

दारोग़ा ने कहा, "पं० सुखदेव, आपको मरने का बहुत शौक है, तो उसका इंतज़ाम मैं करता हूँ। यह ख़ुदकशी का केस है..."

पं० सुखदेव ने कुछ कहना चाहा तो दारोग़ा ने डाँटकर कहा, "यह ख़ुदकशी का केस है और मैंने अगर आपको फाँसी के तख्ते पर न चढ़वा दिया तो मेरा नाम नहीं। इज्ज़तदार आदमियों पर झूठी तोहमत लगाने का जो नतीजा होता है, वह अपनी औरत की बातों में आकर आप भुगतेंगे।"

रंपा ने कहा, "सरकार हम बेक़सूर हैं।"

"औरतों से मैं कुछ नहीं कहता। मैं उनकी इज़्ज़त करता हूँ। लेकिन अगर आप अपने पति की ख़ैर चाहती हैं, तो कल शाम तक मामले को रफ़े-दफ़े करके मुझे ख़बर भिजवाइए।" मेहरी को सुनाकर उसने कुछ ज़ोर से कहा, "मेहरी, बहू जी से मेरा सलाम कहना। मामले को मैंने समझ लिया है। वे घबरायें नहीं। हो सके तो कल पं० दीनबंधु को मेरे पास भेज दें।"

दारोग़ा चला गया तो रंपा ने मेहरी से कहा,—"हम तो आपस में जो होगा, भुगत ही लेंगे। घर मे चार बरतन होते हैं तो खटकते ही हैं, लेकिन मुँहझौंसी, तेरी बोटी-बोटी कटवाकर मैंने घूरे पर न फिकवा दी तो मेरा नाम रंपा नहीं।"

"अरे मुझे क्या कटवाओगी, पहले अपना सुहाग तो बचाओ।" इतना कहकर मेहरी ऊपर चली गई। विद्या ने उसे पाँच रुपये देकर विदा किया।

मेहरी जाने लगी तो रंपा ने फिर टोका, "क्यों री छिनाल, हम में ऐसे क्या काँटे थे कि तूने उधर से गवाही दी।"

"तुम्हारी गवाही !" सुखिया ने कहा,—"कभी इतना भी नहीं हुआ कि होली-दिवाली तेल की आधी पूड़ी तक दे देतीं। और फिर झूठी गवाही। राम-राम !" और सुखिया मटकती हुई चली गई।

सुखिया के चले जाने पर रंपा विद्यावती के पास आई और बोली,—"बहू, ख़ानदान की लाज अब तेरे हाथ है।" ख़ानदान का नाम सुनकर विद्या को भीतर से हँसी आई। उसने उत्तर दिया,—"जो होना था वह

हो गया, लेकिन गाय को इस बुरी तरह से अब कभी नहीं मारना।" रंपा चली गई। थोड़ी देर में पं० दीनवंधु क़स्बे से लौटे। ब्याह-शादियों के दिन थे, इसलिए दूकान कुछ देर तक खुली रहती थी। बजाजों की आमदनी के ये ही विशेष दिन होते हैं।

आते ही बोले, "आज तो ग़ज़ब हो गया?"

विद्या ने पूछा,—"क्या हुआ?"

"सुखदेव की बहू को अभी मैंने गाय के पैर छूते देखा। वह गाय का पूजन कर रही थी और तुम कहती हो वह हमारी गाय को मारती है।"

विद्या बोली, "हो सकता है, मुझे ही भ्रम हुआ हो। पहले तुम खाना खा लो।"

संध्या की घटना की कोई चर्चा विद्या ने अपने पति से नहीं की। प्रातःकाल उन्हें स्वयं ही सब बातों का पता चल गया।

इस घटना के उपरांत रंपा एकदम बदल गई। दोनों घरों में आना-जाना हो गया। विद्या को किसी बात की आवश्यकता होती तो सबसे पहले दौड़कर उसकी सहायता करने वाली वही होती। अमरनाथ को वह बहुत प्यार करने लगी। वह अब अपने घर कम और रंपा के घर अधिक रहने लगा। विद्या उसे किसी बात पर डाँटती तो वह विद्या को डाँट देती। अमरनाथ को वह कभी-कभी अपने साथ खेतों पर ले जाती और उससे कपास बिनवाती और अंत में कपास का कुछ अंश वह उसे दे देती। अमरनाथ उस कपास के बदले गाँव के हलवाई के यहाँ से गजक या रेवड़ी ख़रीद लाता और मा को दिखाता। एक बार अमरनाथ बीमार पड़ा तो रंपा रात भर उसके सिरहाने बैठी रही और जब उसका ज्वर नहीं उतरा तो स्वयं जाकर पास के गाँव से एक वैद्य को बुला लाई। सुखिया ने यह सब देखा तो विद्या को समझाया, "बहू जी, इस नटनी पर विश्वास न करना ही अच्छा है।"

अमरनाथ अब बाहर जाने लगा था और कभी-कभी खेतों में दूर तक निकल जाता था। खेतों के पार एक स्थान पर बहुत-सी बालू थी। उसके

एक ओर बाग़, दूसरी ओर सरकंडों का बन। अमरनाथ को इस स्थान पर घूमना बहुत अच्छा लगता था। यह स्थान गाँव से कुछ दूर था। रंपा उसे एक बार यहाँ तक घुमाती हुई ले आयी थी। तब से वह कभी-कभी किसी से भी बिना कुछ कहे अकेला आ जाता था। कभी वह बालू में घरौंदे बनाता, कभी उसमें लेटा हुआ आकाश को देखता रहता और कभी पास से तीर खींचकर उन्हें हाथ से दूर तक फेंकता रहता। तीर वह अब बहुत दूर तक फेंक सकता था। जितनी दूर उसका तीर जाता, उतना ही प्रसन्न वह होता। आज भी वह तीर ढूँढ़ रहा था। इस बीच उधर से एक आदमी निकला—ठिगना क़द, चट्टान-सा दृढ़ शरीर, आकृति पर कठोरता और क्रूरता के चिह्न।

अमरनाथ के पास आकर उसने कहा, "आओ, हम तुम्हारे लिए तीर ढूँढ़ दें।"

अमरनाथ उसे देखकर थोड़ा डर गया लेकिन उपेक्षा से बोला, "नहीं, अपना तीर हम आप ढूँढ़ लेंगे।"

उस आदमी ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। उसका हाथ पकड़ कर वह बोला, "उधर चलो, उधर बड़े तीर हैं।" और एक प्रकार से बलपूर्वक ढकेलता हुआ जिधर झाड़ी कुछ घनी थी, उधर वह उसे ले गया। चारों ओर दूर-दूर तक कोई नहीं था। वहाँ जाकर उसने उसके गले पर हाथ रखा और दबाने लगा। अमरनाथ एकदम घबरा गया और उसकी ओर आँखें फाड़कर देखने लगा।

इतने में कहीं से कड़ाके की आवाज़ आई, "कौन है?"

दोनों ने सामने देखा एक लंबा काला भयावना-सा आदमी उनकी ओर बढ़ा चला आ रहा था।

हत्यारे ने अमरनाथ का गला छोड़ दिया और सहसा दूसरी ओर भागकर कहीं छिप गया।

काले आदमी ने वहीं से अमरनाथ से कहा, "घर चलो। यहाँ क्या कर रहे हो?"

अमरनाथ ने एक बार उधर देखा। उसके हाथ जोड़े। उस आदमी ने सिर हिलाया। अमरनाथ घर की ओर चलने लगा। कभी-कभी वह मुड़कर पीछे की ओर देख लेता। जब गाँव के खेत पास आ गए तो अमरनाथ को अपने कुछ साथी खेलते हुए मिले। उसने फिर एक बार पीछे की ओर मुड़कर देखा और हाथ जोड़कर नमस्कार किया। वह भयंकर मूर्ति हँसकर सहसा अदृश्य हो गई। अमरनाथ ने चारों ओर आँख फाड़कर देखा। उसे कुछ भी दिखाई नहीं दिया। अभी तक तो अमरनाथ को डर नहीं लगा था; पर अब वह सहसा डर गया और घर की ओर दौड़ा। उसके साथियों ने उसे बहुत रोकने का प्रयत्न किया; लेकिन उसने किसी की बात नहीं सुनी। घर पहुँचकर उसे ज्वर आ गया और वह बर्राने लगा।

रात को विद्या ने दीनबन्धु से पूछा, "यह कौन हो सकता है ?"

"'माना' होगा।" पं० दीनबन्धु ने कहा।

'माना' कौन ?

"एक प्रेतात्मा है। पूरा नाम मानसिंह है।"

"हे ईश्वर।" विद्या के मुँह से सहसा निकला।

तीसरे दिन अमरनाथ का ज्वर उतर गया। विद्या के कहने पर पं० दीनबन्धु अमरनाथ को उसकी ननिहाल पहुँचा आये। उसकी आगे की शिक्षा वहीं हुई।

इसके उपरांत भी दीनबन्धु और विद्या कई साल गाँव में रहे; लेकिन गाँव वालों ने उन्हें जमने नहीं दिया। इसमें कुछ दोष दीनबन्धु के सरल स्वभाव का भी था। खेती का काम वे स्वयं नहीं देख पाते थे। ज़मीन को उन्होंने आधे-साझे पर उठा दिया था अर्थात् खेत में जो कुछ भी उत्पन्न होता था उसका आधा किसान को मिलता था आधा उन्हें। इसमें किसान प्रायः बेईमानी कर जाता था। वे अपने खेतों को देखने तो कभी जाते नहीं थे। जिसने जो दे दिया, वह ले लिया। आगे चलकर वे लगान वसूल करने लगे। परिवार वालों ने पहले प्रयत्न किया कि उनके खेत को कोई ले ही नहीं।

जब कोई नहीं लेगा तो भले बनकर वे सामने आयेंगे और कहेंगे कि लाओ भैया हम ही जोत लें। लेकिन विद्या ने प्रारंभ से ही निश्चय कर लिया था कि चाहे उसके खेतों में कुछ भी उत्पन्न न हो और चाहे उन्हें कोई न ले; लेकिन रिश्तेदारों का हल वह उसमे न चलने देगी।

एक बार दीनबन्धु के एक भतीजे ने चाचा को एकांत में ठीक करके उनके एक खेत मे हल चला दिया। विद्या को जब पता चला तो वह बहुत बिगड़ी। दीनबन्धु ने कहा, "बहुत ग़रीब आदमी है और फिर घर का है। अगर चार पैसे वह ही खा लेगा, तो क्या हानि है?" विद्या चुप रही। दीनबन्धु जब क़स्बे चले गये तो उसने सुखिया को भेजकर गाँव के एक लोधे को बुलवाया। लोधा बहुत सम्पन्न था और उसका बहुत बड़ा परिवार था। सैकड़ों ही बीघे ज़मीन उसके पास थी।

जब वह आया तो विद्या बोली, "मैं नहर की बड़ी नाली के पास वाला खेत तुम्हें देना चाहती हूँ, तुम डरते तो नहीं हो?"

"नहीं चाची, आपकी आज्ञा होनी चाहिए। लेकिन उसे तो आपका एक भतीजा जोत रहा है।"

"उसने हमसे बिना पूछे उसमें हल चला दिया है, इसीलिए मैं पूछ रही हूँ।"

"लेकिन चाचा तो शहर गये हैं। मुझसे कुछ कहने लगे तो मैं क्या कहूँगा।"

"तुम हल-बैल लेकर आओ। मै तुम्हारे साथ चलती हूँ।"

"आप चाची?"

"हाँ, मैं।"

बलराम हल लेकर पहुँचा तो उसने देखा वहाँ पहले से ही पं० नन्दराम का भतीजा लाठी लिए खड़ा है। विद्या ने खेत पर पहुँचकर कहा, "बल-राम, मेरी आज्ञा है, इस खेत को उलट दो। इसमें हल चलाओ।" भतीजा विद्या के इस रूप को देखकर सहम गया। पास आकर लाठी उसने उसके पैरों में रख दी। बोला, "आप चाची यहाँ?"

"हाँ, मैंने सोचा मैं इस गाँव में रहती हूँ और मैंने अपने पुरखों के खेत तक नहीं देखे; इसीलिए घूमती हुई यहाँ तक चली आई।"

"यह तो बहुत अच्छी बात है चाची। चलिये, मै अपको अपना खेत दिखाऊँ।"

"चलो।"

विद्या आगे बढ़ गई। बलराम खेत जोतता रहा।

मुंशी जी जो नक़द रुपया छोड़ गए थे उसके अतिरिक्त भी लोगों पर उनका बहुत अधिक उधार था। तमस्सुक लिखने के अतिरिक्त वे लेन-देन का काम भी करते थे। विद्या ने उस चिट्ठी को जो मुंशी जी ने उसके पति को दी थी, खोलकर पढ़ लिया था। भीतर के कमरे में एक हाँडी में रखे हुए कुछ ज़ेवर मिले। गहने अधिकतर चाँदी के थे। उसमें सोने की एक नथ थी, दो-तीन अँगूठियाँ और एक जड़ाऊ शीशफूल। एक संदूकची में काग़ज़ भरे हुये थे। तमस्सुक उर्दू में थे। उन्हें उसने पं० दीनबन्धु को दे दिया। उन्होंने गाँव के पटवारी की सहायता से कर्जदारों के नाम जाने और उनका पता लगाया। विद्या को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि किसी भी क़र्ज़दार ने अब तक रुपया लौटाने की चिंता न की थी। अपने पति को उसने समझाया कि रुपया वसूल करने में वे ढील से काम न लें। गाँव में आकर पं० दीनबन्धु के एक लड़की हो चुकी थी। इस समय उसकी अवस्था पाँच वर्ष की थी।

लेकिन पं० दीनबन्धु थे पूरे दीनबन्धु। एक किसान के घर पहुँचे तो उसने अपने मरियल से बैलों को दिखाकर कहा, "मेरे पास तो अब रुपया-पैसा यही हैं। आप चाहें तो मैं इन्हें आपके घर बाँध आऊँ?"

दीनबन्धु ने कहा, "नहीं नहीं, तुम्हारे पास जब पैसा हो, तब दे देना। बैल मुझे दे दोगे, तो खेती कैसे करोगे?"

दूसरे घर तक़ाज़ा करने गये तो उसने अपनी छोटी-बड़ी चार लड़कियों को दिखाकर कहा, "चाचाजी, मुझे तो इनकी फिकर मारे डालती है। बड़ी लड़की तो विवाह के योग्य हो गयी है। मै तो चाची के पास उनके पैर

छूकर कहने वाला था कि थोड़ा कर्ज और दे दें तो इसके पीले हाथ कर दूँ।"

दीनबन्धु ने लम्बी साँस फेंकी। बोले, "अच्छा, तुमसे जब बन पड़े और जितना बन पड़े दे देना।"

एक तीसरे घर जाकर उन्होंने आवाज दी। इस बार स्वर में कुछ आवेश था। थोड़ी देर में ढलती उम्र की एक औरत ने आकर उनके पैर छुये। घूँघट कढ़ा हुआ था।

दीनबन्धु ने अपने पैरों को थोड़ा पीछे खींच लिया। पूछा, "तुम कौन हो?"

"मैं आपकी बहू हूँ," एक करुण स्वर ने कहा।

"तुम्हारा पति कहाँ है?"

"उन्हें तो पिछले साल परमात्मा ने उठा लिया।"

दीनबन्धु आर्द्र हो उठे। बोले, "तुम्हारे बच्चे हैं?"

"तीन छोटे बच्चे हैं।"

"काम कैसे चलता है।"

"चल जाता है मेहनत-मजदूरी करके।"

दूसरे दिन दीनबन्धु ने चुप से जाकर उसका तमस्सुक उसे लौटा दिया। स्त्री ने अपने बच्चों को उनके पैरों पर डालते हुए कहा, "आप तो देवता हैं।"

"ठीक है, ठीक है, तुम सब लोग सुखी रहो।" इतना कहकर वे उन्हीं पावों पीछे लौट आये।

लौटने पर विद्या ने पूछा, "तुम कई दिन से सुबह निकलकर जाते हो और दोपहर को लौटते हो। किसी से कुछ मिला भी?"

"किसी के पास कुछ है ही नहीं। दें कहाँ से? तुम सोच नहीं सकतीं कि गाँव के लोग कितने ग़रीब हैं।"

और तब विद्या ने अपने पति से कहना बंद कर दिया। सुखिया मेहरी को इधर-उधर भेजकर उसने क़र्ज़दारों को बुलाना प्रारंभ किया और जितना

उनसे वसूल हो सकता था, किया। लेकिन वह जितना भी था कितना ! परिवार वालों से शत्रुता भीतर-भीतर बढ़ती रही। एक दिन दीनबन्धु कहीं खाना खाने गये थे कि उनके भोजन में न जाने किसने क्या मिला दिया कि वे जैसे-तैसे बच पाये। यह विद्या के लिये भी असह्य था। विवश होकर वह एक दिन पं० दीनबन्धु को लेकर अपने मायके चली आई।

यही कारण था कि अमरनाथ का विवाह पिता के घर से न होकर ननिहाल से हुआ।

२

उमा से अमरनाथ की कोई बात नहीं हो पायी। पहले तो मेहमानों की भीड़ थी। उनके चले जाने पर भी वह घर इतना खुला हुआ था कि अमरनाथ को बात करने में बड़ा संकोच लगता था। उमा एक सप्ताह हो वहाँ रही; पर एक पल के लिए भी उसका घूंघट नहीं उठा। अमरनाथ की मामी, उसकी बहिन, मामा जी के बच्चे, पास-पड़ौस की लड़कियाँ उमा को तमाम दिन घेरे रहतीं और दिन यों ही व्यतीत हो जाता। उमा उसके पास से कभी निकलती और कोई न होता तो वह व्यंग्य-विनोद की बात कह देता और लगता उमा घूंघट में मुस्करा रही है। इससे दोनों को थोड़ी प्रसन्नता होती।

उमा विदा हो गई तो अमरनाथ ने पढ़ने में मन लगाया। कानपुर से लौटते समय वह कुछ नयी पुस्तकें ख़रीद लाया था। लिखने को इस समय जाने क्यों उसका मन नहीं था। पढ़ने से जो समय मिलता, उसे वह गाँव के लोगों से मिलने में काट देता। लेकिन सच बात यह है कि गाँव में उसका मन लगता नहीं था। संध्या का समय वह गंगा, आम के बागों या नहर के किनारे घूमने में निकाल देता। रात का अधिकांश भाग साधु-महात्माओं की संगत में कटता। सोते समय न जाने कैसे विचार उसके मन

में उठते। लेकिन एक प्रश्न उसके मस्तिष्क में बार-बार चक्कर काटता—सहसा यह क्या हो गया ?

उमा को साधारण ही कहा जा सकता था। कुछ खुलता हुआ साँवला रंग, चौड़ा मस्तक, लंबी नाक, कम भरा हुआ चेहरा, घने काले बाल, कुँवारेपन का एक प्रकार का लावण्य। शिक्षा में हिन्दी की सामान्य जानकारी—छठी पास। दस्तकारी में थोड़ी निपुण। लंबा घूँघट। पुराने संस्कार। कैसे होगा ? अमरनाथ को धीरे-धीरे वे सारी घटनाएँ याद आयीं जो विवाह के प्रस्तावों से संबंधित थी। अंतिम प्रस्ताव ही कितना आकर्षक था। सम्पन्न शिक्षित घराना, लड़की ग्रेजुएट, असाधारण सुन्दर। अमरनाथ को उसका चित्र भी दिखा दिया गया था। बातचीत उसके शिक्षा-गुरु के माध्यम से ही हो रही थी। लड़की के पिता होस्टिल में पहले उसी के पास आये थे। उन्हीं के साथ उमा के पिता पं० विभूतिभूषण शर्मा भी थे। अमरनाथ ने दोनों को अपने गुरु के पास भेज दिया था। बात पक्की हो गई। लेकिन अमरनाथ के घर से थोड़े दिनों में पत्र आया कि लड़की-लड़के की कुंडली नहीं मिलती; अतः यह विवाह नहीं हो सकता। अमरनाथ मन मसोसकर रह गया। उसे अपने देश के ज्योतिषियों और पण्डितों पर बहुत क्रोध आया। लड़की के पिता ने अपने मित्र को सूचित किया कि यहाँ तो विवाह नहीं हो सकता, हो सके तो वे किसी दूसरे लड़के को उनके लिए देखें। लेकिन उमा के पिता ने पहला काम यह किया कि अमरनाथ के गुरु जी को पत्र लिखा कि अमरनाथ का विवाह यदि वहाँ नहीं, तो उनके यहाँ हो सकता है। कुडली भेज दी गई और पंडितों के अनुसार वह मिल भी गई। मिल गई साहब कुंडली—लड़का एम० ए, स्वप्नशील, आधुनिकता का पक्षपाती; लड़की साँवली, छठी पास, लंबे घूँघट वाली !

अमरनाथ के गुरु ने जब उससे बातें कीं तो वह बोला, "मेरे पिता या मामा जी की अपेक्षा अच्छा यह हो कि लड़की आप ही देख आयें।" गुरु जी बहुत प्रसन्न हुए और चले गए। वहाँ से लौटकर उन्होंने अमरनाथ को बुलाया। गुरु से अपनी भावी पत्नी के सम्बन्ध में बातचीत करने में उसे

थोड़ा संकोच लग रहा था। बात गुरु जी ने ही प्रारम्भ की।

"लड़की मैं देख आया हूँ। मुझे बहुत पसन्द है।"

"कोई विशेष बात है?"

गुरु जी ने दृष्टि उठाकर उसे देखा। शिष्य और ऐसा प्रश्न करे! अमरनाथ को पता नहीं था कि गुरु जी प्राचीन संस्कारों से युक्त व्यक्ति हैं। वे बोले, "विशेष बात क्या होती है? हिंदुओं के घर में जैसी लड़कियाँ होती हैं, वैसी ही है। लम्बे आकार की, गेहुँआँ रंग, हिंदी की जानकारी। पिता ने जान बूझकर उसे अंग्रेजी की शिक्षा नहीं दी। तुम चाहो तो उस कमी को यहाँ पूरा कर सकते हो। लड़की के हाथ के कढ़े हुए मेज़पोश, तकिये के गिलाफ़ और चादरें मैंने देखी हैं। उसके हाथ के बुने हुए मोजे, दस्ताने और स्वैटर देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। सबसे बड़ी बात यह है कि वह स्वभाव से बहुत सुशील है। मेरे घर में तो कोई लड़का नहीं है, नहीं तो मैं ही उसे अपनी बहू बना लेता। लाखों में एक है..."

"लेकिन लगता ऐसा है कि न तो वे शिक्षित हैं और न सुन्दर।"

"उस शिक्षा को लेकर हम क्या करेंगे जो हमारे घर में अशांति का कारण बनती है, जो बेटे को मा-बाप से दूर कर देती है, जो मध्यवर्ग के परिवार के विघटन का कारण बनती है। उस सुन्दर का क्या मूल्य है जो केवल सभा-सोसाइटियों की शोभा है, जो क्षणिक है, जिसके लिए अंधाधुध अपव्यय होता है, जिसके कारण पति को अपनी पत्नी पर सदैव संदेह बना रहता है कि वह किसी और को तो प्यार नहीं करती। मुझे तो ऐसी ही लड़कियाँ पसन्द हैं। ऐसी ही लड़कियाँ वधुएँ और पत्नियाँ कहलाने की अधिकारिणी हैं।"

अमरनाथ ने तर्क करना व्यर्थ समझा। गुरुओं से तर्क वैसे भी नहीं किया जाता। उसने बहुत दबे स्वर में कहा, "क्या एक बार मैं उन्हे नहीं देख सकता?"

"आश्चर्य की बात है कि तुम्हें मेरे ऊपर विश्वास नहीं। तुम क्या देखोगे?"

"फिर भी आपकी आज्ञा हो तो। इसमें हानि ही क्या है ? विवाह से पहले यह सब तो चलता ही है। क्या उनके घर वालों को इसमें आपत्ति होगी ?"

"उन्हें हो न हो; पर मुझे है।"

"आपको तो मेरे हित का ध्यान रखना चाहिए। मैं आपके जितने निकट हूँ, उतने वे नहीं। उनसे तो आपका परिचय भी अभी हुआ है..."

"लड़की को मैं देख चुका हूँ और मैंने 'हाँ' कह दी है। लड़की मुझे पसन्द है। आखिर, तुम क्यों देखना चाहते हो, मैं भी तो जानूँ ?"

"वैसे ही—मन के संतोष के लिए।"

"देखकर तुम 'ना' भी तो कर सकते हो ?"

"यह संभावना तो है ही।"

"तब मैं समझता हूँ मैंने बहुत नाजुक काम में हाथ डाला है। लड़की के पिता बहुत संभ्रांत व्यक्ति हैं। पास-पड़ौस में पता चल गया है—लड़की मैंने पसंद कर ली है। अब 'ना' करने पर यह चर्चा उठेगी कि लड़की में कोई खोट है। तुम समझते हो या नहीं ?"

"ना करने की तो कोई बात नहीं उठती; फिर भी मैं लड़की से बात करना चाहता था। उसे समझाना चाहता था कि वह किसी दूसरे स्थान पर अधिक सुखी रहेगी। कारण यह है कि दोनों के व्यक्तित्व में बहुत अंतर है। इस पर भी यदि वह हठ करेगी, तो मैं विवाह कर लूँगा; लेकिन तब यह उत्तरदायित्व मेरे ऊपर न रहेगा।"

"अब जैसा तुम ठीक समझो; लेकिन इसमें मेरी इज़्ज़त का सवाल है।"

अमरनाथ चुप हो गया—नाजुक बात, इज़्ज़त का सवाल ! क्या उत्तर दे वह इसका। भूल उसी की थी कि उसने उन्हे भेजा। उसका परिणाम तो भोगना ही होगा। विवाह हो गया।

लेकिन वह इतना आशंकित क्यों है ? वह बहुत सुखी भी तो हो सकता है ! और सच बात यह है कि इस बीच उसे उमा की बहुत याद आई। उसने उमा को पत्र लिखना चाहा। लेकिन क्या उमा के घर वाले इस बात

को पसन्द करेंगे ? करते तो उमा ने ही उसे पत्र लिखा होता। नहीं, ये वे घर नहीं हैं, जहाँ इस तरह की बातें पसंद की जाती हैं। हो सकता है उमा बहुत कुछ कहना चाहती हो और लज्जा के कारण कुछ न कह पायी हो; बहुत संभव है वह भी उसे याद करती हो और संकोच के कारण कुछ न लिख पायी हो। लेकिन मनुष्य का मन···यह जानते हुए भी कि उमा उसे नहीं लिखेगी, वह बराबर उसके पत्र की प्रतीक्षा करता रहा। कौन जाने किसी दिन उमा के हाथ का लिखा हुआ पत्र उसे मिल ही जाय !

इसी बीच एक दिन उसे कानपुर से लिखा गुरु जी का पत्र मिला। उसकी नियुक्ति आगरे के एक डिग्री कॉलेज में हो गयी थी।

४

कॉलेज से कुछ दूर राजामंडी में सड़क के किनारे किराये पर एक मकान अमरनाथ को मिल गया। उसके दूसरे भाग में एक नवयुवती रहती थी; अतः मकान मालिक ने पहला प्रश्न उससे यही किया कि वह अकेला रहेगा या परिवार सहित ? अमरनाथ ने बतलाया कि उसका विवाह हो चुका है और एक महीने के भीतर ही वह अपने परिवार को ले आयेगा। मकान मालिक ने उसे तीखी दृष्टि से देखते हुए कहा कि जहाँ तक संभव हो, अपने माता-पिता को वह जल्दी ही ले आवे। अमरनाथ को यह चेतावनी कुछ विचित्र-सी लगी; लेकिन वह समझ गया कि वह बात उस नवयुवती को ध्यान में रखकर कही गयी है; अतः बुरा उसने बहुत कम माना। मकान मालिक वृद्ध हो चले थे और मोहल्ले भर में अपनी सज्जनता के लिए प्रसिद्ध थे; अतः उसे ऐसा नहीं लगा कि उन्होंने उसके चरित्र पर संदेह किया है। एक संदेह उसे अवश्य हुआ। हो सकता है यह आक्षेप उस नवयुवती ने उठाया हो। मनुष्य के अचेतन जगत में न जाने कितनी बातें भरी रहती हैं जो समय-समय पर विशेष परिस्थितियों में मन में उठती हैं और मनुष्य

है कि उनकी परीक्षा किए बिना उन पर विश्वास कर लेता है और उनके संकेत पर अपना व्यवहार निर्धारित करता है और दुःख उठाता है। परिणाम यह हुआ कि अमरनाथ को मकान तो मिल गया; लेकिन उसे प्राप्त करने के लिए उसे कुछ झुकना पड़ा और इसके लिए उसने उत्तरदायी नीचे रहने वाली नवयुवती को समझा, अतः वह उसके प्रति कठोर हो उठा।

सच पूछिए तो नीचे के हिस्से का ऊपर के हिस्से से कोई विशेष सम्बन्ध न था। ऊपर दो कमरे थे और तीसरी मंजिल पर एक छोटा-सा कमरा और। नीचे आँगन, आमने-सामने दो कमरे। मकान मुख्य सड़क और गली के एक मोड़ पर था। युवती का दरवाज़ा गली में खुलता था। फिर भी नल अमरनाथ के आँगन में नीचे था। ऊपर एक नल था उसमें चौबीस घंटे पानी आता था। नीचे के नल तक पहुँचने के लिए दीवाल में एक दरवाज़ा था—एकदम स्वतन्त्र। उसे अपनी ओर से बन्द कर लेने पर युवती के हिस्से का अमरनाथ के हिस्से से कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता था। नवयुवती कब जाती है, कहाँ जाती है, कब लौटती है, इसका कोई हिसाब अमरनाथ नहीं रखता था। वह उस ओर से एकदम उदासीन था। खाना वह होटल में खा लेता था और रात को देर से लौटता था। नवयुवती को भी इस उपेक्षा की चिंता नहीं थी। वह भीतर का दरवाजा हर समय बन्द रखती थी। और अमरनाथ को भी उसके अस्तित्व का आभास केवल उसी समय मिलता था जब वह दीवाल के दूसरी ओर पानी भरने आती थी।

अमरनाथ अध्यापन, क्लब और टैनिस में इतना व्यस्त रहने लगा कि उसके घर में और भी कोई रहता है, इसका उसे ध्यान ही न रहा। एक दिन वह कॉलेज से घर लौट रहा था कि उसने अपने दरवाजे पर छह-सात वर्ष की एक लड़की को खड़े देखा। उसे देखकर लड़की गली में मुड़ गई। एक दूसरे दिन उसने स्कूल के समय मा-बेटी को साथ जाते देखा। तो नवयुवती अकेले नहीं है। उसके एक लड़की भी है। वह उत्सुक हो उठा। मकान मालिक न तो किराया लेने आया था और न उसने रसीद ही भिजवायी थी, अतः विवश होकर अमरनाथ को उसके घर जाना पड़ा।

मालिक मकान ने उसके लिए चाय मँगवायी और आदरपूर्वक उससे बात करता रहा।

अमरनाथ ने पूछा, आपके मकान में जो नीचे रहती हैं वे कौन हैं ?"

मालिक मकान ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा, "उन्होंने आपको नहीं बतलाया ?"

"नही, मेरी उनसे बातचीत ही नहीं हुई ?"

"अभी तक नहीं ?"

"बातचीत तो दूर, अभी हमने एक दूसरे के चेहरे को भी शायद ठीक से नहीं देखा है। अगर वे मुझसे बहुत नाराज़ हों, तो मैं मकान छोड़ दूँ।"

"लेकिन वे तो आपकी बड़ी प्रशंसा कर रही थीं।"

"मेरी प्रशंसा ?"

"जी हाँ, कह रही थीं बहुत सज्जन व्यक्ति हैं। अपने काम से काम। किसी की ओर निगाह उठा कर नहीं देखते। लेकिन, एक शिकायत भी कर रहीं थीं।"

"शिकायत—?"

"जी हाँ, कह रही थीं, कुछ लापरवाह क़िस्म के आदमी मालूम होते हैं।"

"लेकिन वह सब उन्हें कैसे मालूम है ? न मैं उनके घर गया, न वे मेरे घर आयीं, न उन्होंने मुझसे बातचीत की, न मैंने उनसे; न वे यह जानती है कि मैं कौन हूँ और न मैं यह कि वे कौन; फिर···"

"वे एक अध्यापिका हैं। नाम हैं संतोष। उनके एक लड़की है— बहुत प्यारी-सी। उसका नाम है आशा। ग़रीब होते हुए भी स्वाभिमानिनी है। आत्म-निर्भर होने का प्रयत्न कर रही हैं— एक प्रकार से है भी। मैंने उनसे पूछा भी कि क्या आपसे आपके परिवार को लाने के लिए अधिक आग्रह किया जाय, तो उन्होंने हँस

कर उत्तर दिया : नहीं, कोई आवश्यकता नहीं है। आप तो स्त्रियों से भी अधिक सीधे हैं।

अमरनाथ ने हँसकर पूछा, "क्या स्त्रियाँ सीधी होती हैं?"

"वे तो ऐसा ही समझती हैं।" मकान-मालिक ने उत्तर दिया। "और सच बात यह है कि मुझे इन बातों का विशेष अनुभव भी नहीं है।"

अमरनाथ किराया देकर वापिस चला आया।

इस बीच नगर के साहित्यिकों से अमरनाथ का परिचय हो गया था। कॉलेज में एक संस्था थी। नाम था—'साहित्य-परिषद्'। उसके प्रधान हिंदी विभाग के अध्यक्ष थे। वे ब्रजभाषा के प्रेमी और पुराने विचारों के व्यक्ति थे। आधुनिक साहित्य में न उनकी कोई गति थी और न उससे उन्हें कोई लगाव था; अतः नए साहित्य के लिए वहाँ कुछ किया जा सकता है, ऐसी संभावना अमरनाथ को नहीं दिखायी दी। इसी से उसने एक छोटी-सी नयी संस्था को जन्म दिया। नाम रखा उसका 'आलोक'। इसमें उसने नगर के कुछ उदीयमान लेखकों को सम्मिलित किया। अपने कॉलेज का कोई छात्र या छात्रा उसमें न आने पावे, इस बात का उसने विशेष रूप से ध्यान रखा।

आज 'आलोक' की पहली बैठक थी।

अमरनाथ के घर में कोई नौकर नहीं था; अतः प्रभातकाल में उठकर वह नीचे-ऊपर स्वयं ही झाड़ू दे लेता था। यह काम न उसे बुरा लगता था, न छोटा, न अपमानजनक। उसके कमरे में चीजें बिखरी रहती थीं—कपड़े, काग़ज़, पुस्तकें सभी कुछ। कभी-कभी लिखते-लिखते वह फ़र्श पर ही सो जाता था। अख़बार के टुकड़ों, पुस्तकों के कवर, पैड के कागज, लिफाफों की पीठ पर वह कहीं भी कुछ लिख देता था। इस अव्यवस्था से वह अभ्यस्त था। इसी से आज जब वह लौटा तो अपने कमरे को देखकर चकित रह गया। कमरे में एक प्रकार की व्यवस्था आ गई थी। कपड़े ढंग से टँगे हुए थे, पुस्तकें ढंग से सजी हुई। इधर-उधर बिखरे काग़ज़ों की चिटों का कहीं पता न था। धोबी कपड़े रख गया था। वे एक ट्रंक पर रखे थे।

उनमें से एक सफेद चादर निकालकर फर्श के गद्दे पर बिछा दी गई थी। एक शीशे में जड़ा सरस्वती का एक चित्र था। पास में धूपदान में एक बत्ती जल रही थी। बिना जली हुई कुछ बत्तियाँ पास में रखी हुई थीं।

अमरनाथ ज़ीने से उतरकर नीचे गया। भीतरी दरवाज़े की साँकल उसने खटखटाई और संतोष को संबोधित करते हुए बोला—ऊपर आइए।

संतोष कुछ न समझती हुई थोड़ी देर में ऊपर आ गई। वह मँझले क़द और दुबले अंग की रमणी थी; पर स्वस्थ। मुख पर लावण्य और तेज। खुलता हुआ गेहुँआ रंग। अवस्था चौबीस के आस-पास। शरीर की गठन इस प्रकार की कि बड़े होने पर भी अवस्था का ठीक से अनुमान लगाना कठिन हो जाय। ऐसी महिलाएँ अपनी अवस्था से सदैव कुछ कम ही प्रतीत होती हैं, यहाँ तक कि यदि कोई बतलाए नहीं तो तीस वर्ष तक तो उन्हें देखकर यह पता लगता ही नहीं है कि उनका विवाह हुआ भी है या नहीं, उनके बच्चे हुए भी हैं या नहीं।

अमरनाथ ने उसकी ओर बिना देखे पूछा,—"इस कमरे में आप आई थीं?"

"हाँ।"

"यह कमरा आपने ठीक किया है?"

"हाँ।"

"क्यों?"

"यों ही।"

अमरनाथ ने कठोर पड़ते हुए कहा,—"यों ही के क्या माने होते हैं? यहाँ आप कोई सिनेमा का सीन क्रिएट करने आयी थीं?"

संतोष मर्माहत-सी होकर चुप रही।

"इधर-उधर जो काग़ज़ के टुकड़े बिखरे पड़े थे, उन्हें आपने कूड़ा समझकर फेंक दिया न?"

संतोष चुप।

"आपको पता है उनमें क्या था?"

"कुछ लिखा था क्या ?" संतोष ने शांत भाव से पूछा ।

"जी हाँ । लेकिन आपकी समझ में क्या आयेगा ! जाइए और अब इस कमरे में फिर कभी नहीं आइए । बेवकूफ़ कहीं की ।"

संतोष बिना कुछ उत्तर दिए ज़ीने से उतर गई । इतने में मित्रों ने आवाज़ दी; अरे भाई, हम ऊपर आ सकते हैं । दरवाज़ा खुला हुआ था । सब ऊपर आ गए ।

गोष्ठी चल रही थी कि आशा एक थाल में चाय के तीन प्याले लेकर आयी । अमरनाथ ने थाल वहीं रख लिया और मिठाई उसमे रख दी । थोड़ी देर मे वह तीन गिलासों मे चाय रखकर चली गयी । उसके लौटने पर एक मित्र ने कहा,—"तुम तो कहते थे तुम्हारी पत्नी यहाँ है ही नहीं । यह चाय कहाँ से आ गई ?"

"मेरा विवाह तो अभी गर्मियों मे हुआ है । फिर सात साल की यह लड़की भी मेरी है ?"

"आखि़र, ये हैं कौन ?"

"नीचे के हिस्से में रहने वाली एक अध्यापिका है ।" अमरनाथ ने झंझट से बचने के लिए उत्तर दिया ।

"आपके ऊपर कृपा-दृष्टि कुछ अधिक मालूम होती है ।" दूसरे सदस्य ने व्यंग्य किया ।

"किसी की व्यक्तिगत बातो मे बोलने का हमे क्या अधिकार है जी ।" एक कवि सदस्य ने हँसकर कहा और अपनी "आँगन की चाँदनी" शीर्षक कविता सुनानी प्रारंभ की ।

दूसरे दिन संध्या को जब अमरनाथ घर लौटा तो आशा उदास-सी उसके पास आकर खड़ी हो गई । पूछने पर पता चला कि रात को उसकी मा रोती रही थी और सबेरे से उसे बुखा़र है । अमरनाथ चिंतित हो उठा । एक होमियोपैथ के पास जाकर वह दवा ले आया । आशा को समझाकर दवा उसने संतोष के पास भिजवा दी । दवा संतोष ने उठाकर फेंक दी ।

५

एक दिन अमरनाथ के एक मित्र ने किनारी बाज़ार में उसे झकझोर कर कहा—देखो, सामने जिनी जा रही है।

अमरनाथ को यह लड़कपन अच्छा नहीं लगा। बाज़ार में इस प्रकार महिलाओं को देखना उसका स्वभाव नहीं था। उसने झुँझलाकर पूछा, "कौन 'जिनी' ?"

"अरे, आगरे की सुन्दरता।" इतना कहकर उसके मित्र ने उसे खींच-कर सड़क की दूसरी ओर ले जाना चाहा।

अमरनाथ ने हाथ छुड़ाते हुए कहा,—"कोई सुन्दर लड़की ही है न ? लेकिन उसे देखने का ऐसा उतावलापन क्या है ? सुन्दर लड़कियों को क्या तुमने कभी देखा नहीं है ?"

"रूप की सौदामिनी है। पल-भर में अदृश्य हो जायगी। फिर पछ-ताते रह जाओगे और कहोगे आगरे में कुछ देखने को नहीं मिला।"

अमरनाथ ने कहा—"अच्छा ! लेकिन हाथ से इशारे तो न करो। मुझे वैसे ही बतलाओ या फिर तुम चुप रहो। मैं देख लूँगा।"

"लो, वह तो सड़क पार करके इधर ही आ रही है। हो यार, भाग्यशाली।" मित्र बोले।

'जिनी' अमरनाथ के पास से निकल गई।

मित्र अब तक साँस रोके खड़ा था। उसके दूर निकल जाने पर उसने पूछा,—"कहो, कैसी है ?"

"सुंदर है।"

"लेकिन है बहुत बदचलन।"

"यह लड़की बदचलन नहीं हो सकती।"

"जी हाँ, नहीं हो सकती। हम जो बचपन से यहाँ रह रहे हैं, उसे नहीं जानते। आप जो कल आये हैं, पल भर को देखते ही उसके संबंध मे निर्णय देने के अधिकारी हो गए !"

अमरनाथ ने अपने मित्र से कहा,—"चलो, लौट चलें।"

"ताज देखने नहीं चलोगे ?"

"फिर कभी चलेंगे। ताजमहल देखना अभी भाग्य में नहीं बदा है, ऐसा लगता है।"

"फिर भी, हुआ क्या ?"

"ऐसे ही, मन उदास हो गया।"

"जिनी को देखकर न ?'

"हाँ, सुन्दरता को देखकर मेरे मन पर ऐसा ही प्रभाव पड़ता है।"

"तो तुम्हें भी 'जिनी' के प्रेमियों की सूची में सम्मिलित कर लिया जाय ?"

"नहीं।"

"फिर ?"

"फिर क्या, लौट चलो।"

अमरनाथ लौट आया और घर न जाकर शहर की सड़कों पर अकेला घूमता रहा। बहुत रात गए वह घर लौटा।

६

शिक्षा-संस्थाओं में कवि सम्मेलन होते ही रहते हैं। एक दिन ऐसा भी था जब ऐसे आयोजनों में भाग लेने का अमरनाथ को बड़ा चाव रहता था; लेकिन समय के साथ वह उत्साह अब ठंडा हो चला था; अतः जब एक स्थानीय कॉलेज के कुछ विद्यार्थी उससे कवि-सम्मेलन में भाग लेने के लिए आग्रह करने आये तो उसने स्पष्ट रूप से मना कर दिया। विद्यार्थी लोग इस उत्तर से हतोत्साह नहीं हुए और उन्होंने उत्सव के संयोजक मेहता जी को उसके पास भेजा। मेहता जी ने जब समझाया कि कवि-सम्मेलन में बाहर के बहुत से प्रतिष्ठित कवि भाग ले रहे हैं, ऐसी दशा में स्थानीय

कवियों का भाग न लेना शहर की प्रतिष्ठा की दृष्टि से बहुत उचित नहीं कहा जा सकता, तो उसने बात न बढ़ने के डर से उसमें सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया।

कवि-सम्मेलन रात के एक बजे समाप्त हुआ। कवियों को कार से पहुँचाने का प्रबन्ध था। मेहता जी जब अमरनाथ के पास आये तो उसने कहा : मैं जैसे आया हूँ, वैसे ही चला जाऊँगा। आप बाहर से आये अतिथियों की चिंता करें। इतने में एक महिला को पास बुलाकर मेहता जी ने कहा : यह मेरी पत्नी मोहिनी है।

अमरनाथ ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

मोहिनी ने कुछ आगे बढ़कर कहा, "आपको कोई आपत्ति न हो तो किसी दिन खाने पर हमारे यहाँ आने का कष्ट करें।"

अमरनाथ ने धन्यवाद देते हुए कहा, "लेकिन मैं आप दोनों को ढूंढ़ूंगा कहाँ ?"

"हम लोग बाग़ मुज़फ़्फ़र खाँ में रहते हैं।"

मेहता ने अपनी पत्नी की ओर देखते हुए कहा, "लेकिन मोहिनी, यह कितनी मज़ेदार बात है कि इन्हें मेरा नाम अभी तक नहीं मालूम है।"

मोहिनी ने मीठे हँसते हुए कहा, "यह बात तो कवियों के स्वभाव के अनुकूल ही हुई।"

"नाम मेरा मधुसुदन है।" मेहता बोले, "लेकिन आपको मेरा घर ढूंढ़ना नहीं पड़ेगा। मोहिनी की आज्ञा है तो मैं आपके घर से ले आऊँगा।"

"इसका मतलब है कि आप नहीं चाहते कि मैं आऊँ ?" अमरनाथ ने हँसकर पूछा।

मेहता ने वैसे ही हँसकर अपनी पत्नी से कहा, "इस बात का उत्तर दो मोहिनी।"

"तो आप कब आयेंगे ?" मोहिनी ने कोमल स्वर में पूछा।

"ऐसा कीजिए कि अपना घर दिखाते हुए मुझे आप मेरे घर छोड़ आइए।" अमरनाथ बोला।

"आइए" मेहता जी बोले।

मोहिनी-मेहता के यहाँ अमरनाथ का आना-जाना प्रारम्भ हो गया।

एक संध्या को जब वह उनके यहाँ पहुँचा तो देखा मोहिनी किसी महिला से बैठी बात कर रही है। मोहिनी ने परिचय कराते हुए कहा, "यह मेरी सहेली अपर्णा कौल है। आपकी कविताओं की बड़ी प्रशंसक है।"

"मेरी कविताएँ आपको कहाँ से मिल गईं ?"

"क्यों, आपका एक कविता-संग्रह प्रकाशित हुआ तो है।" अपर्णा ने कहा।

"आपने उसे कहाँ देखा ?"

"एक दिन मैं कुछ पुस्तकें खरीदने गयी थी, उन्हीं में उसे भी ले आई। उसमें सारे गीत दुःख के ही थे। दुःख के गीत आप क्यों लिखते हैं?"

अमरनाथ ने पूछा, "आपको दुःख के गीत अच्छे नहीं लगते ?"

"लगते क्यों नहीं हैं; लेकिन यह मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं हुआ। शायद यह प्रश्न मुझे करना नहीं चाहिए था।"

"बात यह है अपर्णा कि जिस व्यक्ति के जीवन में चारों ओर सुख ही सुख बिखरा रहता है, उसे दुःख की चर्चा करना अच्छा लगता है।" मोहिनी बोली।

"आप बतलाइए।" अपर्णा ने प्रश्न किया।

"जवाब आपको मिल तो गया।" अमरनाथ ने कहा।

"ऐसा मुझे नहीं लगता।" मुझे पर जोर देती हुई अपर्णा ने संदेह प्रकट किया।

"अच्छा, आप दोनों में से हीरे की किसी को पहचान है ?" बात को उड़ाते हुए अमरनाथ ने प्रश्न किया।

"क्यों, हीरे की क्या जरूरत पड़ गई ?" मोहिनी ने पूछा।

"वाइफ़ की नाक में लौंग के लिए चाहिए।"

"यह काम आपका मैं कर दूँगी ।" अपर्णा ने कहा ।

"तुम्हें देखकर तो यह प्रश्न ही किया है इन्होंने ।" मोहिनी बोली ।

"क्या मतलव ?" अमरनाथ ने पूछा ।

"अरे, इनकी आभूषणों की अपनी एक दूकान है । 'अपर्णा ऑर्नमेंट हाउस' का नाम अब तक नहीं सुना क्या ?"

इतने में दो व्यक्तियों के भीतर आने की आवाज़ सुनाई दी । मधुसूदन मेहता के साथ अपर्णा के पति कृष्णप्रसाद कौल थे । मोहिनी ने अमरनाथ का कौल से परिचय कराया और बोली,—"आपके लिए ग्राहक मैंने तैयार कर लिया है । बतलाइए, क्या कमीशन देंगे ?"

"कमीशन में हमें ही ले लीजिए ।" मि० कौल बोले ।

"यह कुछ न देने का वहाना है ।" मोहिनी ने हँसते हुए चट से उत्तर दिया ।

"इन्हें हीरे की एक छोटी-सी लौंग की जरूरत है ।" अपर्णा ने अमरनाथ की ओर संकेत करते हुए कहा ।

"हाँ हाँ, किसी दिन तशरीफ लाइए । आपही की दूकान है ।" कौल साहब बोले ।

"जैसे अपने को मुझे दे रहे थे, वैसे ही दूकान अब इन्हें दे रहे हैं शायद ।" मोहिनी ने हास्य की मधुरता के बीच व्यंग्य किया ।

"आप किसी दिन बहिन जी को लेकर हमारे घर आइए । लौंग मैं वहीं मँगवा लूंगी ।" अपर्णा ने अमरनाथ से कहा ।

"अर्थात् बिना बहिन जी के मैं आपके घर नहीं आ सकता ?"

"अरे साहब, यह आपने क्या बात कही ! आप एकदम अकेले आइए । और मैं आपको इत्मीनान दिलाता हूँ कि उस दिन मैं घर पर नहीं रहूँगा ।" कृष्णप्रसाद ने हँसते हुए कहा ।

"लेकिन मैं इनके साथ आऊँगी ।" मोहिनी बोली ।

"जितनी जल्दी वह शुभ दिन आये, उतना ही अच्छा ।" मि० कौल ने कहा ।

"अपनी कविताएँ लाना न भूलिएगा।" अपर्णा बोली।

"कविताएँ मुझे बहुत याद हैं—अपनी भी और दूसरों की भी।" अमरनाथ ने आश्वासन दिया।

"तो अब याद दिलाने की जरूरत नहीं है?" अपर्णा ने प्रश्न किया।"

"नहीं।" अमरनाथ और मोहिनी ने एक साथ कहा।

मधुसूदन मेहता जो अब तक चुप खड़े थे, इस संयोग को लक्ष्य करके कुछ चकित हुए।

७

अमरनाथ को एक दिन एक पत्र मिला जिसे पढ़कर वह थोड़ा चकित हुआ। पत्र दूसरे कॉलेज की एक छात्रा ने लिखा था। उससे यह अनुमान लगाना कठिन था कि वह क्या चाहती है। पत्र में उसकी और उसके पढ़ाने की प्रशंसा थी। अमरनाथ ने शिष्टतावश उत्तर दे दिया। पत्र का उत्तर तुरन्त आया। उसमें कई कविताएँ थीं। उन्हे देखने का आग्रह था। अमरनाथ ने किसी कविता का छन्द ठीक करके और किसी का शीर्षक बदलकर उन्हे भी लौटा दिया। उसने परामर्श दिया कि लेखिका को अभी कविताएँ न लिखकर गद्य-गीत लिखने चाहिए। इसके तीसरे ही दिन स्टाफ़-रूम में सहसा एक नवयुवक और नवयुवती ने प्रवेश किया।

अमरनाथ के सामने पहुँचकर लड़की ने कहा, "मेरा नाम मीरा है और यह मेरा छोटा भाई रामकृष्ण है।"

अमरनाथ ने दोनों को बिठाया। बोला, "यहाँ तो चाय तक आपको नहीं पिलायी जा सकती।"

"नही नहीं, हम चाय पीने नहीं आये। केवल आपके दर्शन करने आये हैं।" मीरा ने कहा।

"आप समझती हैं मैं दर्शनीय हूँ?" अमरनाथ ने पूछा।

मीरा झेंप गयी । बोली, "और मैं आपको कहाँ ढूँढ़ती ? घर का पता था नहीं । लेकिन मुझे आपसे कुछ बातें करनी हैं । आप चाहे तो मैं आपके घर आ सकती हूँ और आपत्ति न हो तो रामकृष्ण, आपको जब भी सुविधा होगी, घर ले जायगा ।"

"दोनों ही बातें सम्भव हैं ।" अमरनाथ बोला, "लेकिन पहले आप हमारे ही घर आइए ।" उसने बतलाया कि उसका घर बिल्कुल पास में ही सड़क के किनारे है । मकान पर उसके नाम की प्लेट लगी हुई है ।

और एक दिन मीरा अमरनाथ के घर आई और बहुत देर तक न केवल उससे बल्कि उमा से भी बातें करती रही । चलते समय वह अमरनाथ की मा के पास गयी ।

विद्या ने उसके घर के सम्बन्ध में प्रश्न किया । मीरा ने बताया उसके पिता का नाम काशीनाथ है और वे रेशमी साड़ियों का व्यापार करते हैं । उसने उमा और विद्या को अपने घर ले जाने का आग्रह किया और कहा कि उसकी मा और भाभियाँ उनसे मिलकर बहुत प्रसन्न होंगी ।

"तुम्हारा विवाह अभी नहीं हुआ ?" विद्या ने सहसा पूछा ।

"नहीं, माता जी । हम अभी पढ़ेंगे ।" मीरा ने चट से जवाब दिया ।

"साड़ी का जो पल्ला तुम्हारे कंधे पर पड़ा हुआ है, वह सिर पर होता तो तुम और भी सुन्दर लगतीं, बिटिया ।" विद्या बोली ।

मीरा ने पल्ला सिर पर करते हुए कहा, "मुझसे भूल हुई माता जी ।"

विद्या को प्रणाम करके मीरा विदा हुई । उमा ने क्षमा माँगते हुए कहा, "माता जी के कहने का बुरा न मानियेगा । इनके मन में जो आता है, बिना सोचे-समझे कह देती हैं ।"

"हमारी दादी जी की भी यही हालत है । वे तो छोटी से छोटी बात पर हमें टोकती रहती हैं । इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं है ।"

तब से कभी-कभी अपनी रचनाएँ दिखाने मीरा अमरनाथ के घर आने लगी । उसका आना जब अधिक बढ़ने लगा तो यह बात विद्या को कुछ

खटकी। उमा ने उसे बहुत समझाया; लेकिन विद्या यही कहती रही : शहर में क्या यही एक लेखक हैं ? यह किसी और से क्यों नहीं पूछती ? पूछना दस-पाँच मिनट होता है। यह क्या कि बैठी घण्टों बात करती रहती है। मैं किसी क्वांरी लड़की का अपने लड़के से मिलना उचित नहीं सनझती। तुम्हे बेटी, अभी जीवन का अनुभव नहीं हैं। यह क्या ही-ही हू-हू होती रहती है ? मुझे नहीं अच्छी लगती।

उमा ने अपने पति से कुछ नहीं कहा; लेकिन अमरनाथ को इस संदेह का आभास कुछ न कुछ मिल ही गया। यह सब कुछ जानकर उसे बहुत पीड़ा हुई। मीरा के पत्र को पढ़कर उसे देखने की उत्सुकता उसके मन में अवश्य जाग्रत हुई थी और बिना प्रयत्न उससे उसकी भेंट भी हो गई। इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि मीरा उसे देखने में अच्छी लगी। लेकिन उसके आने-जाने पर भी उसके प्रति किसी गहरे भाव का अनुभव वह अपने मन में नही करता था। इस सन्देह से उसने अपने को थोड़ा अपमानित-सा अनुभव किया। क्यों ये बड़े-बूढ़े आजकल के नवयुवकों और नवयुवतियों को लेकर अकारण सन्देह करते है ? उसने कल्पना को कि यदि संसार से सभी वृद्ध और वृद्धाएँ एकदक समाप्त हो जायँ तो कैसा हो ? शायद तब संसार अधिक सुखी हो। किसी दिन तो यह पौध समाप्त होगी ही। लेकिन नहीं, वृद्ध पिता अपने पुत्रों पर और सासें अपनी वहुओं पर अपने संस्कार डाल रही हैं। वे पुत्र अपने पुत्रों पर और वे बहुएँ अपनो बहुओं पर अपने संस्कारों का प्रभाव डालेंगी और इस प्रकार यह परम्परा कभी भी जड़मूल से नष्ट नहीं होगी। फिर उसे यह जानकर सन्तोष हुआ कि जो नया आलोक हमारी खिड़कियों से हमारे घरों में प्रवेश कर रहा है, वह धीरे-धीरे हमारे कमरे को जगमगायेगा ही। इस आलोक के स्वागत के लिए हमें अपने द्वार खुले रखने चाहिए, अपने आँगन खुले।

यह ठीक है कि विद्या का व्यवहार आधुनिक युग के बहुत अनुकूल नहीं है। यह भी ठीक है कि उसके संस्कार प्राचीन ढंग के हैं। लेकिन उसके व्यवहार और संस्कार के मूल में जो आशंका निहित है, वह क्या एकदम

निराधार है ? इस बात का अमरनाथ के पास क्या सचमुच कोई उत्तर है ? इस अधिक मिलने-जुलने में यदि किसी ओर से आकर्षण उत्पन्न हो जाय तो क्या होगा ? क्या तब विद्या के परिवार में अशान्ति उत्पन्न नहीं होगी ? क्या तब उमा का जीवन दुःखमय नहीं हो जायगा—उमा जो विद्या की पुत्रवधू है, उमा जो अमरनाथ की पत्नी है ?

थोड़े विचार से उसकी मा के दृष्टिकोण में सत्य का जो अंश निहित था, उसका छोर अमरनाथ के हाथ में आ गया; लेकिन फिर भी उसकी आत्मा को पूरा परितोष नहीं हुआ। उस संदेह में कुछ ऐसा था जो गर्हित था। इसकी प्रतिक्रिया अमरनाथ के मन मे कई रूपों में हुई। पहली यह कि मीरा का घर में आना तो रुकना नहीं चाहिए; लेकिन उसके आने की एक सीमा होनी चाहिए। उसके बैठने की भी। इसके लिए यह हो सकता है कि कभी मीरा उसके घर आवे, कभी वह उसके यहाँ जाय और यदि वह चाहे तो दोनों किसी तीसरे स्थान पर मिल लिया करें—यदि आवश्यक हो तो। दूसरे इस भेंट को हो सके तो और स्वाभाविक बनाना चाहिए। परिणाम यह हुआ कि मीरा को उसने 'आलोक' की सदस्या बना लिया। मीरा को इससे सचमुच बहुत प्रसन्नता हुई। 'आलोक' की बैठकें कभी अमरनाथ के घर पर, कभी किसी अन्य सदस्य के घर पर और कभी मीरा के घर पर होने लगीं। बैठक जिस दिन अमरनाथ की छत पर होती, उमा वहाँ उपस्थित रहती। मीरा ने एक दिन विद्या से भी आग्रह किया कि वह वहाँ आकर बैठे। विद्या ने कहा,—"मैं वहाँ बैठकर क्या करूँगी ? मेरी समझ में कुछ नहीं आता।"

बैठक अमरनाथ की छत पर हो रही थी। इस समय तक 'आलोक' के दस-बारह सदस्य हो चुके थे। महिला-सदस्य के नाम पर मीरा ही थी। कॉलेज में पढ़ने के कारण उसे लड़कों से मिलने या बातचीत करने में झिझक का अनुभव बिल्कुल नहीं होता था। इसके विपरीत इन सदस्यों में से कुछ ऐसे भी थे जो उससे बात करने में झिझकते थे। मीरा ने अपनी ओर से सबसे बातचीत की। वह कभी किसी के पास और कभी

किसी के पास बैठती। चाय आने पर उमा ने सबके सामने प्याले रखे और मीरा ने चाय बनाकर दी। इतना होने पर भी इन सदस्यों में से छैलबिहारी नाम का एक कवि फिर भी मीरा से झेंपता रहा। आज मीरा उसी के पास बैठी थी। थोड़ी देर में मीरा से उसकी रचनाएँ पढ़ने के लिए अनुरोध किया गया।

मीरा ने मुस्कराकर कहा,—"पहले छैलबिहारी जी अपनी कविता का पाठ करेंगे। इसके उपरांत मैं अपने कुछ गद्य-गीत सुनाऊँगी।"

छैलबिहारी बहुत देर तक 'ना' 'नहीं' 'देखिए आज रहने दीजिए' 'मेरी कविताओं में कुछ नहीं है' आदि कहता रहा। अन्त में, विवश होकर आँखें नीची करके उसने अपनी एक कविता सुनाई—शीर्षक था—आँखें और आँसू। छैलबिहारी का कंठ मधुर था। रचना में बार-बार किसी की बड़ी, कजरारी, मादक आँखों और उन्हें देखकर अपने आँसू बहाने की चर्चा थी। जिस समय कविता पढ़ी जा रही थी, कुछ सदस्यों की निगाहें मीरा की बड़ी आँखों की ओर उठीं। मीरा जान-बूझकर इस तरह बैठी रही जैसे कोई बात ही नहीं हुई। रचना समाप्त होने पर सभी सदस्यों ने तालियाँ बजाते हुए छैलबिहारी की कविता की प्रशंसा की। छैलबिहारी ने सिर संकोच से और भी नीचे झुका लिया। एक सदस्य एक कोने से बोला; क्या बात है—आँखें और आँसू—किसी की आँखें और हमारे आँसू!

मीरा ने कई गद्य-गीत पढ़े। गद्य-गीत प्रेम-सम्बन्धी थे। महिला होने के नाते किसी ने उसकी रचनाओं की आलोचना नहीं की। सदाशिव ने एक निबन्ध पढ़ा। शीर्षक था—चूहे। निबन्ध क्या था पूरी चुहलबाज़ी थी। इसके उपरांत राजेश ने एक कहानी सुनाई। शीर्षक था—फ़्लर्ट। विषय शीर्षक से ही स्पष्ट था। कहानी में कहीं-कहीं अश्लील संकेत थे। उसे सुनकर मीरा ने थोड़े संकोच का अनुभव किया। कहानी सुनाकर उसने कहा कि वह एक कविता सुनाना चाहता है। कविता व्यंग्य-प्रधान थी। अंत में लीलाधर ने 'सड़क' शीर्षक एक रेखा- चित्र पढ़ा।

मीरा ने राजेश से पूछा,—"आप कहानी और कविता के अतिरिक्त और क्या-क्या लिखते हैं ?"

"और कुछ नहीं लिखता।" राजेश ने उत्तर दिया।

"अगर आप कोई एक माध्यम अपना लें तो क्या ठीक नही होगा ?"

"मैं तो यह सोच रहा हूँ कि दो-एक एकांकी भी लिखकर देखूँ।"

"आप यह समझते हैं कि आपको सब मे सफलता मिल जायगी ?"

"क्या कहा जा सकता हैं ? जो वहुमुखी प्रतिभा के कलाकार होते है उन्हे सभी क्षेत्रों में सफलता मिल भी जाती है। 'टैगोर' या 'प्रसाद' को क्या आप नहीं जानतीं ?" सदाशिव ने पूछा।

उत्तर दिया छैलविहारी ने। वह बोला,—"लेकिन सभी तो 'टैगोर' या 'प्रसाद' नही हो सकते। जो बुद्धिमान आदमी होते है वे अपने माध्यम को प्रारंभ से ही चुन लेते है। शरच्चन्द्र या प्रेमचन्द ने कविता नहीं लिखी। लिखते तो मै नहीं जानता क्या दशा होती।"

अमरनाथ चुप बैठा था। उसने कहा, "लेकिन आज के युग में ऐसा कोई बंधन नहीं रहा है कि जो व्यक्ति कविता लिखता है, वह गद्य लिखे ही नहीं।"

"यह बात तो आपकी ठीक है; लेकिन जब ऐसे लोग जो प्रधान रूप से कवि हैं, गद्य की ओर झुकते है तब उनके गद्य में भी उन गुणों का समावेश हो जाता है जो विशेष रूप से काव्य से सम्बन्ध रखते हैं। ऐसे साहित्यकार प्रयत्न करने पर भी अपनी भाषा को अलंकृत होने से नहीं बचा सकते। इससे जो लोग गद्य में काम करते हैं उनकी भाषा उन लोगों ने भिन्न होती है जो कवि और गद्यकार दोनों हैं।" मीरा ने कहा।

"स्वयं आपके गद्य-गीतों की भाषा अलंकृत हैं। उसमें काव्य-सौन्दर्य के न जाने कितने प्रसाधनों का उपयोग किया गया है।" राजेश ने मीरा को टोका।

"लेकिन मेरा तो माध्यम ही गद्य और काव्य के बीच का है, इसी से उसे गद्य-काव्य कहते हैं। फिर भी कहानी के लिए मैं इस शैली का उप-

योग ठीक नहीं समझती । इस बात को आप मानें चाहे न मानें ।" मीरा ने उत्तर दिया ।

"कहानी में कल्पना का योग आपको वांछनीय नहीं ?" राजेश ने उसे निरुत्तर करने के लिए पूछा ।

"कथानक के गठन मे कल्पना का योग तो ठीक हैं; लेकिन शैली मे अलंकरण वाली कल्पना को उससे जहाँ तक संभव हो दूर ही रखना चाहिए। कल्पना प्रतिभाशाली साहित्यकार की बड़ी भारी शक्ति है, यह मैं मानती हूँ; पर इसका उपयोग काव्य मे ही अच्छा लगता है। काव्य का सौन्दर्य बहुत कुछ इस बात मे निहित रहता है कि उसका अर्थ थोड़ा खुले, थोड़ा संकेत से जाना जाय । पर गद्य का जन्म इसलिए हुआ है कि काव्य मे जो नहीं खिल सकता, गद्य उसे जगमगा दे। गद्य हमारे वैविध्य-पूर्ण जीवन को व्यक्त करने के लिए सबसे सफल माध्यम है। उसमें कल्पना का थोड़ा उपयोग तो भला लग सकता हैं; पर उसका अत्यधिक प्रयोग वांछनीय नहीं ।" मीरा ने कहा ।

"आपने तो अपनी कहानी में यहाँ वहाँ कविता के टुकड़े से जड़ दिए है ।" छैलबिहारी ने मीरा का समर्थन करते हुए राजेश से कहा ।

"लेकिन कहानी की यह भी तो एक शैली हो सकती है ? साहित्य मे कला को क्या आप उतना हीन समझते है ?"

सबको चुप होते देख अमरनाथ ने कहा, "साहित्य का प्रधान तत्व वस्तु ही है। कला या शैली का जन्म उस तत्व का परिचय कराने और निखारकर सामने रखने के लिए हुआ है। एक प्रकार से वह भावनाओं और विचारों को पाठकों के हृदय तक पहुँचाने का एक साधन मात्र है। शैली को साहित्य में प्रधानता नहीं देनी चाहिए। वह बहुत स्वाभाविक होनी चाहिए ।"

"स्वाभाविक से आपका तात्पर्य क्या है ?" राजेश ने पूछा ।

"भावना और विचारों को व्यक्त करते समय अभिव्यक्ति जो भी स्वाभाविक रूप धारण कर ले, वास्तविक शैली तो वही हैं ।" अमरनाथ

ने उत्तर दिया और चुप हो गया ।

"मेरा प्रस्ताव है कि कुमारी मीरा से दो-एक गद्य-गीत और सुने जायँ ।" एक आवाज़ आई ।

"हाँ, हाँ" कई सदस्यों ने कहा । मीरा ने एक गद्य-गीत पढ़कर सुनाया जिसका तात्पर्य संक्षेप मे यह था कि किसी नारी की आत्मा किसी ऐसी चीज़ की आकुल खोज में है जिसका पता उसे स्वयं नहीं है । गद्य-गीत सुनकर सभी थोड़ी देर के लिए भाव-मग्न हो गए ।

बैठक की समाप्ति पर अमरनाथ ने मीरा से पूछा, "रामकृष्ण को तो आप साथ लायीं नहीं । अकेली कैसे जायँगी ?"

"आपको अब कोई काम है ?" मीरा ने पूछा ।

"नहीं, मुझे अब कुछ नहीं करना है । मैं आपको पहुँचाने चल सकता हूँ ।" अमरनाथ ने कहा ।

छैलबिहारी ने आगे बढ़कर कहा, "आप कहें तो मैं आपको पहुँचा दूँ ? मुझे तो और भी आगे जाना है ।"

"अच्छा, मैं इन्हीं के साथ चली जाऊँगी ।" मीरा ने अमरनाथ और अन्य सदस्यों से विदा माँगते हुआ कहा ।

छैलबिहारी जब तांगे वाले के पास बैठने लगा तो मीरा ने कहा, "वहाँ नहीं, मेरे पास बैठिए ।"

"आपके पास ?"

"हाँ । क्या हानि है ?"

"जी नहीं, मैं तो यह सोच रहा था कि आपको कोई आपत्ति न हो ।" छैलबिहारी ने पुलकित होते हुए कहा और मीरा के पास आकर बैठ गया । तांगा चल पड़ा ।

"आपकी रचनाएँ तो बड़ी भावपूर्ण थीं ।" छैलबिहारी ने प्रशंसात्मक ढंग से कहा ।

"आपकी कविता तो उनसे भी कहीं अच्छी थी । आज की गोष्ठी में सबसे अच्छी आपकी कविता ही रही ।" मीरा ने सहज भाव से

उत्तर दिया।

"आप इतना अच्छा कैसे लिख लेती हैं ?"

"प्रोफ़ेसर साहब की कृपा हैं।"

छैलबिहारी कुछ चौंका। उसने पूछा, "वह कैसे ?"

"पहले मैंने भी अपना साहित्यिक जीवन कविता से ही प्रारम्भ किया था। अपनी रचनाएँ मैंने अमरनाथ जी को दिखाईं। उन्होंने मुझसे स्पष्ट कहा कि भाव तो मेरे ठीक हैं; पर वे सहज भाव से छंद में ढल नहीं पाते; अतः मैं अपना माध्यम बदल दूँ। माध्यम वाली बात मैंने उन्हीं से सीखी है। मैं भी अब सोचने लगी हूँ कि जितनी जल्दी हो, साहित्यकार को इस बात का आभास हो जाना चाहिए कि उसका उपयुक्त माध्यम क्या है ? अपनी भावना को गद्य-गीतों में मैं बहुत ही सहज भाव से व्यक्त कर पाती हूँ। मैंने तो निश्चय किया है कि जीवन में मैं और कुछ नहीं लिखूँगी—केवल गद्यगीत, केवल गद्यगीत।"

छैलबिहारी ने स्वर को कुछ धीमा करते हुए कहा, "मेरी बातचीत आपसे अब हुई; लेकिन मैं आपको जानता बहुत दिनों से हूँ ?"

"कब से ?" मीरा ने चकित होते हुए पूछा।

"दो वर्ष होने को आये। तब आप बी० ए० फ़ाइनल में थीं। मेरा घर कॉलेज के रास्ते में पड़ता है। एक दिन छत पर बैठा मैं कविता लिख रहा था कि दृष्टि आपके ताँगे पर पड़ी। मैं देखता ही रह गया। इसके उपरांत इसे एक साधारण घटना समझकर मैंने सोचा कि अब मैं आपको न देखूँ; लेकिन दूसरे दिन कोई काम न होने पर भी मैं उस समय छत पर चला गया। आपका तांगा निकला तो मेरा कलेजा धक् से रह गया। फिर तो आपको देखने का अभ्यास-सा हो गया। जिस दिन नहीं देख पाता था, कुछ अच्छा ही नहीं लगता था। एम० ए० प्रीवियस में आप तीस-पैंतीस दिन एक साथ कॉलेज नहीं गईं। पता नहीं कहाँ चली गयी थीं ?"

"मैं टायफॉयड से बीमार हो गई थी।"

"कुछ ऐसा ही हुआ होगा। उन दिनों मैं बहुत उदास रहा।"

मीरा ने छैलबिहारी के स्वर में व्यथा का अनुभव किया। अपने स्वर को संयत करते हुए उसने पूछा, "आपने छत से उतरकर कभी मुझे टोका क्यों नहीं ? इससे पहले तो मैंने आपको कभी नहीं देखा।"

"डर लगता था।"

मीरा ने अनजान बनकर पूछा, "किस बात का डर ?"

"यही कि आप बुरा न मान जायँ।"

"और आप दो वर्ष तक मुझे नित्य निकलते देखते रहे ?"

"हाँ।"

"और आपका साहस कभी मुझसे कुछ कहने का नहीं हुआ ?"

"नहीं।"

"इसका कारण यह था कि आपको मेरे पास आने में डर लगता था ?"

"हाँ।"

"किस बात कर डर ?"

"यही कि जो है वह भी नष्ट न हो जाय।"

"और वह डर इस समय मुझसे बात करते हुए नहीं लग रहा है ?"

छैलविहारी थोड़ा सहम गया। कंपित स्वर में उसने कहा, "थोड़ा-थोड़ा डर तो अब भी लग रहा है। लेकिन अगर आपने अपने पास न बुला कर बिठाया होता, तो मैं जीवन भर आपके पास आने का साहस नहीं कर सकता था और उस भावना को मन में लेकर ही जीवन व्यतीत कर देता।"

मीरा चुप रही। वह न जाने क्या सोच रही थी। घर उसका पास आ रहा था।

जिस दिन से मीरा 'आलोक' की सदस्या बनी थी, उसी दिन से छैल विहारी बहुत उत्साहित, बहुत प्रसन्न था। अच्छा तो प्रत्येक सदस्य को लगने लगा था, लेकिन छैलबिहारी का तो जीवन भर का सपना ही जैसे

आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो उठा था। सम्पर्क का ऐसा अवसर उसे कहाँ मिल सकता था। लेकिन इस सम्पर्क का उसने कभी दुरुपयोग नहीं किया। अपनी ओर से मीरा से एक बात भी नहीं की। मीरा जैसे सबसे, वैसे उससे भी बात करती थी। मीरा के इस व्यवहार की सभी समान रूप से प्रशंसा करते थे। आज रात न जाने कैसे साहस करके वह इतना कह बैठा। मीरा को लक्ष्य करके उसने बहुत से गीत लिखे थे। यह 'आँखें और आँसू' वाली रचना भी मीरा के प्रति निवेदित थी। इस समय छैलबिहारी की पैंट की जेब में गुलाब का एक बड़ा फूल था। इससे पूर्व की बैठकों में भी वह ऐसा ही फूल अपनी जेब में रखकर लाया था; लेकिन उसे भेंट करने का अवसर उसे कभी नहीं मिला। छैलबिहारी का हृदय ज़ोर से धड़कने लगा। उसने पैंट की जेब में हाथ डाला और फूल को तोड़कर पंखुरियों में छितरा दिया। तांगा इस समय एक हल्के अँधेरे स्थान से निकल रहा था। छैल-बिहारी अपनी भावना को और वश में नहीं रख सका। उसने गुलाब के फूलों की पंखुरियाँ चुप से मीरा के चरणों पर डाल दीं।

मीरा ने नीचे के ओंठ को दाँतों से दबाया और बायाँ हाथ माथे पर रखा।

"तांगा रोको" उसने कहा।

तांगेवाले ने रास खींचकर घोड़े को रोका।

नीचे उतर कर मीरा ने रेशम का बटुआ खोला और उसमें से पैसे निकालकर तांगे वाले को देने लगी।

छैलबिहारी ने अनुनय के स्वर में कहा, "ऐसा न कीजिए। पैसे मैं दे दूँगा। मुझे मालूम हैं आपको किसी बात का अभाव नहीं है, लेकिन यह अधिकार मेरा बना रहा दें।"

मीरा ने घर की गली में प्रवेश करने के लिए चरण बढ़ाये। छैल-बिहारी नीचे उतरा और बोला, "मैं आपको घर तक पहुँचा दूँ।"

"नहीं मैं चली जाऊँगी।"

मीरा के स्वर की दृढ़ता पहचानकर छैलबिहारी जहाँ था, वहीं खड़ा

रह गया। मीरा सहसा पीछे को मुड़ी और तांगे से गुलाब की पंखुरियों को बटोर कर उसने रेशम के लम्बे बटुए में रख लिया और जल्दी से गली में घुस गई।

छैलबिहारी उछलकर तांगे वाले के पास आ बैठा। बोला, "तांगा ज़रा तेज़ ले चलो, मियाँ।"

८

घर वालों के आने से पहले ही अमरनाथ ने तीसरी मंजिल वाला कमरा अपने लिए ठीक कर लिया था। वहीं वह प्रायः रहता और पढ़ता-लिखता था। वहीं वह कपड़े पहनता और मिलने-जुलने वालों से बात करता था। मा-बाप दूसरी मंज़िल में थे। चाहता वह यह था कि उमा भी वहीं रहे, लेकिन वह उसकी मा के कमरे में रहती थी। सास की ओर से कोई रोक-टोक न थी। यह उसका मन या भीतर का संकोच ही था। सबसे अधिक उलझन की बात यह थी कि वह लज्जा के कारण बात ही न करती थी। ट्रेन मे, गाँव में, द्विरागमन के समय मुरादाबाद में उसने बात ही न की थी। बहुत आवश्यक प्रश्न होता तो सिर हिला देती। अब इसका जो अर्थ आप लगाना चाहें लगा लें। बहुत हठ कीजिए तो 'हाँ' या 'ना'—वह भी बहुत हल्की-सी। विवाह के प्रारम्भिक दिन। आप अप्रसन्न नहीं हो सकते, डाट नहीं सकते, झुँझलाहट प्रकट नहीं कर सकते। अमरनाथ भीतर से बहुत तंग आकर उदासीन-सा हो गया। इस उदासीनता से उमा का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं था। फिर भी दो प्राणियों के जीवन भर साथ रहने का प्रश्न था। ऐसे कब तक चलेगा।

दूसरी ओर, घर के कामकाज में उमा की तत्परता असाधारण थी। प्रभात में सूर्योदय से बहुत पहले उठकर वह सास के चरण छूती, घर की सफ़ाई करती और स्नान करने चली जाती। अमरनाथ को पता चला तो

बोला: जिसके चरण छूने से मोक्ष मिलती है, उसके पैर कोई नहीं छूता। उमा मुस्कराकर चली गयी। दूसरे दिन जब वह सो रहा था तो उसे पता चला कोई उसके पैरों पर सिर रखकर चला गया हैं। लीजिए, एक और उलझन खड़ी हो गयी। कैसे लोग हैं जो यह भी नहीं समझते कि मज़ाक किया जा रहा है। दिन में उमा कभी दाल बीन रही है, कभी मसाला कूट रही है, कभी तकिये के गिलाफ़ पर फूल काढ़ रही है, कभी सास को मल-मल कर स्नान करा रही है, कभी अमरनाथ के लिए दस्ताने या स्वैटर बुन रही है। रात को सब काम समाप्त होने पर सास के पैर दबा रही है। जब वह ऊपर आती, तब तक अमरनाथ सो जाता था। लेकिन उमा प्रसन्न थी। वह सबसे पहले जगती थी और सब के बाद सोती थी।

दरवाज़ा नीचे था; अत: अमरनाथ जब कॉलेज जाता या वहाँ से लौटता तो उमा नीचे आकर किवाड़ खोलती या बन्द करती थी। जाते समय वह उसे पान का एक बीड़ा देती थी। कॉलेज के लिए कपड़े पहनने के उपरान्त अमरनाथ एकदम दूसरा व्यक्ति हो जाता था। पान वह चुपके से ले लेता था और बिना पीछे मुड़े चला जाता था। उमा किवाड़ों की आड़ से उसे दूर तक जाते देखती रहती थी। छत पर एक खिड़की थी। कॉलेज से जब वह लौटता तो पाता कि उमा वहाँ बैठी उसकी प्रतीक्षा कर रही है। कॉलेज से अमरनाथ सीधा ही आता था और घर पर चाय पीने के उपरांत दोबारा टैनिस खेलने कॉलेज-क्लब जाता था। फिर भी कभी-कभी उसे देर हो ही जाती थी। लेकिन संध्या होने तक जब भी वह लौटता, उमा को वहाँ बैठे पाता। यह सब देखकर उसे लगता, कुछ भी हो, लेकिन अनुराग की कमी तो नहीं है।

उमा अमरनाथ के बाद ही खाना खाती थी। यह हिन्दू स्त्री का ऐसा संस्कार है जिसे मिटाना बहुत कठिन काम है। कई बार ऐसा हुआ कि अमरनाथ क्लब से बहुत देर में लौटा या वहीं से किसी पार्टी में सम्मिलित होने चला गया। अब उमा जी बैठी हुई हैं और उनकी सास अपने बेटे पर नाराज़ हो रही हैं। जाड़े प्रारम्भ हो गए थे और आधी रात बीत चुकी

थी। अमरनाथ को रात में पानी पीने की आदत थी। ग्लास का पानी समाप्त हो गया था। उसने अकुलाहट से करवट ली। ग्लास की ओर हाथ बढ़ाया। उमा जग रही थी। वह तुरन्त नीचे उतर कर पानी लेने चली गयी।

सास ने आवाज़ दी, "कौन है ?"

उमा ने उत्तर दिया, "मैं हूँ आपकी बहू, माता जी।"

"इस समय नीचे कैसे आई है ?" सास को सन्देह हुआ कहीं बहू-बेटा किसी बात पर लड़ न पड़े हों।

"पानी चाहिए।" उमा ने धीरे से कहा।

"वह लॉट साहब नीचे उतर कर नहीं आ सकते थे जो तुझे भेजा है ?"

"एक ही बात है माता जी।" इतना कहकर उमा डरती-डरती ऊपर चली गयी।

और फिर सास ने अपने बेटे को सुनाकर कहा, "बाप-दादों के यहाँ बाँदियाँ ही तो लगी रहती थीं जो पलंग पर लेटे-लेटे हुकुम चला दिया—पानी चाहिए। दूसरे की बेटी तो हाड़-माँस की है ही नहीं, पत्थर की है। रात-बिरात, शीत-घाम में जब हुकुम देंगे, हाथ जोड़े सामने खड़ी रहेगी। यह नहीं सोचा मेरी फूल-सी बहू, इस तरह······"

उमा और अमरनाथ दोनों हँसते रहे। लेकिन नींद उचट गयी थी। अमरनाथ ने सोचा—कुछ भी हो, आज इस मौन को तोड़ना होगा। इससे कुछ लाभ नहीं है। जो अपना हो चुका है, उससे अभिमान करना व्यर्थ है। थोड़ी देर वह कुछ सोचता रहा। फिर बोला, "शहर बहुत देखे साहब, लेकिन मुरादाबाद जैसा शहर न सुनने में आया न देखने में।"

मायके की चर्चा से उमा चौंकी। दबे स्वर में बोली, "क्या बिगाड़ा है आपका हमारे मुरादाबाद ने ?"

"सुना है वहाँ कोई छोटी लड़की है जो अपने पिछले जन्म की बात बताती है। आख़िर, वह मुरादाबाद में ही पैदा होने को रह गयी थी ? अब

चारों ओर से भीड़ उमड़कर उसे देखने आ रही है । इस तरह के तमाशे मुरादाबाद में ही हो सकते हैं, साहब !"

"लेकिन वह तो सच बात है ?"

"क्या सच बात है ?"

"जो वह कहती है ।"

"तुम क्या जन्मान्तर में विश्वास करती हो ।"

"करती तो हूँ ।"

"और यह कि प्राणी को एक जन्म की बात दूसरे जन्म में याद रह सकती है ?"

"किसी-किसी को रह भी सकती है ।"

"तुमने उस लड़की को अपनी आँख से देखा है ?"

"देखा है ।"

"बात क्या हुई ?"

"बात तो कुछ भी नहीं थी । एक बारात निकली जा रही थी । शहर में शहर की बारात थी । लड़का कार में था । यह लड़की अपने घर वालों के साथ बारात देख रही थी । जब दूल्हा उसके दरवाज़े से निकला तो उसने कहा : अरे, यह तो मेरा लड़का है। किसी ने हँसी में पूछा : इसका नाम क्या है, तो उसने नाम बता दिया । बारात तो चली गयी; लेकिन यह बात एक मुँह से दूसरे मुँह फैलने लगी । लड़की को जनवासे मे ले गये तो उसने सबको पहचाना—यह मेरा बड़ा लड़का हैं, इसका नाम राधेलाल है, यह मेरा मँझला लड़का है, इसका नाम किशनलाल है; यह मेरा सबसे छोटा लड़का है, इसका नाम वृन्दावन है । उसने मोहल्ले का नाम, घर का नक्शा, घर में सेफ़ कहाँ रखा है, यह सब बता दिया । सेफ़ की ताली खो गयी थी, और उसे किसी ने खोला नहीं था । मृत्यु के उपरांत सबसे बड़ी बहू को सास ने स्वप्न में दिखाई देते हुए कहा था कि सेफ़ खोला न जाय । ताली का पता अपने आप किसी दिन स्वयं ही चल जायगा ।"

"लड़की की अवस्था कितनी है ?"

"होगी चार साल की।"

"तो सेफ़ की ताली मिल गई।"

"हाँ, विवाह के उपरांत उसके लड़के आग्रह करके उसे अपने घर ले गये। उसने ताली ढूँढ़कर उन्हें दे दी।"

"उस सेफ़ में आखिर ऐसा क्या था ?"

"अब यह तो मुझे नहीं मालूम। मैं क्या वहाँ गई थी !"

"लड़की अब किसके साथ है ?"

"अपने इस जन्म के माता-पिता के साथ।"

"वह अपने बेटे-बेटियों के साथ नहीं रहना चाहती ?"

"रहना भी चाहे, तो मा-बाप उसे क्यों जाने देगे ?"

"तो अब वे क्या कर रहे हैं ?"

"उसे भुलावे में डालकर पिछले जन्म की बातें भुलाने का प्रयत्न कर रहे हैं।"

"क्या यह ठीक होगा ?"

"मैं तो समझती हूँ ठीक ही है।"

"संभव है जीवन-मरण के रहस्यों पर वह कुछ और प्रकाश डालती..."

"इतनी दूर तक हमारे यहाँ कौन सोचता है।"

"अच्छा, यदि तुम जन्मान्तरवाद को मानती हो तो बतलाओ पहले जन्म में तुम क्या थीं ?"

"यही थी।"

"अर्थात् उमा थीं ?"

"तब नाम कुछ और रहा होगा।"

"यानी मेरी पत्नी थीं ?"

"हाँ। और क्या...।" उमा ने बड़े विश्वास के साथ कहा।

"और अगले जन्म में भी आप मेरी पत्नी बनेंगी ?"

"चाहती तो यही हूँ।"

"मान लो, मेरा विवाह तुम से न होता ?"

"क्यों न होता ?"

"मंडप के नीचे गणेश जी के पूजन वाला वह झगड़ा अगर और बढ़ जाता और दोनों में से कोई न मानता और तुम्हारे पिता तुम्हें वहाँ से उठने की आज्ञा देते तो ?"

"तो उससे क्या अन्तर पड़ता ?"

"मान लो, वह तुम्हारा दूसरे स्थान पर विवाह करना चाहते…"

उमा ने आगे बढ़कर अमरनाथ के मुँह पर हाथ रख दिया। बोली, "ऐसी बात नहीं कहते। पाप लगता है। मेरा दूसरा विवाह करने की शक्ति किसी में भी नहीं है। मेरे पिता में तो क्या, जिसे ईश्वर कहते हैं, उसमें भी नहीं।"

अमरनाथ को उमा के व्यक्तित्व का यह अंश स्वप्न में भी प्रत्यक्ष नहीं था। प्रबल संस्कारों की यह बात उसे अच्छी तो नहीं लगी, लेकिन भीतर उसे कहीं कुछ अच्छा लगा। बोला, "इसी गणेश-पूजन को लेकर हमारे गाँव में एक ऐसी घटना घट गई कि कहानी बनकर रह गयी है।"

"क्या हुआ, मैं सुनूँगी। लेकिन तुम तो बहुत ज़ोर से बोलते हो। नीचे माता जी सो रही हैं, इस बात का ज़रा भी ध्यान नहीं है।"

अमरनाथ ने कहा, "हमारा गाँव सनातन धर्मी है। बहुत वर्ष हुए कि इसके एक पंडित घूमते-फिरते लाहौर पहुँच गए और वहाँ जाकर आर्य-समाज के प्रभाव में आ गये। वहाँ उन्होंने बहुत रुपया पैदा किया और अपनी प्रौढ़ावस्था में गाँव लौट आए। गाँव वालों पर उनके सिद्धान्तों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, अतः वह शांत भाव से अपने परिवार को लेकर वहाँ रहने लगे। गाँव के एक कोने में ज़मीन ख़रीद कर उन्होंने अपना पक्का मकान बनवा लिया। रुपये-पैसे की उनके पास कमी थी नहीं और स्वभाव से कुछ स्वाभिमानी थे; इसलिए गाँव वालों से मिलना-जुलना भी उन्होंने कम कर दिया। लेकिन विद्वान् होने के कारण गाँव के लोग उनका

आदर करते थे और चाहते थे कि सबसे मिल-जुलकर रहें तो अच्छी बात है।

पं० आर्येन्द्र शर्मा के एक पुत्री थी जिसका नाम उन्होंने देवयानी रखा था। इस लड़की का सम्बन्ध उन्होंने एक ज़मींदार घर में पक्का कर दिया। लड़का शिक्षित, सुशील और सुन्दर था। जमींदारों के लड़कों मे जो अवगुण होते हैं, उनमें से उसमें एक भी न था। बहुत बड़ी बारात आयी। उसको पं० आर्येन्द्र शर्मा ने सँभाल लिया। लेकिन मंडप के नीचे जब लड़की आयी तो वही झंझट खड़ी हुई। वर के पिता सनातन धर्मी पंडितों को अपने साथ लाये थे। इधर का पंडित अगाध विद्वान् होने पर भी कट्टर आर्य-समाजी था। बात गणेश जी के पूजन पर आकर अटक गयी। वर के पिता ने कहा, "विवाह सनातनधर्म के अनुसार होगा।"

पं० आर्येन्द्र शर्मा बोले, "विवाह होगा तो आर्य-समाजी ढंग से होगा। मैं सनातनियों के पाखंड में विश्वास नहीं करता। मुझे दुःख है कि ऐसे पाखंडियों के यहाँ मैंने सम्बन्ध निश्चित किया।"

"यह बात आपको पहले सोचनी थी।" शर्मा जी के समधी बोले।

"भूल को किसी समय भी सुधारा जा सकता है।" आर्येन्द्र जी ने उत्तर दिया और इससे पहले कि वर पक्ष का कोई व्यक्ति कुछ कहे, उन्होंने अपनी लड़की से कहा, "बेटी, उठो।"

"तो वह उठ गई ?" उमा ने साँस रोककर कहा।

"हाँ"

"इसके बाद ?"

"इसके उपरांत बारात जनमासे में लौट आई। आमों के बाग़ों में तंबू गड़े थे। सब वहाँ जाकर लेट गए। इसी बीच गाँव के एक संभ्रांत व्यक्ति को बुलाकर लड़के के पिता ने परामर्श किया। वे उन्हें गाँव के एक प्रभावशाली व्यक्ति के पास ले गये।

वहाँ पहुँचकर उन्होंने कहा, "पुजारी जी मैंने आपकी बहुत प्रशंसा

सुनी है । बारात बिना वहू के लौटकर नहीं जानी चाहिए। यह मेरी प्रतिष्ठा का प्रश्न है ।"

पुजारी जी ने उन्हें आश्वासन दिया कि आप मेरे पास आये हैं तो बारात सूनी लौटकर नहीं जायगी । पुजारी जी गाँव की न जाने कितनी महत्वपूर्ण घटनाओं के सूत्रधार थे । वे उसी समय गाँव के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के द्वार पर गये और बोले,—आज मै आपसे कुछ माँगने आया हूँ । इसके उपरांत उन्होंने पूरी घटना सुनाई और कहा—कावेरी जैसी तुम्हारी बेटी, वैसी मेरी । मैं चाहता हूँ कि उसका विवाह इसी मुहूर्त में ज़मींदार के लड़के से कर दिया जाय । कावेरी की अवस्था उस समय कठिनाई से तेरह वर्ष की होगी । वह यह भी नहीं जानती थी कि विवाह कहते किसे हैं । उसे सोते से जगाया गया और पाणिग्रहण संस्कार हो गया । दूसरे दिन सारे गाँव के लोगों ने मिलकर बारात का स्वागत किया । लोग पं० आर्येन्द्र शर्मा से कुछ तो चिढ़े हुए थे ही ।"

"देवयानी का क्या हुआ ?" उमा ने पूछा ।

"तुम्हारा क्या अनुमान है ?"

"मै नहीं कल्पना कर सकती । हो सकता है उसके पिता ने दूसरे स्थान पर उसका विवाह कर दिया हो ।"

"नहीं, ऐसा कुछ नहीं हुआ । देवयानी दूसरे दिन बहुत प्रसन्न रही और उसने किसी को इस बात का संदेह तक नहीं होने दिया कि उसे आघात लगा है । संध्या होने पर उसने अपने छोटे भाई को जिसे वह बहुत प्यार करती थी एकांत में बुलाया और पूछा, "तुम अपने जीजा जी को पहचानते हो ?" भाई ने कहा, "हाँ ।" उसे कुछ इनाम देने का लोभ देकर उसने फिर पूछा, "मैं एक चिट्ठी दे रही हूँ । तुम उसे बिना किसी और को दिखाये उन्हें दे सकते हो, चुप से ?" बच्चे ने उत्साहित होकर कहा, "हाँ ।"

"उस चिट्ठी में क्या था ?"

"अपने वर को मिलने के लिए उसने एकांत में बुलाया था ।"

"क्या वह आया ?"

"हाँ, आया तो।"

फिर ?"

"देवयानी के रूप को विवाह-मंडप में देखकर ही वह मुग्ध हो गया था, लेकिन अपने पिता की इच्छा के सामने विवश था। मैं जानता नहीं, देवयानी ने उससे क्या कहा, लेकिन विवाह के पन्द्रह दिन बाद वह फिर अकेला आया और देवयानी से विवाह करके उसे अपने साथ ले गया।"

"तो कावेरी और देवयानी में कैसे निभी ?"

"दोनों ने मेल कर लिया। कभी-कभी दोनों मिलकर उसे बहुत तंग करती थीं; लेकिन सुना यही गया है कि आपस में वे कभी नहीं लड़ीं।"

"यह तो बड़ी मनोरंजक घटना है। आपने उन्हें देखा है ?"

"बचपन मे देखा था ?"

"दोनों को ?"

"हाँ, दोनों को।"

"और उनके सम्बन्ध में क्या सुना गया है ?"

"वह सुनाने की बात नहीं है।"

"फिर भी..."

"सुनते है एक का नाम उनमें से छुटकी पड़ गया, दूसरी का बड़की। रात को एक पति के इस ओर सोती थी, दूसरी उस ओर।"

"छिः आप तो बहुत ख़राब आदमी हैं। ऐसी गन्दी मज़ाक करते हैं ?" उमा ने झिड़कते हुए कहा।

अमरनाथ ने थोड़ी देर चुप रहकर पूछा, "अच्छा, आदमियों को देख-कर तुम्हारे मन पर कैसी प्रतिक्रिया होती है, उमा ?"

"कुछ नहीं होती। व्यक्ति को समूह से अलग करके मैं नहीं देख पाती। जैसे सब, वैसा वह भी।"

"किसी को देखकर कोई उत्सुकता नहीं जगती ? किसी से बात करने को मन नहीं करता ?"

"नहीं। बल्कि भागने को मन करता है। किसी के पास अधिक देर

वैठने से उलझन होती है। कोई कभी पास आ बैठता है तो इच्छा होती है यह जल्दी ही उठ जाय।"

"भय लगता है ?"

"किसी-किसी से भय भी लगता है; लेकिन सच बात यह है कि अच्छा कोई नहीं लगता। किसी को भी देखकर मन में यह बात नहीं जगी कि चलो इससे अपनी ओर से बात करें।"

"वैसे स्त्री पुरुष से क्या चाहती है ?"

"क्यों पूछ रहे हैं ?"

"वैसे ही—कोई विशेष बात नहीं है।"

"सब क्या एक-सा चाहती हैं या चाह सकती हैं ?"

"फिर ?"

"अपनी-अपनी प्रवृत्ति के अनुसार चाहती होंगी।"

"यह प्रश्न मैं तुमसे करूँ तो ?"

"मैं तो यही चाहती हूँ कि तुम प्रसन्न रहो।"

"अपने लिए कुछ नहीं ?"

"अपने लिए उतना ही चाहती हूँ जितना बिना कष्ट या चिंता के हो जाय..."

"जैसे ?"

"जैसे यही जीवन की सामान्य आवश्यकताएँ पूरी होती रहें—अन्न, वस्त्र, घर की।"

"और ?"

"और परिवार में शांति बनी रहे।"

"नारी सामान्य रूप से भी तो कुछ चाहती होगी ? उसकी कम से कम माँग पुरुष से क्या है ?"

"————"

"बताओ न ?"

"क्या आप नहीं जानते ?"

"तुम्हारे मुँह से सुनना चाहता हूँ।"

"पुरुष का प्यार उसे मिलता रहे..."

"प्यार तो उसे मिलता ही है। इसमे विशेष रूप से चाहने की क्या बात है?"

"कहाँ मिल पाता है—जैसा वह चाहती है?"

"क्या चाहती है, यही तो जानना चाहता हूँ?"

"क्यों सिर पड़ रहे हैं?"

"नहीं, बताओ। इसके बाद और कुछ नही पूछेंगे।"

"प्यार में स्त्री इतना ही चाहती है कि उसका पति किसी दूसरे का न हो। ऐसा प्यार जीवन में उसे कहाँ मिल पाता है?"

पूर्व दिशा मे पीत आभा झलकने लगी।

९

नित्यानन्द के बहुत दिनों तक कोई सन्तान नहीं हुई। इसकी चिंता उनकी मा और पत्नी को जितनी थी, उससे अधिक विद्या को थी। गंगा के उस पार एक ज्योतिषी की ख्याति थी। वे प्रायः राजा-महाराजाओं के यहाँ घूमते रहते थे और एक-दो स्थानों से ही वर्ष भर का खर्च निकाल लेते थे। विद्या ने अपने पति से कहा कि वे कैसे ही उन्हें गाँव ले आयें। दीनबंधु जानते थे कि विद्या के मुँह से जब बात निकली है, तो वह पूरी होकर ही रहेगी। लेकिन यह बात उनकी समझ में नहीं आ रही थी कि इस काम के लिए नित्यानन्द को न भेजकर उन्हें क्यों भेजा जा रहा है। गाँव नदी पार से सात मील दूर था और सवारी कोई मिलती नहीं थी। दीनबन्धु वहाँ पैदल ही पहुँचे और ज्योतिषी को साथ लेकर आये। ज्योतिषी शक्ति के उपासक थे। पं० दीनबन्धु ने दुर्गा के सम्बन्ध मे उन्हें रास्ते भर विलक्षण कहानियाँ सुनाई और घर आकर उन्होंने एक ऐसी लम्बी कहानी छेड़ दी

जिसका अन्त ही न था। ज्योतिषी दो-तीन दिन उलझे रहे। अमरनाथ उन दिनों हाई स्कूल मे पढ़ रहा था और छुट्टियों में गाँव आया हुआ था। ज्योतिष मे उसका विश्वास न था। यह बात उसने ज्योतिषी जी से भी कह दी।

ज्योतिषी जी उस समय स्नान करके लौटे थे। उन्होंने कहा : अच्छा बैठ जाओ।

अमरनाथ चुप बैठ गया।

"किसी फूल का नाम अपने मन में लो।"

"ले लिया।"

"हरसिंगार हैं।"

"है तो।"

"भारतीय इतिहास मे किसी बादशाह का नाम मन में सोचो।"

"सोच लिया।"

"शेरशाह है।"

"जी हाँ, है तो।"

"अच्छा, एक और हज़ार के बीच किसी गिनती की कल्पना करो।"

"कर ली।"

"५६७ है।"

"जी हाँ, ठीक यही अंक है।"

अमरनाथ चकित रह गया। वह विनयपूर्वक बोला, "अपने अविश्वास के लिए मैं क्षमा चाहता हूँ, लेकिन क्या आप मेरे भविष्य के सम्बन्ध में कुछ बता सकेंगे।"

"अपनी कुंडली लाओ।"

अमरनाथ अपना जन्म-पत्र ले आया। पं० ज्वालाप्रसाद ने उसे ध्यान से देखा। थोड़ी देर तक वे एक काग़ज़ पर कुछ गणना करते रहे। फिर बोले, "जब तक मैं लिखता रहूँ, आप चुप रहेंगे। अमरनाथ ने स्वीकृति में सिर हिलाया। उसके मन मे एक भाव आ रहा था, दूसरा जा रहा था।

पं० ज्वालाप्रसाद ने लिखा—

(१) इस व्यक्ति के गुप्त शत्रु बहुत से रहेंगे, लेकिन अन्त में सब पराजित होंगे। मित्र बहुत कम होंगे, लेकिन जो होंगे वे विश्वसनीय होंगे। उनसे जीवन-पर्यंत मित्रता बनी रहेगी।

(२) शिक्षा का पूर्ण योग है। २६ वर्ष की अवस्था में विवाह होगा। उसी वर्ष नौकरी लगेगी।

(३) विवाह जहाँ से होगा, वह स्थान 'अ' या 'म' पर होगा।

(४) नौकरी शिक्षा-विभाग में लगेगी, लेकिन रहेगी नहीं। यंत्र और साहित्य का जहाँ संयोग होगा, वहाँ सफलता मिलेगी। अन्त में व्यापार का भी योग है।

(५) स्त्री का रंग गंदुमी होगा। सुडौल वदन होगा। हिन्दी की साधारण जानकारी होगी। दस्तकारी में निपुण होगी। सौम्य, सुशील और भाग्यशालिनी होगी। पति में कभी-कभी प्रेम की न्यूनता का भ्रम उत्पन्न होगा, पर शीघ्र शान्त हो जाया करेगा। जीवन पति के साथ परदेश में व्यतीत होगा। अन्त में दोनों किसी तीर्थ-स्थान में नवीन मकान बनाकर रहेंगे। संसार की ओर इसका झुकाव कुछ कम रहेगा।

(६) संतान पाँच के आसपास रहेंगी। पहला पुत्र अत्यन्त यशस्वी होगा। वह अपने भाग्य का निर्माण स्वयं करेगा और अपने जीवन में पिता से अधिक यश का भागी होगा।

(७) संकट के दिनों में धन सम्बन्धी गुप्त सहायता महिलाओं से मिलती रहेगी।

(८) जीवन के अंतिम दिनों में और मृत्यु के उपरांत ख्याति मिलेगी।

(९) प्रौढ़ावस्था में नवीन भूमि, नवीन मकान, नवीन मशीन और नवीन सवारी का योग है।

(१०) जीवन में एक बार विह्वलता की दशा को पहुँचने वाली आसक्ति होगी। यह स्त्री जीवन की प्रेरणा बनकर रहेगी।

इतने में विद्यावती ने आकर कहा, "आज नहाना खाना नहीं है क्या ?"

ज्योतिषी का हाथ रुक गया।

अमरनाथ ने कहा, "मा तू भीतर जा मैं अभी आता हूँ।"

विद्या ने फिर पूछा, "अच्छा, आज पक्का खाना कर लें, तो तू खायगा तो ?" पक्के खाने से तात्पर्य था पूड़ी-कचौड़ी, कच्चे से दाल-चावल-रोटी।

अमरनाथ ने झुँझलाकर कहा, "मैं कुछ नहीं खाऊँगा। तू भीतर जा। देख नहीं रही है मैं पंडित जी से बात कर रहा हूँ।"

"यह लड़का तो साधु-महात्माओं में ही अधिकतर घूमता रहता है। इसका कोई विवाह भी करेगा कि ऐसे ही रहेगा, पंडित जी ?" विद्या ने पंडित ज्वालाप्रसाद से पूछा।

अमरनाथ नें कहा, "पंडित जी कह रहे हैं कि तेरी बहू बड़े लड़ाकू स्वभाव की आवेगी। तेरी बिल्कुल सेवा नहीं करेगी। अब तू जा।"

"क्यों पंडित जी ?" विद्या ने पूछा।

"बहुत सेवा-परायण बहू मिलेगी—सुशील, सुलक्षणा।"

विद्या हँसकर भीतर चली गयी। पं० ज्वालाप्रसाद ने कागज़ अमरनाथ की ओर बढ़ा दिया। अमरनाथ ने कहा, "मैं कुछ प्रश्न करना चाहता था।"

"इस समय और अधिक नहीं। तुम्हारी मा ने आकर विघ्न न डाला होता, तो मैं स्वयं ही और कुछ बताता; लेकिन अब नहीं।"

अमरनाथ उदास हो गया। उससे आगे नहीं बोला गया।

"अच्छा, प्रश्न को मन में दुहराओ।" पं० ज्वालाप्रसाद ने कहा।

अमरनाथ ने मन में पूछा, "जिसके प्रति विह्वलता की दशा को पहुँचने वाली आसक्ति होगी, उससे भेंट कहाँ होगी ? नाम क्या होगा ?"

पं० ज्वालाप्रसाद ने ध्यान-मग्न की सी स्थिति में होकर नगर और महिला का नाम लिख दिया।

"अब तुम जाओ और अपनी मा और मामा जी को भेजो। दोपहर को मैं गाँव लौट जाना चाहता हूँ।"

अमरनाथ ने भीतर जाकर मा को सूचना दी।

दोनों बहुत देर तक बातें करते रहे। नित्यानन्द की कुन्डली खो गयी थी। विद्या ने अपनी मा से जन्म की तिथि और समय पूछकर ज्वालाप्रसाद जी को बतलाया। ज्योतिषी जी ने नित्यानन्द के सम्बन्ध मे कहा, "यह व्यक्ति पहले जन्म में क्षत्री था। शिकार मे एक बार एक हरिणी इसके द्वारा भूल से मारी गयी। हरिणी के पेट में बच्चा था। उसी का शाप है कि इसके संतान नहीं होगी। लेकिन 'महामृत्युन्जय' के जप से यह दोप दूर हो सकता है।" जप की विधि बताकर ज्योतिषी जी चले गए।

आगे चलकर नित्यानन्द के चार पुत्र उत्पन्न हुए। इनके नाम थे—शंखधर, चक्रधर, गदाधर और पद्मधर। इन चारों पुत्रों को जन्म अवश्य उनकी माँ ने दिया; लेकिन उनका पालन-पोषण उनकी स्नेहमयी बुआ अर्थात् विद्या ने ही किया।

शंखधर बड़ा हो गया था और उसने जैसे-तैसे हिंदी मिडिल पास कर लिया था। पिता की आगे पढ़ाने की शक्ति नहीं थी और शंखधर भी पढ़ना नहीं चाहता था। गाँव के लड़कों के साथ रहकर वह धीरे-धीरे बिगड़ने लगा था। नित्यानन्द की इच्छा थीं कि उनके भानजे की भाँति शंखधर भी उच्च शिक्षा प्राप्त करे। अमरनाथ पहला लड़का था जिसने गाँव के इतिहास में एम० ए० पास किया था और अब एक कॉलेज मे लेक्चरर था। गाँव में शिक्षा का कोई मूल्य नहीं था। एक बार अमरनाथ जब गाँव लौटा तो उत्सुकता के कारण वहाँ के कुछ वयोवृद्ध उसके पास घिर आये।

एक ने पूछा, "अमरनाथ, हमने सुना है तू बहुत पढ़ लिख गया है ?"

अमरनाथ ने सहज भाव से उत्तर दिया, "हाँ नाना जी, सब आपके आशीर्वाद का फल है।"

लेकिन बेटा, तू कर क्या रहा है ?"

अमरनाथ ने सोचा, लेक्चरर कहने से शायद ही इनकी समझ में कुछ आये; अतः वह बोला, "नाना जी, मैं एक कॉलेज में पढ़ाता हूँ।"

उनका उत्साह ठंडा हो गया। हाथ को झटका देकर उन्होंने कहा, "हम तो समझते थे तू दारोगा होगा; लेकिन तू तो मास्टर निकला।"

और वे चले गए। अमरनाथ को बड़ा विचित्र-सा लगा। अध्यापन के कार्य को ये लोग इतने तिरस्कार की दृष्टि से क्यों देखते हैं, उसकी समझ में ही न आया। ऐसा ही संकेत उसकी मा ने किया था: यह नौकरी भी ठीक है; लेकिन अगर पुलिस में तू होता तो कुछ और ही रौब-दाब रहता। इस समय उसे वह बात याद आयी जो दारोग़ा-पद के सम्बन्ध में उसके एक मित्र ने सुनाई थी। अलीगढ़ के एक अँगरेज़ कलक्टर को बचपन में एक जाटनी ने दूध पिलाया था। बड़ा आदमी होने पर वह ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उसके पास पहुँचा। जाटनी के पति की मृत्यु हो चुकी थी और उसके दो जवान लड़के प्रथम विश्व-युद्ध में काम आ चुके थे। वह स्वयं एक टूटी-फूटी झोंपड़ी में किसी प्रकार अपने दिन काट रही थी। कलक्टर ने अपने पैसे से एक छोटा-सा पक्का मकान उसके लिए बनवा दिया, एक गाय ख़रीद दी और आजीवन उसे कुछ रुपये भेजने का आश्वासन दिया। जब वह चलने लगा तो जाटनी ने प्रसन्नता से विह्वल होकर उसे आशीर्वाद दिया, "बेटा, तू दारोगा हो जा।"

इसके बाद अमरनाथ आगरे के लिए विदा हुआ, तो नित्यानन्द उसे स्टेशन तक पहुँचाने आये। पहले वे घर से ही विदा कर देते थे। अमरनाथ जब कानपुर में बी० ए० में पढ़ने के लिए चला गया तो गाँव की सीमा तक आने लगे और उसकी नौकरी लगने पर अब स्टेशन छोड़ने आये। गाड़ी आने में अभी कुछ देर थी। अमरनाथ समय काटने के लिए प्लेटफ़ार्म पर टहल रहा था कि नित्यानन्द उसके पास आये। उसे लगा वे उससे कुछ कहना चाहते हैं।

अमरनाथ ने पूछा, "क्यों मामा जी, क्या बात है?"

नित्यानन्द ने कहा, "तुम्हें ऐसा लगता है कि मैं कुछ खिन्न हूँ"

"हाँ, कुछ चिंतित से तो लगते है।"

"मुझे इस समय बहुत प्रसन्न होना चाहिए और मैं हूँ भी। सच पूछो तो सारा गाँव ही प्रसन्न हैं। तुमने शिक्षा प्राप्त कर ली, प्रतिष्ठित घर में तुम्हारा विवाह हो गया और अच्छी नौकरी मिल मई। यह मेरे लिए ही नहीं, गाँव के लिए भी गौरव की वात हैं। तुम्हारा जन्म कहीं भी हुआ हो; लेकिन यहाँ की धूल में खेलकर तुम बड़े हुए हो; अतः कहलाओगे तुम यहीं के। अब ये गाँव वाले तुमसे बड़ी-बड़ी आशाएँ करने लगे हैं। उस दिन में बाज़ार मैं बैठा तुम्हारी प्रशंसा कर रहा था तो पं० लालमणि ने कहा : नित्यानन्द तुम्हारे तो सारे दुःख ही कट गए। तुमने अपने भानजे को इस योग्य कर दिया है, तो अब तुम्हें अपने लड़कों की चिंता नहीं करनी पड़ेगी। वह सब ठीक कर देगा। मैंने बहुत समझाया कि उसने जो कुछ किया है, वह अपनी शक्ति से किया है; लेकिन मेरा कोई विश्वास ही नहीं करता और सब यह देखना चाहते हैं कि तुम अपने भाइयों के लिए क्या करते हो।"

अमरनाथ को कुछ पता नहीं था। वह बोला, "कहते तो गाँव वाले ठीक ही हैं। शिक्षा तो सबकी हो ही रही है। समय आने पर मुझसे जो बन पड़ेगा, मैं भी करूँगा ही।"

"इस समय तो मुझे शंखधर की विशेष चिंता है। उसने मिडिल पास कर लिया है और दो साल से बेकार बैठा है। गाँव में रहकर उसके बिगड़ने की ही सम्भावना है और सच पूछो तो वह एक प्रकार से बिगड़ ही गया है।"

अमरनाथ ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा, "क्यों, मुझे तो वह बहुत सोधा लड़का लगता है और आप ही कहा करते थे कि पढ़ने में वह बहुत होशियार है। अब क्या बात हुई?"

"गाँव की सोहबत का असर है; और क्या! तुम्हें तो मालूम नहीं; लेकिन गाँव में कई ऐसे अड्डे हैं जहाँ रात-दिन जुआ होता है। वह वहाँ बैठा रहता है। बड़ा लड़का है, क्या कहूँ? शतरंज खेलने में इतना होशि-

यार है कि अच्छे से अच्छे खिलाड़ी को पाँच मिनट में मात देता है। बरसात की भरी नदी को तैर जाता है। मुझे लगता है कि किसी दिन या तो नदी मे डूब जायगा या उसे जुए में से पुलिस पकड़ ले जायगी। चिंता के मारे मुझे तो नींद नहीं आती। एक तुम थे कि बचपन से ही जिधर से निकल जाते थे, सारे गाँव के लोग प्रशंसा करते थे; एक यह है कि जो सुनता है वही इसे धिक्कारता है। मेरी तो इसकी वजह से गर्दन नीची हो रही है। घर में आने का कोई समय नहीं, खाने-पीने का कोई समय नहीं, स्नान-पूजा की ओर कोई ध्यान नहीं। ब्राह्मण के बेटे को क्या ऐसा होना चाहिए?"

"यह तो बहुत दुःख की बात है।" अमरनाथ ने कहा।

"और अभी जो करतब उन्होंने दिखाए हैं, वह न पूछो।"

अमरनाथ को पूछना ही पड़ा, "क्यों, कोई बदनामी की बात हो गयी क्या?"

नित्यानन्द ने कहा, "नहीं, चरित्र का दोष उसमें नहीं है। लेकिन जब मन मे आता है, घर से भाग जाता है।"

"लौट तो आता है?"

"हाँ, अभी तो लौट-लौट आया है; लेकिन कौन जाने किसी दिन न भी लौटे। पिछली बार वह घर से रुपये चुराकर भाग गया। अब तो उसे घर में घुसाने में भी डर लगता है।"

अमरनाथ सोचने लगा। उसने कहा, "मामा जी, यह तो बहुत बड़ी समस्या है। प्रारम्भ से ही उस पर कड़ी दृष्टि रखनी थी।"

"जो बिगड़ने वाला होता है, वह बिगड़ ही जाता है, जो नहीं बिगड़ना चाहता, उसे कोई नहीं बिगाड़ सकता। तुम्हारे ऊपर किसने निगाह रखी थी? यही गाँव था, यही संगी-साथी; लेकिन तुम सभी को दूर फेंककर आगे बढ़ गए और अब वे ही तुम्हारी प्रशंसा करते हैं।"

अमरनाथ निरुत्तर रह गया। बोला, "अच्छा मैं जिया से पूछूँगा।"

नित्यानन्द बोले, "बीबी से मैंने बातें कर ली हैं। वह बहुत दुःखी

हुई । कहती थी: घर में एक बच्चे का खर्च क्या मालूम होता है ! आख़िर अमरनाथ के बच्चे होंगे तो उनका खर्च भी चलेगा ही । फिर भी उसकी इच्छा थी कि लड़का बड़ा हो गया है । उससे पूछ लेना चाहिए । वह तो पिछली बार ही शंख को अपने साथ ले जा रही थी; पर मैंने ही उसे रोक लिया । सोचा पहले मैं तुमसे परामर्श कर लूँ ।"

"मा मेरे लिए देवता के समान है, मामा जी । वह उचित करे तो, अनुचित करे तो; मेरे लिए सब मान्य है ।" अमरनाथ ने उत्तर दिया ।

"आहा ! कैसे उत्तम विचार हैं ! कलयुग में ऐसे विचार कहाँ सुनने को मिलते हैं ।" नित्यानन्द गद्गद् होकर बोले, "तो तुम इस स्थिति पर विचार करना और जैसा उचित समझो, मुझे लिखना ।"

अमरनाथ सोचने लगा—जो करना है, उसे फिर प्रसन्नतापूर्वक ही करना चाहिए; अतः उसने चट से उत्तर दिया, "इसमें सोचने कोई बात नहीं है । आप जितनी जल्दी हो, शंख को लेकर आगरा आ जायँ ।"

इतने में ट्रेन आती दिखाई दी । अमरनाथ विदा हो गया ।

आगरा लौटने पर मामा जी से जो बातचीत हुई थी, उसे अमरनाथ ने अपनी मा को सुनाया । उसने केवल वह अंश छिपा लिया जहाँ विद्या ने अपने भाई को आश्वासन दिया था ।

"शहर का रहना है । तुम्हें ८०) मिलते हैं । बहू अभी आई है । उसके खाने-पहने के दिन हैं । अब इस पर उनके बिगड़े हुए कुँवर को बुलाओ । उन्हे पढ़ाओ-लिखाओ ।"

"जो लड़का मा-बाप का कहना नहीं मानता, वह हमारा मानेगा ?" अमरनाथ ने आपत्ति की ।

"नहीं, वैसे तो वह तुझसे बहुत डरता है, भाभी का बहुत आदर करता है । यहाँ आ जायगा तो गाँव के लड़कों से तो छुटकारा मिलेगा । हो सकता है उसके संस्कार बदल जायँ । और कुछ नहीं तो दस-बीस दिन भाई-भाभी के पास रहकर चला जायगा । उसने तो शहर वैसे भी नहीं देखा है ।"

"और अगर वह यहाँ से कहीं भाग गया तो ?" अमरनाथ ने मा को डराया ।

"इसकी जिम्मेदारी हमारे ऊपर क्या है ? हम तो उसे बुला नहीं रहे । उसका बाप भेज रहा है ।" और एक बार यहाँ से भाग जायगा, तो कहने को तो बात हो जायगी कि हम तो उसके लिए सब कुछ करने को तैयार थे, अब उसके ही भाग्य में नहीं है, तो हम क्या करें ।"

पं० दीनबन्धु उधर चिलम में आग भरने आये थे । मा-बेटे की बात-चीत सुनी तो ठिठककर रह गए । बोले, "लम्बा चक्कर है विद्या । सोच लो ।"

"मैं उसे बुलाने के लिए कब उतावली बैठी हूँ ? आ जायगा मरा, आना होगा तो । एक तो बाप की आमदनी ही कुछ नहीं है । सोचा, लड़के बड़े हो जायँगे, तो कुछ सहारा होगा । ये मरे ऐसे निकले । दुनिया भर में बदनामी कराते फिरते हैं । काम के न काज के, दुश्मन अनाज के ।"

अमरनाथ ने समझ लिया कि मामा जी से अधिक उनके बच्चों की चिन्ता उसकी मा को है । रात को उमा से उसकी बातचीत हुई । इस बीच विद्या ने अपनी बहू को ठीक कर लिया था ।

"अच्छा है, लाला जी आ जायँ तो । मेरा मन भी लगा रहेगा । घर के छोटे-मोटे कामों के लिए उन्हें बाज़ार भेज दिया करेंगे ।" उमा ने उत्सा-हित होते हुए कहा ।"तुम्हें यह अभाव खटकता है कि तुम्हारे दो-चार देवर और दो-चार ननदें नहीं हुई ?"

"हाँ, खटकता तो है । एक ननद थीं । उनका भी विवाह हो गया और वे पराये घर की हो गईं । साल में एकाध बार आयेंगी । दूर चली गयीं तो हो सकता है आना हो, न हो । मेरे तो चार भाई और तीन बहिनें हैं । भरे-पूरे घर की बात और ही है ।"

अमरनाथ ने चकित होकर पूछा, "तुम क्या सम्मिलित-परिवार की प्रथा में अब भी विश्वास रखती हो ?'

"हाँ ।" उमा ने दृढ़ता से कहा ।

"क्यों ?"

"अरे, घर में चार प्राणी होते हैं तो घर भरा-सा रहता है। उसमें रहने वाला कभी सूनेपन का अनुभव नहीं करता। उनमें से दो बाहर भी चले जाते हैं तो शेष मिलकर घर को सँभाल लेते हैं। सुख-दुःख, आनन्द-विपत्ति, हारी-बीमारी में अकेला प्राणी क्या कर सकता है ?"

"चार प्राणी एक स्थान पर रहेंगे तो कलह भी तो हो सकती है ?"

"जहाँ त्याग और प्रेम होगा, वहाँ कलह क्यों होगी ?"

"त्याग और प्रेम किसमें ?"

"ये गुण होने तो सभी में चाहिए, पर घर के संचालक में इनकी विशेष रूप से आवश्यकता है। पति हो तो, पत्नी हो तो, त्याग की भावना उनमे होनी ही चाहिए। व्यक्ति स्वभाव से स्वार्थी होता है। इसका सामना त्याग से ही किया जा सकता है। जहाँ तक घर की स्वामिनी का सम्बन्ध है, उसे सबका ध्यान बराबर रखना चाहिए। सच बात यह है कि पहले दूसरों का ध्यान रखना चाहिए, बाद मे अपना। इसी प्रकार उसके मन मे सबके लिए प्यार भी होना चाहिए। सब की सुख-सुविधा का ध्यान रखना ही उसका कर्तव्य होना चाहिए।"

अमरनाथ पुलकित हो गया। बोला, "ठीक है। तुम शंखधर को अवश्य बुला लो। जो होगा, देखा जायगा।"

अगली बार उमा ने मायके से अमरनाथ को पत्र नहीं लिखा। शंखधर ही गाँव से मुरादाबाद होता हुआ उसे अपने साथ ले आया।

१०

कुछ दिन तक अमरनाथ ने शंखधर से कुछ भी नहीं कहा। उसकी समझ में ही न आता था कि क्या करे। शंख भाभी के पास बैठा रहता या

घर का छोटा-मोटा काम कर देता या घूमने निकल जाता। एक दिन वह कॉलेज से लौट रहा था कि उसने शङ्ख को तीसरी मंजिल पर अपने कमरे से निकलते देखा। अमरनाथ के पास हिन्दी की ही पुस्तकें अधिकतर थीं। कुछ तो उसे हाई स्कूल से लेकर एम० ए० तक पुरस्कार में मिली थीं और कुछ उसने ख़रीदी भी थीं। अलमारियाँ देखकर लगा कि उन्हें शङ्खधर ने छुआ अवश्य है; लेकिन कोई पुस्तक वहाँ से हटायी नहीं गई है। दूसरे दिन अमरनाथ बाज़ार गया और बाबू देवकीनन्दन खत्री का प्रसिद्ध उपन्यास 'चंद्रकान्ता' ख़रीद लाया। उपन्यास उसने वहीं मेज़ पर डाल दिया और तीन चार दिन तक उसे पड़ा रहने दिया। एक दिन उसने देखा उपन्यास के अंत की ओर एक स्थान पर एक काग़ज़ रखा है। दूसरे दिन उपन्यास को वह उठाकर ले गया और 'चंद्रकान्ता संतति' के चौबीसों भाग ख़रीद लाया। धीरे-धीरे उसने वहाँ चार-चार भाग रखने प्रारम्भ किए। इसके उपरान्त 'भूतनाथ' और 'रोहताश मठ' के भी सभी भाग उसने वहाँ रख दिए। उसे इस बात से प्रसन्नता हुई कि शङ्खधर उन्हें पढ़ रहा है और बाहर घूमने कम जाता है।

एक संध्या को अमरनाथ कॉलेज से लौटा तो शङ्खधर उसके पास आकर खड़ा हो गया। बोला, "भाई साहब मैं पढ़ना चाहता हूँ।"

अमरनाथ ने कहा, "यह तो अच्छी बात है।" और संतोष को बुलाकर उसने उसे सौंप दिया। संतोष इंटर पास थी। अँग्रेज़ी का प्रारम्भिक ज्ञान शङ्ख को संतोष से ही हुआ। जब तक वह वहाँ रही, शंख को पढ़ाती रही। उसके घर छोड़ने पर अमरनाथ ने एक ट्यूटर का प्रबन्ध कर दिया। शंख आठवें कक्षा मे भर्ती हो गया और फिर उसने हाईस्कूल, इंटर और बी० ए० किया और एक दिन एम० ए० मे हिन्दी लेकर वह प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ। एम०ए० करते ही वह एक कॉलेज में लेक्चरर हो गया। उसका विवाह इसके पूर्व ही हो चुका था। नौकर होकर जब वह गाँव गया तो वह बदला हुआ शंखधर था—सौम्य और गंभीर। लोग उसे देख कर चकित रह गये। गाँव की औरतों ने स्वभावतः विद्या की सराहना की।

'बुआ हो तो ऐसी हो' उन्होंने कहा । शंखधर गृहस्थी में फँस गया और धीरे-धीरे बुआ, भाई और भाभी को भूल गया । कभी-कभी अपने पिता और भाइयों की थोड़ी सहायता कर देता; लेकिन धीरे-धीरे उनसे भी उसका बहुत कम सम्बन्ध रह गया । शंखधर सुधर गया और उसने अपनी स्थिति ठीक कर ली, इस पर नित्यानन्द प्रसन्नता और थोड़े गर्व का भी अनुभव करते; लेकिन घर की ओर से वह उदासीन-सा है, यह देखकर खिन्न भी कम न थे । इस बात की चर्चा जब एक दिन उन्होंने अपनी पत्नी से की तो वह बोली, "ठीक है । मैं तो यही चाहती हूँ कि दोनों जहाँ भी रहें, सुख से रहें ।"

एक दिन उमा ने अपनी सास से हँसते हुए कहा, "देखा माता जी, अब तो बड़े लाला जी हमसे कभी मिलने तक नहीं आते ।"

"हमें मरे की कौन-सी कमाई खानी है, जो चिंता करें । अब वह लंबी चोटी वाली आ गई है । क्यों मा-बाप या बुआ-भाभी से मिलने देगी ।"

"यह तो आपका अन्याय है, माता जी । हो सकता है वे ही बदल गये हों !" उमा ने संदेह के स्वर में कहा ।

"अरी तूने वह कहानी नहीं सुनी ?" विद्या ने पूछा ।

"कौन-सी माता जी ?"

"एक लड़का अपने माता-पिता का बड़ा भक्त था—यहाँ तक कि वह विवाह भी नहीं करना चाहता था; लेकिन मा-बाप ने कहा: ऐसा कैसे हो सकता है । विवाह उसका हो गया । बहू आई तो उसका मुँह देखकर वह सब कुछ भूल गया । दूसरे दिन वह अपने पिता के पास आकर बोला : पिता जी, मैं अलग होना चाहता हूँ । पिता ने लड़के से तो कुछ नहीं कहा; लेकिन बहू के कमरे में जाकर उन्होंने आवाज़ दी । बहू पास आकर खड़ी हो गयी । ससुर बोले : बहू मैं तेरे पैर छूने आया हूँ । बहू ने पूछा : क्यों पिता जी ? ससुर बोले : तू मुझसे बहुत बड़ी है । जो बात मैं अपने लड़के को चौबीस वर्ष में नही सिखा पाया, वह तूने आकर चौबीस घण्टे में सिखा दो । ज़रा अपने पैर तो आगे बढ़ा···।"

उमा हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई।

शंखधर के समय से ही नित्यानन्द के अन्य तीन लड़के भी भाई-भाभी से मिलने के लिए आते रहते थे। अपने बड़े भाई के समान मेधावी तो इनमें से कोई न था, फिर भी कुछ अपने अध्यवसाय और कुछ बुआ की कृपा से हाईस्कूल तीनों ने पास कर लिया। इनमें से एक इंश्योरेंस का एजेंट और दूसरा डाकखाने में क्लर्क हो गया। तीसरे को कुछ न सूझा तो उसने आगरे में बिसातखाने की दूकान खोल ली।

पर नित्यानन्द की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। वे जीवन भर गाँव में ही बने रहे।

११

चाय के शौक ने अमरनाथ के स्वभाव में एक विशेषता उत्पन्न कर दी थी। जब वह किसी नये नगर में आता तो सबसे पहले वहाँ की चाय की दूकानों और रेस्ट्राओं का परिचय प्राप्त करता। वहाँ के दर्शनीय और ऐतिहासिक स्थानों अथवा विशिष्ट व्यक्तियों के सम्बन्ध में चाहे वह देर से जानता; पर चाय के दूकानदारों से उसका परिचय सबसे पहले होता। अपने प्रवास-काल में एक बार तो वह प्रत्येक दूकान पर हो आता। उसका विश्वास था कि कभी-कभी छोटी-छोटी दूकानों पर जैसी चाय मिलती है, वैसी प्रसिद्ध रेस्ट्रांओं में भी नहीं मिलती। अपने इसी स्वभाव की प्रेरणा से वह आगरे में भी चाय की दूकानों और रैस्ट्रांओं में घूमने लगा। एक दिन वह वहाँ के प्रसिद्ध रैस्ट्रां 'ऐवरग्रीन' में घुसा ही था कि सामने 'जिनी' दिखाई दी। वह किसी के साथ थी। तो 'जिनी' यहाँ आती है। अमरनाथ जहाँ रहता था, वहाँ से यह स्थान बहुत दूर था; पर जिनी के आकर्षण के कारण वह वहाँ प्रायः आने लगा और कभी-कभी जिनी उसे वहाँ दिखाई देने लगी। वह किसी न किसी के साथ रहती। उन अपरिचित

व्यक्तियों से अमरनाथ को न जाने क्यों चिढ़-सी होने लगी। कभी-कभी किसी के प्रति मन में ईर्ष्या भी जगती। एकाध बार अमरनाथ की जिनी से दृष्टि भी मिली; पर उसने किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया। दृष्टि जैसे उठी और मिली थी वैसे ही हटी और गिर भी गयी।

एक दूसरे दिन जब अमरनाथ ने 'ऐवरग्रीन' में प्रवेश-किया तो 'जिनी' वहाँ पहले से ही बैठी थी। सम्भवतः किसी की प्रतीक्षा कर रही थी। अमरनाथ ऐसे स्थान पर बैठ गया जहाँ से वे एक दूसरे को दिखाई देते थे। रैस्ट्रां भरा हुआ था। अमरनाथ ने चाय और काजू मँगाए और सोचने लगा कि क्या किया जाय। यदि यह अवसर खो दिया, तो पता नहीं फिर कब इससे भेंट हो। कॉलेज जीवन की उसकी उच्छृङ्खल प्रवृत्ति उभर आयी और उसने कुछ करने का निश्चय किया। परिणाम अप्रीतिकर भी हो सकता था; लेकिन वह इसके लिए तैयार था। ऐसे अवसरों पर साहस कहिए या दुस्साहस उसमें न जाने कहाँ से उभर आता था।

बॉय ने बिल लाकर उसे दिया।

"देखो, सामने जो मेमसाहब बैठी हैं न?"

"जी, हाँ।"

"उन्हें यह बिल ले जाकर दो।"

वेटर उसकी ओर देखने लगा।

"तुमने मेरी बात सुनी नहीं?" अमरनाथ ने थोड़ी झुँझलाहट में कहा।

बॉय ने अमरनाथ के कपड़ों की ओर देखा और फिर मेमसाहब को। मन में उसने सोचा शायद दोनों एक दूसरे को जानते हों। वह जिनी के पास गया और अदब के साथ तश्तरी उसने उसकी मेज़ पर रख दी।

जिनी बैठी कुछ सोच रही थी। वेटर की ओर देखकर बोली, "अभी हमने तो कोई आर्डर नहीं दिया। फ़िर यह बिल कैसा है?"

"हुजूर, सामने जो बाबू बैठे हैं, उन्होंने भिजवाया है···"

"कौन से बाबू?" जिनी ने दिलचस्पी से पूछा।

"वह काले सूट में हुजूर···"

'जिनी' ने अमरनाथ की ओर देखा। अमरनाथ उधर देख ही नहीं रह था। 'जिनी' ने बिल हाथ में लिया। मुस्कराकर उसने अपना पर्स खोला और पेमेंट कर दिया। वेटर से उसने कहा, "साहब से कहो, यहीं आ जायँ।"

अमरनाथ के वहाँ बैठते ही जिनी ने कहा, "धन्यवाद।"

"किसी की प्रतीक्षा कर रही हैं?" अमरनाथ ने मुस्कराकर पूछा।

"हाँ।" जिनी ने शब्द को खींचकर लापरवाही से कहा।

"आप इस शहर में नये आए हैं शायद।"

"एक प्रकार से।"

"मुझे तो पहले से नहीं जानते?"

"एकदम तो ऐसा नहीं कहा जा सकता; लेकिन एक प्रकार से नहीं ही समझिए।"

"वैसे आप..."

"मैं एक लेखक हूँ।"

"ओह। और यहाँ..."

"यहाँ एक डिग्री कॉलेज में लेक्चरर हूँ।"

"आपको यहीं शायद एकाध बार देखा है। पहले कभी देखा हो, ऐसा याद नहीं आता..."

"आगरे में हजारों आदमी हैं। आप किस-किस को देखती फिरेंगी?"

"मुझ पर जो अनुग्रह किया है उसके लिए धन्यवाद मैंने पहले ही दे दिया है; लेकिन आखिर यह कृपा आपने की क्यों, यदि पता चल जाता तो उत्सुकता थोड़ी शान्त होती..."

स्वर में थोड़ा व्यंग्य था, थोड़ी उष्णता, थोड़ी कोमलता। अमरनाथ थोड़ा कटा, थोड़ा आकर्षित हुआ। बोला, "संसार की लोगों ने बहुत प्रशंसा की है; लेकिन मुझे यह प्रारम्भ से ही बड़ा अंधकारपूर्ण लगता है—जैसे मैं अँधेरे से अँधेरे में घूम रहा हूँ। लगता है जैसे मैं कही अन्धकार में

से आया था और अन्धकार में ही लौट जाऊँगा। आज थोड़ा उजाला देखा तो खिचकर चला आया। परिणाम क्या होगा, जानता नहीं।"

जिनी चुप रही।

"क्या सोच रही हैं ?"

"कुछ कठिनाई अनुभव कर रही थी।"

"कैसी कठिनाई ?"

"लेखकों से बात करने का मुझे बिल्कुल अभ्यास नहीं है। वैसे मेरा नाम सरोजिनी पन्त है।"

"पहाड़ी तो आप नहीं लगतीं।"

जिनी ने चौंककर पूछा, "क्यों ? पहाड़ी तो हूँ ही।"

अमरनाथ ने उसकी ओर देखते हुए कहा, "हो सकता है, पहचानने मे मुझसे भूल हो गई हो; लेकिन फेस का कट पहाड़ी एकदम नहीं है।"

जिनी ने मुस्कराकर कहा, "बात यह है कि मेरी मा बंगालिन थी।"

"फिर भी आकृति में पहाड़ीपन बिल्कुल नहीं है···"

जिनी ने कहा, "आप तो बहुत दिलचस्प आदमी मालूम होते हैं।"

"आकृति कुछ···"

"कुछ क्या ?" जिनी ने उत्सुकता से पूछा।

"नहीं, मुझे डर लगता है। पहले दिन का परिचय है। नाराज़ हो गई तो मेरे पास मनाने के साधन भी नहीं हैं···"

"नहीं, नाराज़ नहीं होऊँगी। बताइए। मुझे उत्सुकता हो रही है।"

"आकृति में बंगाली लड़की का माधुर्य होते हुए भी चेहरे का कट विदेशी है···"

"संयोग की बात है···। नहीं मै तो पहाड़ी हूँ।"

इतने में दाहिने हाथ के दरवाज़े की ओर जिनी की दृष्टि गई। प्रसन्नता से उसका मुख नये धुले कमल-सा खिल गया। बोली, मि० पाराशर की कार है।"

अमरनाथ ने उठते हुए कहा, "अब मैं चलूँ।"

"हाँ। परसों रात के आठ बजे यहीं भेंट होगी।"

अमरनाथ इस बात की चिंता किए बिना कि मि० पाराशर कौन हैं और कैसे हैं, फुर्ती से रैस्ट्रां से बाहर हो गया।

१२

एक दिन अमरनाथ नीचे के कमरे में बैठा हुआ था कि एक महिला ने प्रवेश किया। वह उठकर खड़ा हो गया; लेकिन आग्रह करने पर भी महिला कुर्सी पर बैठी नहीं, किवाड़ों की ओट में खड़ी रही। इस महिला को उसने दो-दो तीन-तीन दिन के अंतर से उधर से निकलते देखा था।

"मुझे आपसे कुछ कहना है।" महिला ने शंकित-सी मुद्रा में कहा।

"वह तो मैंने समझ लिया; लेकिन आप बैठतीं क्यों नहीं?"

"नहीं, मैं खड़े-खड़े ही अपनी बात कहूँगी।"

"शायद आप चाहती हैं कि मुझसे बात करते समय मुहल्ले का कोई आदमी आपको देख न ले?" इतना कहकर अमरनाथ ने एक कुर्सी खींचकर दरवाज़े के पीछे दीवाल से सटाकर रख दी और बोला, "बैठिए। और एक मिनट के अंदर आप अगर नहीं बैठीं, तो मैं आपको कंधा पकड़कर बिठा दूँगा।"

महिला सकपकायी-सी कुर्सी पर बैठ गई।

"आप कहीं बाहर की रहने वाली हैं?"

"जी नहीं, यहीं रहती हूँ।"

"क्या नाम है?"

"नाम मेरा कंचन है।"

"आपको किसी ने दुःख पहुँचाया है?"

"मेरी बहुत लम्बी कहानी है; लेकिन संक्षेप में सुनाती हूँ। जात की मैं सुनार हूँ और जैसा मैंने बतलाया नाम मेरा कंचना या कंचन है।

यहीं एक ग़रीब मुहल्ले की रहने वाली हूँ। विवाह मेरा हो चुका है। मेरे पति और श्वसुर दोनों यहाँ के बहुत मशहूर कारीगर थे। शहर के सभी प्रसिद्ध सर्राफ़ उनसे काम लेते रहते थे। इनमें से आपके मित्र के यहाँ से काम कुछ अधिक आता था।"

"मेरे मित्र के यहाँ से?"

"जी हाँ, कौल साहब के यहाँ से।"

"कृष्णप्रसाद की चर्चा से अमरनाथ को दिलचस्पी हुई। फिर भी उसने पूछा, "यह कहानी आप मुझे क्यों सुना रही हैं?"

"क्या मनुष्य को मनुष्य के दुःख की कहानी नहीं सुननी चाहिए?"

अमरनाथ निरुत्तर हो गया।

"तो विवाह के एक वर्ष बाद मेरे पति मुझे छोड़कर एक स्त्री के साथ कलकत्ते भाग गए।"

कंचन की ओर देखते हुए अमरनाथ ने आश्चर्य के साथ पूछा, "आपको छोड़कर?"

"जी हाँ। कौल साहब किसी काम के सम्बन्ध में पिता के पास आये थे। उन्हें पता चला तो उन्होंने मुझे सान्त्वना दी। एक वर्ष के बाद मेरे पिता का भी देहान्त हो गया। कौल साहब ने यह कह कर कि मैं युवती हूँ और मेरी देखभाल करने वाला कोई नहीं, अपनी कोठी में मुझे स्थान दिया। मेरे पिता का जो कुछ भी था मैं अपने साथ ले गई। उस समय कौल साहब का विवाह हो चुका था। मुझे उनसे कोई डर नहीं था। मुझे घर से उखाड़ते समय भी उन्होंने मुझसे कहा था कि वे इस गन्दे मोहल्ले में मुझे नहीं रहने देंगे; अतः मैं उन पर पूरा विश्वास करती थी।"

"आपके पास जो था वह क्या आपने कौल साहब को दे दिया?"

"उनके पास जमा कर दिया था। उसके मारे जाने का कोई डर नहीं। रुपये पैसे के मामले में कौल साहब ईमानदार हैं।"

"फिर बेईमान कहाँ हैं?"

"आपने कौल साहब के लड़के को देखा है?"

"पंकज को न ?"

"हाँ। वह मेरा लड़का है।"

"कौल साहब से ?" अमरनाथ ने झिझकते हुए पूछा।

"हाँ।" बहुत धीरे स्वर में जैसे एक मीठी आह निकल गयी हो, कंचन ने कहा।

"इसमें इतनी लम्बी आह फेंकने की क्या बात है ?" अमरनाथ ने पूछा।

"मैं अपना बच्चा वापिस चाहती हूँ।" कंचन बोली।

"आप मेरे पास आई हैं—पता नहीं किसने बता दिया कि आपको मेरे पास जाना चाहिए। अगर आप सचमुच चाहती हैं कि आपका बच्चा आप को वापिस मिल जाय, तो मैं उसे आपको दिला दूँगा, आप विश्वास रखें। लेकिन यह पूरी घटना मुझे बहुत अच्छी लगी—बहुत ही अच्छी।"

"इसमें अच्छी लगने वाली बात क्या है ?"

"इच्छा होती है कि मेरा एक बच्चा ऐसा होता और मैं उसे पालता।"

कंचन लाज से लाल पड़ गई। बोली, "कल्पना में ही अच्छा लगता है..."

"अच्छा, अब मेरी कुछ बातों का उत्तर दीजिए।"

"पूछिए।"

"आप कुछ पढ़ी-लिखी है ?"

"हाँ।"

"आपके पति कभी लौटेंगे, ऐसी आशा है ?"

"कोई सम्भावना नहीं।"

"कौल साहब की आर्थिक स्थिति कैसी हैं ?"

"बहुत अच्छी हैं। इनके बाबा किसी स्टेट के दीवान थे। वहाँ से बहुत हीरे-जवाहरात वे धीरे-धीरे लेआए थे। इनकी दूकान भी खूब चलती है। पैसे की इन्हें कोई कमी नहीं है।"

"इनके विवाह को कितने दिन हुए ?"

"दस वर्ष ।"

"आप कब से साथ हैं ?"

"छह वर्ष से ।"

"अपनी पत्नी से इनके कोई बच्चा नहीं ?"

"कोई नहीं । होने की कोई संभावना भी नहीं ।"

"यह बच्चा कहाँ हुआ ?"

"बनारस में ।"

"वहाँ अपर्णा का मायका है ?"

"हाँ ।"

"अपर्णा ने विरोध नहीं किया ?"

"नहीं ।"

"आश्चर्य की बात है !"

"आश्चर्य मुझे भी है । बात कुछ समझ में नहीं आती ।"

"सामान्यत: ईर्ष्या होनी चाहिए थी न ?"

हाँ ।"

"आजकल आप इन लोगों के साथ नहीं रहतीं ?"

"नहीं । पड़ोस में ही एक किराये के मकान में अकेली रहती हूँ। लेकिन आपने कैसे जाना ?"

"अनुमान से ।"

"पहले मैं साथ ही रहती थी । कोठी में एक ओर मेरे पास एक कमरा था । खाना मैं अलग ही बनाती थी । पति के विश्वासघात से मैं बहुत क्षुब्ध थी । ठीक उसी समय कौल साहब मेरे जीवन में आये । मैंने समझाया भी कि आप विवाहित हैं । आपको सोच-समझकर आगे बढ़ना चाहिए । लेकिन उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखकर कहा कि वे अपनी पत्नी को प्यार नहीं करते और मेरे लिए बड़े से बड़ा त्याग करने के लिए तैयार हैं । जब पंकज मेरे पेट में आया तो इनकी पत्नी को इस बात का पता चला । पति-पत्नी

में कोई बात हुई हो मैं नहीं जानती; लेकिन इनकी पत्नी ने एक भी कड़ुई बात मुझसे नहीं कही। मैं बहुत डर रही थी; लेकिन ये मुझे बनारस ले गयीं और वहीं इस बच्चे का जन्म हुआ। स्वस्थ होने पर मैं इनके साथ लौट आई। यहाँ कौल साहब ने सब जगह प्रसिद्ध कर दिया कि उनके बच्चा होने वाला है और उनकी पत्नी बनारस गयी हैं। वहाँ से लौटने पर दीदी ने मेरे बच्चे को अपना बच्चा कहकर घोषित किया। अब सब यही जानते हैं कि बच्चा उनका है। पंकज जब पैरों से चलने योग्य हो गया, तो एक दिन कौल साहब ने मुझसे कहा कि मुझे बदनामी से बचाने के लिए ही उन्होंने यह सब किया है और उसी बदनामी से बचाने के लिए वे चाहते हैं कि मैं उनकी कोठी को छोड़कर किसी दूसरे स्थान पर रहूँ। मकान का किराया देने को वे तैयार हो गए। एक साल से मैं दूसरे मकान में रह रही हूँ। पहले पाँच-छह महीने तो मेरे खाने का खर्च और मकान का किराया देते रहे। इधर उन्होंने पैसा देना बन्द कर दिया है। पहिले वे खोज-खबर लेने कभी-कभी आते भी थे। इधर उन्होंने आना एकदम बन्द कर दिया है। मैं समझती हूँ उनसे मेरा जी भर गया है और अब मैं उनके किसी काम की नहीं रही।"

"आपके पास उनके हाथ का लिखा हुआ कुछ है?"

"कुछ पत्र हैं।"

"जब आप उनके साथ रहीं, तो पत्र उन्होंने आपको कब और कहाँ से लिखे?"

"प्रारम्भ में बात जब बहुत स्पष्ट नहीं थी, तब वे दूकान आते-जाते दीदी से छिपाकर कागज़ में कुछ लिखकर दे जाते थे। उन्हें पत्र तो क्या कहूँ—"

"वे पत्र आप मुझे दे सकती हैं?"

"दे तो नहीं सकती, दिखा सकती हूँ।"

"मेरा आशय यही था। बच्चे के लिए तो मैं अभी नहीं कह सकता; लेकिन कौल साहब को आपके खाने-पीने का प्रबन्ध करना होगा। इससे

बचकर वे नहीं जा सकते। लेकिन क्या आपके मन में अपने पैरो पर खड़े होने की बात नहीं उठती ?"

"क्या करूँ मैं ? पढ़ने को अब मेरा मन नहीं करता।"

"यहाँ सिलाई सिखाने का एक केन्द्र है। उसमें दो-एक घन्टे के लिए क्यों नहीं जातीं ? स्वीकार करेंगी तो उसकी फ़ीस मैं दे दिया करूँगा।"

"फ़ीस आपसे लूँ ?" कंचन ने कहा।

"इसमें संकोच की क्या वात है ? मुझे मालूम है कि आप आर्थिक संकट में हैं। जब सीना सीख जायँ तो मेरी कमीज़ें मुफ्त सी दिया कीजिए।"

कंचन ने अमरनाथ की ओर देखा। वह बोली, "यह बात मेरी समझ में आ गई। और कुछ नहीं तो आपकी क़मीजें सीने के लिए ही, यह काम मैं सीखूँगी।" और एक हल्की-सी मुस्कान उसके अधरों पर खेल गई।

अमरनाथ ने उस मुस्कान को लक्ष्य किया। उसे लगा कौल के प्रति कंचन का रोष कुछ कम हो रहा है। ना, यह ठीक नहीं। इसी से वह बोला, "और पंकज के लिए भी।"

कंचन सहसा गम्भीर हो गई। अपनी पूर्व मनोदशा में लौटते हुए उसने कहा, "दोनों ने कहा कि बच्चा मेरा नहीं है और उन्होंने पंकज को भी सिखाया कि मैं उसकी मा नहीं हूँ; धाय हूँ। वाह रे दुनिया !"

"आपको बुरा नहीं लगा ?"

"बुरा ? एक दिन मैं चुप से उसे अपने घर ले आयी और मैंने कह दियाः जाइए, मैं अपना बच्चा अब आपको नहीं दूँगी। कौल साहब, बहुत गिड़गिड़ाने लगे। बोलेः अच्छा हफ्ते में एक दिन तुम रख लिया करो। मैं मान गई। लेकिन आख़िर हैं तो एक नम्बर के बेईमान। एक दिन उन्होंने लड़के को नहीं भेजा। बोलेः मैं उसे बिगाड़ रही हूँ। बड़े आदमियों के बच्चे कैसे व्यवहार करते हैं, यह वह सीख ही नहीं पाता। परिणाम यह हुआ कि एक दिन वह बाहर खेल रहा था कि मैं उसे ले आई और मैंने निश्चय किया कि अब उसे कभी नहीं लौटाऊँगी..."

"लेकिन बच्चा तो आप कह रही थीं आजकल कृष्णाप्रसाद और अपर्णा के पास है ?"

"चोर हैं पक्के ! मुझे तो कोई काम नहीं था; अतः बच्चे के इधर-उधर होने का कोई डर भी नहीं था। लेकिन ये जरूर ताक लगाते रहे होंगे। एक दिन पंकज आँगन में खेल रहा था कि ये उठाकर ले गए..."

"आप कहाँ थीं ?"

"मैं पाखाने में थी। अब क्या इनके डर से वहाँ भी बच्चे को साथ ले जाती ?"

अमरनाथ खिलखिलाकर हँस पड़ा। "ऐसी विचित्र कहानी तो मैंने सुनी नहीं।" वह बोला। "अच्छा, आप परसों प्रभातकाल में यहीं आइए। उस समय बतलाऊँगा कि मै आपके लिए कुछ कर सका या नहीं। इस घटना में केवल एक ही बात मेरी समझ में नहीं आई और वह यह कि आपकी अपर्णा दीदी ने इतना बड़ा समझौता अपने पति से क्यों कर रखा है ? लेकिन आप जाइए। कौल साहब को आपके सामने झुकना होगा, यह विश्वास मैं आपको एक बार फिर दिलाना चाहता हूँ।"

तीसरे दिन जब कंचन अमरनाथ के पास आई तो उसने कहा कि वकील उसने उसके लिए पक्का कर दिया है। वकील उसका मित्र है और मेहनताने का एक पैसा नहीं लेगा।

कंचन कौल के पत्र लाने भूल गई थी।

वकील अमरनाथ ने अवश्य पक्का कर दिया था; पर क्या वह स्वयं भी आश्वस्त था। कौल से झगड़ा मोल लेना ! यह तो कोई बात नहीं थी। कौल ने अन्याय किया है। उसका परिणाम उसे भोगना ही होगा। लेकिन उस रात वाली घटना !

अमरनाथ ने कंचन से एक सप्ताह बाद आने के लिए कहा। कंचन प्रसन्न होकर चली गयो। उसे विश्वास हो गया था कि अब उसका काम हो जायगा।

शहर में उसके एक वकील दोस्त थे—मि० रस्तोगी। इन्होंने थोड़े ही दिनों में अपनी प्रेक्टिस जमा ली थी और काफ़ी रुपया पैदा किया था। स्वतन्त्रता से पहले कांग्रेस से मुकदमे वे मुफ्त लड़ा करते थे। जब देश स्वतन्त्र हुआ और कांग्रेस शक्ति में आई तो जिन लोगों ने इनसे काम लिया था, वे इनकी हर प्रकार से सहायता करने लगे। एक वार एक क़त्ल के मुक़दमे में एक वहुत प्रसिद्ध वकील के विरोध में ये विजयी हुए। उस समय से इनकी धाक शहर में जम गई। इस समय इन्होंने मकान के लिए ज़मीन ख़रीद ली थी और एक कार मोल ले ली थी। स्वयं बहुत सादा-मिजाज़ थे। खद्दर पहनते थे। त्यागी ऐसे कि कार कभी किसी मुसिफ़ के काम आ रही है, कभी किसी डिप्टी के, कभी किसी एम० एल० ए० के और आप स्वयं पैदल कचहरी जा रहे है। मिलनसार इतने कि होली दिवाली की तो बात ही अलग है, वैसे भी कभी किसी बड़े आदमी के यहाँ बैठे हैं तो कभी किसी दूसरे प्रभावशाली व्यक्ति के यहाँ। हिन्दू-मुसलमान सब खुश। हिंदुओं से तुलसी, सूर, मीरा की प्रशंसा कर रहे हैं, तो मुसलमान मित्रों को ग़ालिब ज़ौक, मीर के शेर सुना रहे हैं। कभी धोती-कुर्ते मे नज़र आ रहे हैं, कभी चूड़ीदार पाजामा और शेरवानी में।

घर की झंझटों से मुक्त होकर जब अमरनाथ रात को रस्तोगी से मिला तो वे अपनी कार से बाहर जाने की तैयारी में थे। नीचे कार मे उनके एक मित्र बैठे थे। अमरनाथ ने जब कहा कि वह काम से आया है तो रस्तोगी ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया और उसे खींचकर नीचे ले आया। इससे पहले कि अमरनाथ कुछ कहे, कार सर्र से उड़ चली। अमर नाथ ने समझा रस्तोगी मुक़दमे के मामले में कहीं जा रहा है। अमरनाथ के सभी स्थान परिचित नहीं थे; अतः कहा नहीं जा सकता कि इस समय वे किस मोहल्ले में थे। इतना स्पष्ट था कि मोहल्ला उजाड़-सा था और वहाँ अधिकतर गरीब लोग रहते होंगे। जिस सकान में वे ऊपर चढ़े, वह अपेक्षाकृत साफ़ और सुथरा था। यह एक वेश्या का मकान था।

ऊपर कमरे में फ़र्श विछा था। कमरा चौड़ा कम था, लम्बा कुछ

आवश्यकता से अधिक। कमरे के बाहर एक तख्त पड़ा था। इस पर बैठ कर तीनों ने अपने जूते उतारे और मोज़े पहने भीतर घुस गए। पतले चेहरे और बड़ी आँखों वाली एक नवयुवती पक्का गाना गा रही थी। संगत केवल तबले की थी। तबलची काफ़ी वृद्ध था। पास मे युवती वेश्या की मा बैठी थी जो अपने समय में सुन्दर रही होगी। रस्तोगी ने कमरे में प्रवेश करते हीं कहा: लो, शमा, तुम्हारे परवाने आ गए। इससे अमरनाथ को पता चला कि वेश्या का नाम शमा है और वह मुसलमान है। रस्तोगी उसे किसी वेश्या के यहाँ लिए जा रहा है, इसकी आशंका स्वप्न में भी अमरनाथ को न थी; नही तो वह उसके साथ न आता। लेकिन सबसे अधिक आश्चर्य उसे यह देखकर हुआ कि सामने तकियों का सहारा लिए हुए श्री कृष्ण-प्रसाद कौल विराजमान हैं।

"तुम यहाँ ?" कौल ने उठते हुए अमरनाथ से कहा।

"जहाँ आप हो सकते हैं, वहाँ मैं नहीं हो सकता ?" अमरनाथ ने उत्तर दिया।

"ज़रूर, ज़रूर।" इतना कह कर वे कमरे से बाहर जाने लगे।

"कहाँ चले ?" अमरनाथ ने पूछा।

"अब आप लोग बैठिए। मैं चलूँ। फिर मुलाक़ात होगी।" और वे चले गये। अमरनाथ जब उन्हें रोकने के लिए उनके पीछे जाने लगा तो रस्तोगी ने उनका हाथ दबाया। अमरनाथ वहीं ठिठक गया।

थोड़ी देर में तीनों के लिए चाय आ गई। चाय पीकर अमरनाथ सोचने लगा—वह क्या करे ?

शमा की मा भीतर पान लगाने गयी तो रस्तोगी उसके पीछे-पीछे चला गया। शमा वहाँ रह गई।

कमरे की दीवारें सादी थी। सामने एक बड़ा चित्र था—क्रास पर लटके हुए ईसामसीह का चित्र। अमरनाथ के मन में न जाने कैसी एक अवर्णनीय वेदना उमड़ी।

रस्तोगी लौट आया। शमा की मा ने चाँदी की तश्तरी में चाँदी की

सींकों से बिंधे पान सामने रख दिए । शमा से उसने कोई चीज़ सुनाने को कहा । शमा ने गाना प्रारम्भ किया—रसीले तोरे नैना श्याम ।

गाना समाप्त होने पर रस्तोगी ने अमरनाथ से उठने का संकेत किया । ज़ीने के पास आकर शमा की मा को पाँच-पाँच के पाँच नोट उसने दिये । उन दोनों के सड़क पर आते ही एक बुड्ढे नौकर ने किवाड़ बन्द कर दिए ! अब वहाँ कोई गाना सुनने वाला नही आ सकता था । शमा रात भर को डिप्टी साहब की थी ।

"तुम अपनी बात कहो ?" रस्तोगी ने अमरनाथ को झकझोरा ।

"अब पता चला तुम साले, किस तरह पैसा इकट्ठा करते हो ।" अमरनाथ ने व्यंग्य करते हुए कहा ।

"डिप्टी साहब अपने दोस्त है । क्या दोस्त का साथ हमें नहीं देना चाहिए ?"

"डिप्टी साहब शादी शुदा हैं ?"

"हैं तो ।"

"और तुम भी ।"

"और मैं भी"···रस्तोगी हँसते हुए बोला ।

"तुम लोगों का जी अपने घर में नहीं लगता ?"

"बहुत कोशिश करते हैं कि घर मे जी लगे; लेकिन लगता नहीं ।"

"क्यों नहीं लगता ?"

"बँधी औरत और बँधी जगह से, चाहे वह कितनी ही ख़ूबसूरत हो जी ऊब ही जाता है मेरे दोस्त ।"

"यदि तुम्हारी पत्नियाँ यही करें तो ?"

"अच्छा मान लिया, यह बहुत उचित नहीं; आगे !"

"और यह कहाँ की लॉजिक है कि ऐश डिप्टी साहब करें और पैसे तुम ख़र्च करो ?"

"अब तुम्हीं सोचो, साहब ख़र्च करते क्या अच्छे लगते ?"

"मैं इसे रिश्वत देने का एक ढंग समझता हूँ ।"

"मैं इसे मित्र के प्रति मित्र का कर्तव्य समझता हूँ। आवश्यकता पड़ने पर क्या मैं तुम्हारे या तुम्हारे बच्चों के ऊपर दस-बीस रुपये खर्च नहीं कर सकता ? लेकिन यार, हँसी की बात छोड़ो, तुम इस घटना की चर्चा कहीं करना मत। डिप्टी साहब अपने चरित्र और निष्पक्षता के लिए प्रसिद्ध हैं। यह उनकी 'प्राइवेट लाइफ़' है। और हमें किसी की 'प्राइवेट लाइफ़' से क्या लेना-देना है।"

"अच्छा, जैसे आदमी तुम हो, वह मैंने समझ लिया।" इतना कहकर कौल और कंचन का नाम छिपाकर अमरनाथ ने पूरी कहानी सुना दी।

"यह काम मैं तुम्हारा कर दूँगा—बिना पैसा-कौड़ी लिए। ज़रूरत पड़े तो अपने पास से सौ-पचास ख़र्च कर दूँगा। लेकिन बुरा न मानो, तो मैं एक बात पूछना चाहता हूँ।"

"पूछो।"

"तुम इस औरत में क्यों 'इन्टरैस्टिड' हो ?"

"वैसे ही।"

"वैसे ही कोई किसी में इतनी दिलचस्पी नहीं लेता।"

"मनुष्यता के नाते मेरा कर्तव्य है कि···"

"वह तो मैंने समझ लिया। लेकिन ऐसी थोथी मानवता में मेरा कम विश्वास है। तो मैं यह समझूँ कि तुम्हारी उसमें किसी स्वार्थ के लिए दिलचस्पी नहीं है ?"

"एकदम नहीं।"

"अपना दिल टटोलकर बतलाओ ?"

"हाँ-हाँ; तुम्हारा लेकिन मतलब क्या है ?"

"यही कि अगर तुम्हारे मतलब की वह नहीं है तो हम उसे अपने मतलब की बनायें। यह तो स्पष्ट है कि उससे मिलना तो कुछ है नहीं। और उसका जैसा चाल-चलन है, वह भी साफ़ है ही। जो औरत एक

आदमी के पास सो सकती हैं, वह दस के भी। क्यों न वह अपना जी कभी-कभी बहलाए ? तुम्हें कोई आपत्ति है ?"

"तुम साले, बहुत ज़लील क़िस्म के आदमी हो और मैं क्या कहूँ ! औरत की मुसीबत से फ़ायदा उठाने में तुम्हें शर्म नहीं आती ?"

"देखो दिल लगाने को एक जगह मिल जाय तो जो पैसा व्यर्थ बरबाद होता है, वह न हो। लेकिन तुम्हारा जी दुखाकर मैं कुछ नहीं करना चाहता। फिर भी मेरी समझ में यह नहीं आया कि वह औरत तुम्हारी रिश्तेदार नहीं है, तुम उसे पहले से जानते भी नहीं हो, तब उसके लिए तुम्हारे मन में इतना दर्द क्यों है ?"

"अच्छा, तो तुम इस काम के लिए तैयार रहना। दूसरी भेंट में कुछ अधिक बताऊँगा।"

रस्तोगी का घर पास आ गया था। अमरनाथ विदा लेकर लौट आया। रात को बहुत देर तक उसे नींद नहीं आयी। वह सोच रहा था: कौल, डिप्टी साहब और रस्तोगी, ये सभी विवाहित हैं। फिर ये मारे-मारे क्यों फिरते हैं ? कौल और रस्तोगी की पत्नियों को मैंने देखा है। दोनों ही सुन्दर हैं। डिप्टी की पत्नी भी ऐसी ही होगी। वैवाहिक जीवन की पवित्रता की रक्षा ये लोग क्यों नहीं कर पाते ? ऐसा भी नहीं लगता कि ऐसा करके तीनों की आत्मा को कहीं चोट पहुँचती है। तीनों ही उसे अस्वाभाविक नहीं समझते। तब क्या मनुष्य को बाँधने की शक्ति विवाह में नहीं है ? तब क्या विवाहित व्यक्ति विवाह के घेरे के बाहर सामान्य रूप से जाते हैं ? क्या तब रस्तोगी की यह बात ठीक है कि एक व्यक्ति कितना ही सुन्दर हो, हमेशा उसके साथ रहने से प्राणी का मन ऊब जाता है और वह कुछ परिवर्तन चाहने लगता है ?

सूर्योदय से पहले ही अमरनाथ दयालबाग़ की ओर टहलने निकल जाता था। वह अभी थोड़ी दूर ही पहुँचा होगा कि बीच में एक वृक्ष के नीचे एक छाया-मूर्ति उसे दिखाई दी। अमरनाथ सीधे हाथ की सड़क की ओर मुड़ गया। उधर टहलने वाले बहुत कम जाते थे।

यह कंचन था।

कंचन ने पास आकर कहा, "मैं बहुत लज्जित हूँ और क्षमा चाहती हूँ। आपने एक सप्ताह बाद मिलने के लिए कहा था; लेकिन मैंने सोचा आज ही मिल लूँ। पता नहीं, आप मुझे क्षमा कर पायेंगे या नहीं?"

"अच्छा किया जो आप आ गईं। मुझे प्रसन्नता ही हुई। आपका काम बिलकुल ठीक है।"

"इस केस को मैं कोर्ट में नहीं ले जा सकूँगी।"

"क्यों?" अमरनाथ ने चकित होकर पूछा।

"इन्हें कैसे ही पता चल गया है कि मैं कचहरी में केस ले जाना चाहती हूँ। परसों रात वे मेरे पास आये और कहने लगे : जो सत्य है, उसे कोई मिटा नहीं सकता। उसे तुम भी जानती हो, मैं भी जानता हूँ; लेकिन संसार भी कोई चीज़ है। यह हमारी व्यक्तिगत बात है। मुझे जो चाहो सज़ा दे लो; लेकिन दुनिया मुझे सज़ा दे, यह कहाँ का न्याय है? इसे तुम स्वयं न सहन कर पाओगी। और इतना कहकर वे मेरे पैरों पर गिर पड़े और उन्हें आँसुओं से भिगो दिया।"

"तब?"

"मेरे मन में कितना ही क्रोध हो; लेकिन कचहरी में इस आदमी का मुँह देखकर मैं कुछ नहीं कह पाऊँगी, ऐसा मुझे लगता है।"

"और क्या कहा?"

"समझाते रहे कि मेरे यहाँ रहने में उनकी बदनामी बढ़ने की संभावना है। अगर वह बढ़ी तो फिर वे किसी ऐसी जगह चले जायेंगे, जहाँ मैं उन्हें न पा सकूँ। ऐसी दशा मे अगर मैं शहर छोड़कर चली जाऊँ तो अच्छा हो।"

"आपने क्या उत्तर दिया?"

"मैं सोचती हूँ, मुझे चला जाना चाहिए। वे बनारस में मेरा प्रबन्ध करना चाहते हैं, लेकिन मैंने वह स्वीकार नहीं किया।"

"ऐसी दशा में क्या सोचती हैं?"

"यही सोचती हूँ कि आपके उपकार का बदला मैं कैसे चुकाऊँगी !"

"छोड़िए उस बात को। यह बतलाइए कि कब तक चली जायँगी यहाँ से ?"

"जल्दी ही।"

कंचन ने न तो विदा माँगी और न अमरनाथ ने ही उसे विदा दी। टहलने के लिए वह आगे नहीं जा पाया। पर रस्तोगी का प्रश्न उसे रास्ते भर मथता रहा—यह औरत तुम्हारी रिश्तेदार नहीं है, इसे पहले से भी तुम नहीं जानते; फिर उसके लिए तुम्हारे मन में इतना दर्द क्यों है ?

१३

कंचन को जीवन के संघर्ष से इस प्रकार विरक्त होते देख अमरनाथ को आश्चर्य हुआ—आश्चर्य से अधिक दुःख। अब वह क्या करेगी, कुछ कहा नहीं जा सकता था। उसके लिए सब कुछ ठीक हो गया था और थोड़े साहस का परिचय देती तो जीवन भर सुखी रह सकती थी। कौल उसके लिए कुछ करेगा, ऐसी आशा उसे बिल्कुल नहीं थी। वह कहाँ जायगी, क्या करेगी, इसका अमरनाथ को कुछ भी पता न था। क्या पुरुष ऐसे ही अत्याचार करता रहेगा और नारी ऐसे ही सहन करती रहेगी ? क्या एक बार प्यार करके नारी इतनी समर्पित हो जाती है कि फिर वह कुछ और सोच ही नहीं सकती ? आघात पाने पर क्या वह इतनी टूट जाती है कि जीवन के चैलेंज को फिर स्वीकार ही नहीं कर सकती ? विश्वासघात भी उसके मन में अपने प्रेमी के प्रति कोई दुर्भावना नहीं जगा सकता, यह क्या बात है ? ऐसी क्या विवशता है कि जिस व्यक्ति ने उसे ठोकर मारी है, उसे समाज के चार आदमियों के सामने खड़ा करके वह यह भी नहीं कह सकती कि देखो, यह वह व्यक्ति है जिसने मेरे जीवन को नष्ट किया है ? जीवन के मंच से इस प्रकार चुप ने हट जाने में नारी किस बुद्धिमानी का परिचय देती है ?

अमरनाथ की इच्छा हुई कि इस घटना को ज्यों-का-त्यों वह पत्रों में प्रकाशित करा दे। और कुछ नहीं तो समाज की आँखें ही कुछ खुलेंगी। कम-से-कम कंचन जैसी अन्य भोली लड़कियों का जीवन नष्ट होने से बच जायगा। लेकिन कंचन को पता नहीं, यह सब कैसा लगे! यह कंचन के जीवन का रहस्य था, जिसे उसने विश्वास करके उसे बतलाया था। लेकिन कंचन तो एकदम चल दी। वह अधिक समझा भी नहीं पाया। पता नहीं, अब वह कहाँ होगी? क्या कर रही होगी?

अमरनाथ को यह घटना बहुत दिनों तक व्यथित करती रही; लेकिन जीवन में फिर कंचन से उसकी भेंट नहीं हो पायी।

परिणाम यह हुआ कि कौल के सम्बन्ध में उसकी धारणा ख़राब हो गई। यहाँ-वहाँ उससे सामना हुआ भी तो वह निगाह बचा गया।

लेकिन पिछले कुछ दिनों से अपर्णा के सम्बन्ध में भी उसकी धारणा कुछ अच्छी नहीं थी।

अमरनाथ प्रभात-बेला में सिविल लाइन्स की ओर से निकलता तो देखता कि अपर्णा किसी के साथ टहल रही है। इन टहलने वालों में कौल को उसने कभी नहीं देखा। संध्या समय देखता वह कार में किसी के साथ कहीं जा रही है। अपर्णा कार प्रायः स्वयं ड्राइव करती होती। जन साधारण की धारणा की उसे कोई चिंता नहीं थीं। अमरनाथ को यह सब न तो आश्चर्य-जनक लगता था, न बुरा; लेकिन अपर्णा कुछ आवश्यकता से अधिक स्वतन्त्र स्वभाव की है, यह उसे ज़रूर लगता था। कौल दम्पति का जीवन कैसा है, यह वह कभी-कभी जानना चाहता है। कैसी यह स्त्री है और कैसा इसका पति है कि कुछ नहीं कहता। कृष्णप्रसाद का चरित्र यों उसे स्पष्ट ही था। अपर्णा भीतर से कैसी है, यह भी किसी दिन स्पष्ट हो ही जायगा।

एक दिन अमरनाथ किसी पत्रिका का विशेषांक ख़रीदने रेलवे बुक-स्टाल पर गया था कि दूर प्लेटफार्म पर उसे अपर्णा खड़ी दिखाई दी। वह स्टेशन पर किसी को छोड़ने आई थी और रेल की खिड़की से लगी

बात कर रही थी। अमरनाथ अख़बार ख़रीदकर बाहर निकल गया। वह थोड़ी दूर ही गया होगा कि पीछे से एक कार आकर उसके पास खड़ी हो गई। सड़क पर आने-जाने वालों का तांता लगा हुआ था।

यह अपर्णा थी।

"कहाँ जा रहे हैं ?"

"कहीं नहीं।"

"तब आइए।"

"नहीं, मैं चला जाऊँगा।"

"आइए न, जहाँ आप जाना चाहते है, वहाँ मैं ही पहुँचा दूँ।"

"आपको मालूम है, मैं कहाँ जाना चाहता हूँ ?" अमरनाथ ने हँसकर पूछा।

"हाँ।"

अमरनाथ पीछे बैठ गया। अपर्णा ने कुछ नहीं कहा। शायद इस बात पर ध्यान भी नहीं दिया। कार चल दी।

अपर्णा ने एक मोड़ लिया। अमरनाथ ने कहा, "यह तो मेरे घर का रास्ता नहीं है।"

"आप अपने घर तो नहीं जाना चाहते ?"

अमरनाथ को बातचीत में रस आने लगा। बोला, "तब कहाँ जाना चाहता हूँ ?"

"अनुमान से ले चल रही हूँ।"

कार बाग़ मुज़फ़्फ़रख़ाँ में मेहता के घर के सामने आ खड़ी हुई।

"आपको मेहता से कोई काम है ?" अमरनाथ ने चुटकी ली।

"मैंने सोचा शायद आप मोहिनी से मिलना चाहे ?" अपर्णा ने वैसी ही चुटकी लेते हुए कहा।

"ग़लत सोचा आपने। लेकिन जब आ ही गयी हैं, तो चलिए मिलते चलें।" अमरनाथ बोला।

"नहीं, कोई आवश्यक नहीं है।" और उसने कार स्टार्ट कर दी।

"अब मुझे सचमुच नहीं मालूम है कि आप कहाँ जायँगे।" अपर्णा ने कहा।

"तब, मैं जहाँ कहूँ वहाँ छोड़ देंगी ?"

"हाँ।" अपर्णा ने हँसते हुए कहा।

"कोई उलझन तो नहीं होगी ?"

"नहीं।"

"कहीं रास्ते में छोड़ दीजिए।"

"मैं सचमुच रास्ते मे छोड़ दूँगी।" अपर्णा ने खिलखिलाते हुए कहा।

"इस पर भी राजी नहीं हैं, तो चलिए आपके ही घर चलें।"

अपर्णा ने कार तेज़ कर दी।

१४

घर में प्रवेश करते ही अमरनाथ ने देखा कि बीच का दरवाज़ा खुला हुआ है और उमा उधर टहल रही है।

"इधर आओ।" उमा ने कहा।

अमरनाथ ने सिर हिलाया। आशय था—नही।

"इधर आओ तो।" उमा ने आग्रह किया।

अमरनाथ ने हाथ से कई प्रकार के संकेत किए। तात्पर्य था—संतोष उधर है। मैं नहीं आ सकता। मैं नहीं आना चाहता। यह बात मुझे अच्छी नहीं लगती।

उमा ने फिर कहा, "इधर कोई भी नहीं है, इसी से बुला रही हूँ।"

अमरनाथ चला गया। एक आंगन था। लम्बा अधिक, चौड़ा कम। एक लम्बा कमरा। उससे मिला किचन। आँगन मे पक्का फर्श नहीं था; लेकिन वह स्वच्छ और लिपा-पुता था। एक कोने में हरसिंगार का एक पेड़ था। पेड़ के नीचे पक्का चबूतरा। उसके ऊपर चिकना पत्थर लगा था।

पता नहीं यह चबूतरा किस लिए बनाया गया था । अमरनाथ इस पर बैठ गया । उसने हाथ पकड़कर उमा को अपने पास बिठाना चाहा । उमा झिटक कर दूर खड़ी हो गयी ।

"यह औरत कहाँ गई ?"

"घर छोड़कर चली गई ।"

"चलो अच्छा हुआ ।" अमरनाथ ने संतोष की साँस ली ।

"क्यों ?"

"अरे हर वक्त हमारे घर ही खड़ी रहती थी—बहिन जी दियासलाई है, बहिन जी चाय की पत्तियाँ हैं, बहिन जी थोड़ा नमक है, बहिन जी थोड़ा घी होगा, बहिन जी···"

उमा ने टोकते हुए कहा, "यह बहुत बुरी बात है । जो तुम्हें अच्छा नहीं लगता, फ़िर उसमें कोई गुण ही तुम नहीं देख पाते ।"

"लेकिन मकान क्यों छोड़ दिया ?"

"माता जी उन्हें सुनाकर कुछ न कुछ कहती रहती थीं । यह भी कहा कि मकान छोटा होने के कारण उनकी बहू को बहुत कष्ट है···"

अमरनाथ हँसा, "तो तुम समझती हो उसने तुम्हारी सुविधा के लिए मकान खाली कर दिया ?"

"हो सकता है, ऐसा ही हो ।"

"मैं नहीं मानता कि आज के युग में कोई भी किसी का इतना ध्यान रख सकता है ।"

"कुछ भी हो; लेकिन तुम्हारा व्यवहार उसके प्रति ठीक नहीं रहा, यह मैं कह सकती हूँ । तुम किसी के प्रति अप्रसन्न क्या होते हो, एकदम कठोर हो जाते हो ।"

"लेकिन उससे मुझे लेना-देना क्या था ?"

"फिर भी वह बहुत दुःखी थी और साथ ही गरीब भी ।"

"तो तुम्हारा मतलब है उसका पति···।"

"नहीं नहीं, पति तो जीवित है और यही दुःख की बात है। उसने संतोष को छोड़ दिया है..."

अमरनाथ को अब लगा उससे सचमुच संतोष के प्रति कठोर व्यवहार हो गया है। उसकी इच्छा हुई वह अभी जाकर उसे ढूंढ़े और घर लौटा लावे और उससे कहे कि वह परिवार के एक सदस्य की तरह उसके साथ रह सकती है। जब हमारी करुणा पिघलती है तो हम ऐसे ही उदार हो जाते हैं। सहसा उसे उमा की उपस्थिति का ध्यान आया।

"तो तुमने उससे पूछा नहीं, उसके पति ने उसे क्यों छोड़ दिया ?"

"यह कोई पूछने की बात है ?"

"इसका पति रहता कहाँ है ?"

"कहीं रहता होगा। तुम्हें पति-पत्नी के बीच कोई पंचायत करनी है ?"

प्रश्न सचमुच व्यर्थ था। अमरनाथ झेंपा-सा हो गया।

लेकिन अब वह संतोष से मिलेगा, यह उसने मन ही मन निश्चय किया।

लेकिन संतोष से मिलना हो कैसे ? संतोष कहाँ रहती है, उसे मालूम ही न था।

संयोग की बात है एक दिन जब वह कॉलेज से लौट रहा था तो उसने देखा संतोष उसके घर से लौट रही है। वह लपक कर आगे बढ़ा। ऐसा न हो कि संतोष कहीं आँखों से ओझल हो जाय। पास आकर उसने आवाज़ दी, "संतोष।"

संतोष ने घूमकर देखा। उसके पैर बँधे से रह गए।

अमरनाथ ने घर की ओर देखा। छत की खिड़की से उमा संतोष को जाते हुए देख रही थी। उसने उस ओर से दृष्टि फिरा ली।

संतोष ने सहज भाव से पूछा, "कहिए ?"

"कहाँ से आ रही हो ?"

"आपके घर से।"

"कहाँ जा रही हो ?"

"अपने घर।"

यह तो उसे भी मालूम था। स्वर की उदासीनता उसे कुछ अखरी; लेकिन वह जानता था यह रूखापन वस्तुत ऊपरी है। वह साथ चलने लगा।

"घर लौटने को ऐसी क्या जल्दी है ?"

"आशा घर पर अकेली है।"

"यह तो ठीक है।"

"फिर ग़लत क्या है ?"

"मन के विरुद्ध रूखा व्यवहार करना।"

संतोष ने उसे तीखी दृष्टि से देखा। वह फिर चलने लगी।

सामने से एक भिखारी आता दिखाई दिया।

"सुबह का भूखा हूँ। एक पैसा।" उसने हाथ फैला कर कहा।

"आप अभी तक भूखे है ?" अमरनाथ ने हँसकर पूछा।

"हाँ, दाता।"

"तो यहाँ क्या है ? घरों में माँगिए। खाना तो वहीं मिलेगा।"

"आप दोनों की जोड़ी बनी रहे मालिक। एक पैसा।" उसने आशीर्वाद दिया।

संतोष ने दाँत काटा। उसने घूर कर भिखारी को देखा—मानो ग़ुस्सा कर रही हो। अमरनाथ ने जेब से निकालकर इकन्नी दी। भिखारी बच्चों के लिए आशीर्वाद देता हुआ चला गया।

"ऐसे बदतमीज़ को पैसे देने चाहिए ?"

"और क्या मारना चाहिए ?"

"ओहो, बड़े ख़ुश हो रहे हैं, जैसे जग जीत लिया हो।" संतोष ने मरोर के साथ कहा।

"उसे कुछ मालूम नहीं है संतोष, केवल अनुमान से आशीर्वाद दिया है। तुम अकारण अप्रसन्न हो रही हो। अकारण अप्रसन्न होना शायद

तुम्हारा स्वभाव ही बन गया है। तुम आदमी के अन्तःकरण का भाव न देखकर उसके शब्दों के पीछे चली जाती हो...''

''तो मैं 'बेवकूफ़' हूँ ?''

''वह तो तुम हो। मकान छोड़ना ही इस बात का प्रमाण है।''

''मकान छोड़ने से आपसे बात तो हो पाई, वहाँ रहकर तो...।''

अमरनाथ ने संतोष के दृष्टिकोण को समझा। उसने पूछा, ''घर क्यों गई थीं ?''

''गई थी आपकी बुराई करने।''

''मेरी बुराई ?''

''हाँ। लेकिन इस बात पर मैं आपको बधाई देना चाहती हूँ कि पत्नी सौभाग्य से आपको बहुत ही अच्छी और भली मिली है।''

''क्यों क्या हुआ ?''

''बातचीत करते हुए मैंने आपके प्यार की बात उनसे कह दी...''

अमरनाथ ने चकित होते हुए पूछा, ''मेरा प्यार किससे है ?''

''मीरा से।''

''तुमसे किसने कहा ?''

''सारा शहर कह रहा है। आप समझते हैं ऐसी बातें कहीं छिपी रहती हैं—और वह भी इस रूढ़िवादी आगरे में ? यहाँ तो कोई किसी के साथ निकल जाय, बस। दूसरे दिन ही सारे शहर में उनका नाम सदा के लिए एक दूसरे के साथ जुड़ जायगा। 'आलोक' की गोष्ठियों के पीछे लोग अगर आपके प्रेम-व्यापार को छिपा हुआ देखते हैं तो मैं क्या करूँ ?''

''लेकिन यह बात झूठ है संतोष।''

''किसकी ओर से ?''

''मेरी ओर से।''

''और उधर से ?''

''उधर का मुझे पता नहीं।''

''मुझे पता है।''

"तुमसे किसने कहा ? मीरा ने ?"

"नहीं । उसके एक दूसरे प्रेमी ने—उसके मजनूं ने—छैलबिहारी ने ।"

अमरनाथ हँसने लगा । वह हँसता ही रहा ।

संतोष ने कहा, "सड़क का ध्यान रखना चाहिए । कोई क्या कहेगा ?"

"उस भिखारी ने जो कहा उससे अधिक तो कोई कुछ कहने से रहा; लेकिन तुम जानती हो उसके कहने और सारे शहर के कहने पर भी वह सब झूठ होगा । अच्छा, छोड़ो इस बात को । तो तुमने उमा से कहा : मैं मीरा को प्यार करता हूँ ?"

"नहीं । कहा यह कि मीरा आपको प्यार करती है ।"

"उमा ने क्या सोचा होगा संतोष ?" अमरनाथ ने चिन्तित होते हुए कहा ।

"कुछ नहीं सोचा, यही तो आश्चर्य की बात है । कहने लगीं : तुम भी पागल हो गई हो संतोष ! इन्हें भी कोई प्यार करेगा ! बात तक तो इनसे करनी नहीं आती ।"

"हे भगवान !" अमरनाथ के भीतर से एक गहरी साँस निकली ।

संतोष का घर आ गया था । दरवाज़े पर खड़े होकर उसने हाथ जोड़े और कहा, "अच्छा नमस्ते ।"

अमरनाथ की इच्छा भीतर बैठकर बात करने की थी । लेकिन इस रूखे व्यवहार पर उसका अभिमान उभर आया । वह बिना उत्तर दिए लौट गया । बहुत देर तक वह यहाँ-वहाँ घूमता रहा । इसके उपरांत जी नहीं लगा तो सिनेमा देखने चला गया । वहाँ से वह पैदल घर लौटा । इस लौटने में उसे काफ़ी देर हो गई । उसने धीरे से दरवाज़े को खटखटाया । संतोष वाले भाग में उसके पिता दीनबन्धु आ गए थे । उन्होंने उठकर किवाड़ खोले ।

घर में प्रकाश का कहीं नाम तक नहीं । ज़ीने से चढ़कर वह ऊपर गया । छत वाले कमरे में उसकी मा किवाड़ बंद किए सो रही थी । वह तीसरी मंज़िल पर गया । कमरे की किवाड़ें केवल भिड़ी हुई थीं । साँकल

भीतर से बन्द न थी। उमा अपने पलंग पर सो रही थी। दशमी का चाँद उग कर आकाश में काफ़ी चढ़ आया था। इस आलोक की पृष्ठ-भूमि में—जो कमरे के अन्धकार को चीर तो नहीं पा रहा था, पर उसे कुछ-कुछ धो रहा था—अमरनाथ ने धीरे से कपड़े उतारे और डरकर चुप हो मया। पहले तो भूख के कारण उसे नींद ही नहीं आई; लेकिन जैसे ही उसने झपकी ली कि उमा ने उसे झकझोर कर जगा दिया। अमरनाथ उठ बैठा।

"तुमने खाना खा लिया?"

"नहीं तो।"

"क्यों?"

"जब मैं आया तब तुम गहरी नींद में सो रही थीं। मैंने इस डर से कि शायद तुम थककर सो गई हो, जगाने का साहस नहीं किया।"

"वाह, यह क्या बात हुई? और तुम भूखे ही सो गए? मेरा सोना इतना महत्वपूर्ण था?"

"एक दिन न सही खाना।"

"तुम किस समय आये?"

अमरनाथ ने डरकर फिर झूठ बोला, "यही साढ़े आठ बजे होंगे।"

उमा ने 'बिग बैन' की ओर देखते हुए कहा, "और ये पौने बारह बजे हैं! मैं बहुत सोयी!"

"अब हटाओ। कल खायेंगे।"

"वाह, यह भी कोई बात है।" इतना कहकर उमा ज़ीने से उतरकर नीचे किचन में गई और थाली में खाना ले आई। बाहर ठंडी हवा चल रही थी; लेकिन वह इसकी चिन्ता न करके इस बात पर पछताती रही कि उसके कारण उसका पति इतनी देर तक भूखा रहा। अमरनाथ भारतीय नारी के इस रूप पर मुग्ध भी था और चकित भी। उसके खाना खाने पर, उमा फिर नीचे चली गयी।

उमा को लौटने में जब थोड़ी देर हुई तो अमरनाथ ने समझ लिया

वह नीचे खाना खाने गयी है। उसके मन में उमा के लिए ऐसा अनुराग उमड़ने लगा कि वह जानता नहीं था, क्या करे। उसने बार-बार अपने को धिक्कारा। वह बहुत लापरवाह हो गया है। कैसी ही स्थिति हो, घर अब वह समय से ही लौट आया करेगा। यदि उमा की आँख न खुलती, तो वह बेचारी भूखी ही सो जाती। यह ठीक है कि उसे खाना खा लेना चाहिए था; लेकिन हिंदू नारी का संस्कार! वह उसे समझायेगा। खाक समझायेगा! जब वह खाना खा रहा था और उमा पास बैठी थी तो उसने इस बात का अनुमान क्यों नहीं लगा लिया कि उसने भी खाना नहीं खाया होगा। उमा ने उससे पहले कभी खाना खाया भी है जो आज ही खा लेती? और क्यों नहीं, उसने उसी थाल में खाने के लिए उससे आग्रह किया? कल से रात को वह ऊपर ही खाना मँगवाया करेगा और दोनों साथ-साथ खाना खाया करेंगे। साथ-साथ खाने का अलग ही सुख है!

अमरनाथ से वहाँ लेटा नहीं गया। वह चुप चरणों से नीचे उतरा। रसोई में लकड़ी के पटले पर बैठी उमा खाना खा रही थी। इससे पहले वह किचन का सामान सँभालती रही थी। एक छोटी-सी तश्तरी में मोड़ कर परांवठे रखे थे। उसी में दोनों सूखी सब्ज़ियाँ। अमरनाथ को देखकर उसने पीठ फेर ली।

"आप ?"

"हाँ मैं। लेकिन; तुम हाथ में लेकर खाना क्यों खा रही हो? ये थाल-कटोरियाँ किसलिए हैं?"

उमा ने दबी आवाज़ में उत्तर दिया, "आप ऊपर जाइए। मैं अभी आती हूँ।"

उमा के लिए जो अनुराग अमरनाथ के मन में उमड़ रहा था, वह एक सैकिंड में सूख गया। भारी मन से लौटकर वह ऊपर आ गया।

उमा थोड़ी देर में मुस्कराती हुई सामने आकर खड़ी हो गई। "अब बताओ क्या बात है?"

"तुमने खाना क्यों नहीं खाया था?"

"तुमने खा लिया था क्या ?"

"मुझे कभी-कभी घर लौटने में देर हो सकती है। अब इसका तात्पर्य यह तो नहीं है कि मैं देर से खाऊँ तो तुम भी भूखी बैठी रहो।"

"मैं कौन रोज़ देर से खाती हूँ। लेकिन इस तरह मुझसे खाया नहीं जाता। मैं खा ही नहीं सकती।"

"यह तो आदमी को घर जल्दी लौटने के लिए विवश करना हुआ ?"

"इतना ही ख़याल है तो जल्दी लौट आया करो न।"

"अच्छा आप खड़ी क्यों हैं ? बैठ तो जाइए।"

"आज्ञा हो गई है तो बैठ भी जाऊँगी।" ऐसा कहकर उमा अपने पलंग पर बैठ गई।

"जब मैं बाहर चला जाता हूँ तो तुम क्या करती हो—जैसे पिछली बार मैं काशी चला गया था।"

"कुछ करती होऊँगी। इससे तुम्हे क्या लेना-देना ?"

"कोई मूर्ति-वूर्ति बनाकर रख ली है क्या हमारी ? उसको अर्पित करके खाना खाती हो ?"

उमा चिढ़ गई। अमरनाथ ने पूछा, "बताओ न ?"

"क्यों वताएँ ?"

"उत्सुकता है।"

"जब तुम बाहर रहते हो, तब बारह बजे के बाद खाना खाती हूँ ?"

"क्यों ?"

"यह सोचकर कि कहीं हो—चाहे होटल में या किसी के घर, बारह बजे तक तो खाना मिल ही जाता होगा।"

अमरनाथ इस उत्तर पर हँसने लगा। उसने फिर पूछा, "और यह हाथ में लेकर खाना क्यों खारही थीं ?"

"तुम्हें बुरा लगा ?"

"बहुत दुःख हुआ देखकर।"

"अच्छा !"

"इसका तात्पर्य है हम लोग जीना ही नहीं जानते।"

"आडम्बर के साथ खाने से अच्छे ढङ्ग से जीना सिद्ध होता है ?"

"अच्छा, एक कहानी सुनो। एक राजा था। एक दिन शिकार के पीछे वह रास्ता भूल गया। वह हिरन जिसके पीछे उसने अपना घोड़ा डाला था, आँखों से ओझल हो चुका था। राजा बहुत प्यासा था। शरीर उसका थककर चूर-चूर हो गया था। इतने में संध्या ढल गई।

दूर पर उसे एक दीपक जलता दिखाई दिया। उसकी लौ के सहारे वह वहाँ तक पहुँचा। वह एक किसान की झोंपड़ी थी। आवाज़ देने पर उसकी कन्या बाहर निकल कर आई। बालिका इतनी सुन्दर थी कि राजा देखते ही मुग्ध हो गया। लड़की ने, जैसा भी रूखा-सूखा उसके पास था, राजा को खाने को दिया और पानी पिलाया। इतने में उसका पिता बाहर से लौट कर आ गया।

किसान को राजा ने अपना परिचय दिया और कहा कि वह उसकी कन्या के साथ विवाह करना चाहता है। यदि किसान चाहे तो वह उसे अपनी रानी बना सकता है। किसान ने अपने भाग्य की सराहना करते हुए लड़की को राजा के साथ विदा कर दिया···"

"विदा कर दिया ?"

"हाँ। किसान की बेटी बहुत प्रसन्न थी। इस प्रकार कुछ दिन बीत गए। राजा शिकार का शौकीन था, अतः बीच-बीच में वह फिर शिकार को जाने लगा···"

"फिर तो वैसी कोई घटना नहीं घटी ?"

"नहीं। एक दिन वह रात को देर से लौटा। उसने आकर देखा उसकी रानी कहीं नहीं है। वह बहुत चिंतित हुआ।"

"कहाँ चली गयी थी वह ?"

"बताता हूँ ! महलों में ढूंढ़ते-ढूँढ़ते राजा रसोई-घर की ओर जा

निकला। वहाँ जो कुछ उसने देखा उस पर वह विश्वास नहीं कर सका। रानी हाथ पर रखकर खाना खा रही थी..."

उमा ने अमरनाथ की ओर दृष्टि उठाकर पूछा, "फिर क्या हुआ।"

"राजा को बहुत दुःख हुआ। उसने इस लड़की के लिए क्या नहीं किया था; लेकिन मनुष्य का स्वभाव नहीं बदलता, उसने यही सोचा। दूसरे दिन वह उस लड़की को लेकर शिकार पर गया और उसके पिता की झोंपड़ी पर छोड़ आया।"

"लेकिन आप न तो राजा हैं और न मैं भागी हुई किसान की लड़की जिसे आप उसकी झोंपड़ी पर छोड़ आयेंगे।" उमा ने हँसते हुए कहा।

"फिर भी इतनी सरलता अच्छी नहीं उमा। अपनी स्थिति के अनुकूल मनुष्य को रहना ही चाहिए।"

"लेकिन जहाँ मैं खाना खा रही थी, वहाँ मुझे कौन देख रहा था ?"

"कोई नहीं देख रहा था, इसलिए तो और भी स्वभाव के अनुशासन की आवश्यकता थी। यह बहुत छोटी-सी घटना है; लेकिन इसका प्रभाव बहुत व्यापक हो सकता है। मध्य वर्ग की गृहिणी को सबसे पहले अपने खाने-पीने, कपड़े-लत्ते की ओर ध्यान देना चाहिए। वह रुचि लेगी तो घर में चार चीज़ें रहेगी। घर मे चार चीज़ें रहेंगी, तो अतिथियों का ठीक से आदर-सत्कार होगा। बच्चे होंगे तो उनके रहन-सहन और जीवन का स्तर सुधरेगा। तुम बहुत सरलता से रहोगी तो अपना यह घर बस समझ लो गुरुकुल हो जायगा। और मैं अपने घर को गुरुकुल नहीं बनाना चाहता।"

"अच्छा, मैं आगे से ध्यान रखूँगी। मुझे पता नहीं था, यह बात तुम्हें इतनी बुरी लगेगी।"

"मध्य वर्ग की स्त्रियों का यह स्वभाव मुझे बहुत ख़राब लगता है उमा, कि वे जो कुछ करती हैं, केवल दूसरों को दिखाने के लिए। सामान्य रूप से घर उनका ऐसे ही अस्त-व्यस्त रहता है। कोई आने वाला होता है

तो कमरों की विशेष रूप से सफ़ाई होने लगती है। पलंग की चादरें, मेज़पोश, तकियों के गिलाफ़ और बच्चों के कपड़े बदल जाते हैं। कोई अचानक आ जाता है तो दौड़कर भीतर घुस जाती हैं और तुरन्त साड़ियाँ बदलने लगती हैं। खाना सामान्यतया साधारण बनता है। कुछ घरों में तो दिन में केवल दाल पकती है, सब्ज़ी कभी बनती ही नही; वह केवल रात को पक्के खाने के साथ वनती है। लेकिन कोई त्योहार हो, तो फिर सातों पकवान बन रहे हैं। पड़ोस, मंदिर, कीर्तन या रामललीला में जाना हो तो साड़ियाँ और गहने निकल रहे हैं। पतियों की प्रसन्नता के लिए विवाह के कुछ प्रारम्भिक दिनों को छोड़कर शायद ही वे कभी कुछ करती हों—सिवाय करवा-चौथ या अहोरी पर उनकी कल्याण-कामना के लिए व्रत रखने के। अपने लिए वे क्यों जीवित नहीं रहती, यह बात मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आती? इससे तो आधुनिकाओं की शृङ्गार-वृत्ति मुझे कहीं अच्छी लगती हैं। पश्चिम के अनुकरण के कारण उसमें एक प्रकार की अति अवश्य आ गई है; लेकिन वे जीवन मे रस लेती हैं, इसमे तो कोई सन्देह नहीं।"

"तो किसी आधुनिका से ही क्यों नहीं विवाह कर लेते?"

"उसे फिर कौन सँभालेगा?"

"तुम्हीं सँभालना।" इतना कहकर उमा हँसी। "यह जीवन की कोई महत्वपूर्ण उलझन नहीं है। ऐसी छोटी-मोटी बातें कभी भी ठीक की जा सकती हैं।"

अमरनाथ को उत्सुकता हुई। उसने पूछा, "महत्वपूर्ण समस्या फिर किसे कहते हैं?"

"मेरी बात का यह आशय नहीं था।"

"फिर भी पति-पत्नी को लेकर ऐसी क्या समस्याएँ उठ सकती हैं जिन्हे तुम महत्वपूर्ण समझती हो?"

"वैवाहिक जीवन को लेकर सबसे बड़ी समस्या घर में शान्ति की समस्या है—मन की शान्ति की समस्या। आर्थिक चिन्ताएँ तो जीवन में लगी ही रहती हैं। उनसे किसी का छुटकारा नहीं; लेकिन पुरुष है कि उसके

सामने कभी-कभी घोर मानसिक अन्तर्द्वन्द्व की समस्या खड़ी हो सकती है...''

''कैसा अन्तर्द्वन्द्व ?''

''जैसे कोई पुरुष अपनी प्रेमिका से भी सम्बन्ध न तोड़ सकता हो और अपनी पत्नी को भी न छोड़ सकता हो।''

अमरनाथ सहसा चौंका। तो क्या उमा उसके ऊपर किसी प्रकार का सन्देह करती है ? विवाह से पूर्व की बात दूसरी है; लेकिन विवाह के उपरान्त वह कहीं आकर्षित हुआ हो; ऐसा उसे स्मरण नहीं। फिर भी उमा के मन की बात जाननी चाहिए। उसने पूछा, ''अच्छा उमा, प्रेम के कारण यदि कोई पुरुष कहीं आकर्षित हो जाय, तो क्या बुरा है ?''

''प्रेम के कारण तो पुरुष आकर्षित होते नहीं, होते हैं शरीर के कारण। प्रेम का तो नाम लेते हैं। आख़िर कोई भोंडी कुरूपा के प्रति आकर्षित क्यों नहीं होता ? इससे लगता यही है कि यह सारी दौड़धूप शरीर के लिए है।''

''लेकिन मैं तो प्रेम में शरीर को मानता ही नहीं।''

''समस्या तुम्हें लेकर नहीं है, उन असंख्य लोगों को लेकर है जो वैसा मानते हैं। तुम जैसे कितने लोग हैं ? हज़ार में एक होगा ऐसा व्यक्ति। और तुम्हारा भी अभी क्या पता !''

''अच्छा मान लो, आकर्षण शरीर के कारण ही हो, तब क्या हानि है ?''

''स्पष्ट है कि ऐसे व्यक्ति का अपनी पत्नी के प्रति एक दिन प्रेम कम हो जायगा। और तब वह उसकी कुछ न कुछ उपेक्षा करेगा। पति से उपेक्षित रहने पर घर में उसका आदर कम होगा। घर में पत्नी का आदर तो पति के कारण ही होता है न ! जब किसी स्त्री का पति उसका आदर नहीं करता, तो नौकर-चाकर तक इस बात को समझ जाते हैं और वे भी अनादर-सा करने लगते हैं। तो पहली हानि तो यही है कि गृहिणी की अपने घर में ही उपेक्षा होने लगती है जो उसकी मृत्यु के समान है। प्रत्येक

गृहिणी घर में अपना प्रभुत्व चाहती है—स्वार्थ की बात नहीं है यह, यह उसका सहज अधिकार है। दूसरी हानि यह कि विवाह के द्वारा पति और पत्नी में जो एकात्म-भाव स्थापित हुआ था उसमें ठोकर लगती है। वह धीरे-धीरे सदैव को नष्ट हो जाता है। वे जो दो से एक हुये थे, फिर एक में दो हो जाते हैं और इस प्रकार विवाह का मूल उद्देश्य ही विफल हो जाता है।"

"ठीक है।" ऐसा कहते-कहते अमरनाथ ऊँघने लगा। उमा उसे रज़ाई उढ़ाकर अपने पलंग पर चली गयी। धीरे-धीरे उसकी भी पलकें मुँद गयीं।

१५

अमरनाथ के सम्बन्ध में संतोष का पहला अनुभव बहुत अच्छा नहीं था। उसने सद्भाव से उसके अस्तव्यस्त जीवन में व्यवस्था लाने का प्रयत्न किया था। उसका बदला मिला यह कि अमरनाथ ने उसे बेवकूफ़ कहा। यह कैसा शिक्षित व्यक्ति है—वह सोचती ही रह गयी। अपने को उसने बहुत अपमानित अनुभव किया और निश्चय किया कि अब वह उसके सामने पड़ेगी ही नहीं। अपरिचित व्यक्तियों से व्यवहार करने का क्या यही ढङ्ग है? क्रोध शान्त हो जाने पर उसने फिर सोचा—जो काग़ज़ के टुकड़े मैंने झाड़ू से बुहारकर फेंक दिए थे, हो सकता है उनमें मूल्यवान् रचनाओं के अंश हों। लेकिन इसके लिए अशिष्टता से व्यवहार करने की क्या आवश्यकता थी? यही बात दूसरे ढङ्ग से भी तो समझायी जा सकती थी। ऊँह, एकदम लाट साहब की तरह व्यवहार करते हैं, जैसे मैं उनकी कोई झाड़ू देने वाली कहारिन होऊँ। लेकिन आप वहाँ झाड़ू देने और एक अपरिचित व्यक्ति की पुस्तकें संभालने गई क्यों थीं—उसके मन ने प्रश्न किया। और 'आलोक' की गोष्ठी में आशा के हाथ आपने चाय क्यों भिजवायी थी?

और अमरनाथ की लायी हुई दवा आपने फेंक क्यों दी थी ? क्या विरक्ति से ? जी, नहीं । वही काम आप अब फिर कर रही हैं । उसे अपने द्वार से लौटा दिया । इसका प्रभाव आदमी के ऊपर क्या पड़ता है, आप जानतीं हैं ? और यदि आप उससे सचमुच नहीं मिलना चाहतीं, तो आप उसके घर क्यों जाती हैं ? उमा से मिलने ? जी, नहीं । आप केवल अमरनाथ से मिलने गई थीं । उमा आपकी कौन लगती है ? और जब वह आपको रास्ते में मिल गया, तो क्या आपने उसके साथ ठीक-से व्यवहार किया ? अगर वह आधे रास्ते से लौट जाता, तो आपको दुःख होता या नहीं ?

किसी ने किवाड़ों पर थाप दी । संतोष झुँझलाहट में उठी । उँह, कौन है ! देखा तो अमरनाथ सामने खड़ा था । इससे पहले कि संतोष कुछ कहे, अमरनाथ भीतर आ गया । आशा एक कोने में बैठी कुछ पढ़ रही थी । अमरनाथ एक कुर्सी खींचकर बैठ गया । बोला, "चाय बनाइए ।" संतोष ने एक दृष्टि से अमरनाथ को देखा और चाय बनाने चली गई । अमरनाथ आशा से बातें करने लगा ।

"तुम्हारा क्या नाम है ?"

"उस दिन बताया तो था—आशा ।"

"अरे भाई, भूल गए । किस क्लास में पढ़ती हो ?"

"सेविंथ में ।"

"किस स्कूल में पढ़ती हो ?"

"खत्री हाई-स्कूल में ।"

"तुम्हारी अध्यापिका का क्या नाम है ?"

"हमारी कई अध्यापिकाएँ हैं । किसका नाम बताएँ ।"

"वही जो मोटी-सी हैं, एक आँख वाली ।"

"ऐसी तो कोई अध्यापिका नहीं ।" आशा हँसने लगी ।

"पढ़ने में तुम्हारा मन लगता है ?"

"बहुत; लेकिन मा कहती है वह अब आगे नहीं पढ़ायेंगी ।"

"क्यों कहती है मा ?"

"कहती है पैसा नहीं है, कहाँ से पढ़ाऊँ ?"

संतोष के कान में सारी बातें पड़ रही थी। वह रसोई घर में से ही बोली, "आशा।" आशय था जो बात तुम कर रही हो, वह ठीक नहीं है। आशा ने अपनी भूल को समझा। वह चुप हो गई।

"तुम्हारी मा झूठ बोलती है। उसके पास बहुत पैसा है।"

"नहीं मेरी मा झूठ नहीं बोल सकती।" आशा ने कहा।

संतोष चाय ले आई। आशा से उसने कहा, "जरा सरस्वती बहिन जी के यहाँ यह तो पूछ आ कि वे अपनी सिलाई की मशीन थोड़ी देर को दे देंगी और देख अगर वे यहाँ भिजवाने के लिए राजी न हों तो कहना मा इतवार को आकर वहीं कुछ सी ले जायगी। जल्दी लौटना। ऐसा न हो कि वहीं खेलती रह जाय और बुलाने के लिए मुझे आना पड़े।"

पढ़ते-पढ़ते आशा का जी उकता गया था। उसे यह अवसर मिला तो नाचते-कूदते भाग गई। संतोष ने भीतर से किवाड़ें बन्द कर लीं।

"बच्चों से इस तरह की बातें करते हैं ?"

"और नहीं तो जैसी आप करती हैं, वैसी करते हैं ?"

"मैंने उससे यह तो नहीं कहा कि कल से ही उसका पढ़ना बन्द कर दूँगी; लेकिन हाई-स्कूल से आगे पढ़ाने की मेरी शक्ति नहीं है। मुझे मिलता ही क्या है। और फिर जिस ढङ्ग से यह बड़ी हो रही है, उससे मुझे चिंता होने लगी है। इसके विवाह के लिए रुपया चाहिए, वह कहाँ से आयेगा ?"

अमरनाथ ने पिता का प्रसंग जान-बूझकर नहीं छेड़ा। हो सकता है संतोष के मन को ठेस लगे।

"आपकी कॉलेज की शिक्षा कहाँ तक हुई है ?"

"क्यों ?"

"वैसे ही पूछ रहा हूँ।"

"मैं तो इंटर सी० टी० हूँ।"

पहले तो आप बी० ए० कीजिए। कल मैं आपके कोर्स की पुस्तकें दे

जाऊँगा और आशा की शिक्षा जिस समय भारी मालूम पड़े, मुझे बताइएगा। मैं उसे पढ़ाऊँगा।"

सन्तोष उसके मुँह की ओर देखने लगी। बोली, "अगर मैं पूछूँ कि यह सब कुछ आप क्यों करना चाहते हैं तो?"

अमरनाथ ने व्यंग्य करते हुए कहा, "इसलिए कि आप बहुत सुन्दर हैं और मैं आपके प्यार में पागल हूँ और आपके संघर्ष मे सहायता करके आप का मन जीतना चाहता हूँ।"

सन्तोष ने सिर झुकाकर कहा, "ऐसा सन्देह तो आपके चरित्र पर मैंने कभी नहीं किया और न मैंने कभी अपने को इतना सुन्दर ही समझा कि कोई मेरे प्रति आकर्षित हो।"

"अब मैं जाऊँगा।" इतना कहकर अमरनाथ उठ बैठा। सन्तोष आशा को बुलाने सरस्वती के यहाँ चली गई। जाते-जाते मुड़कर उसने अमरनाथ पर एक दृष्टि डाली।

१६

सत्ता सदा से पुरुषों के हाथ में रही है और स्त्री को वह अपनी सम्पत्ति समझता रहा है; अतः उसके मन में जैसे आया है, वैसे उसने उसके साथ व्यवहार किया है। इस व्यवहार से नारी जाति के प्रति कितना अन्याय हुआ है इसका लेखा-जोखा किसी के पास नहीं। इधर अमरनाथ ने कई स्त्रियों के सम्बन्ध में सुना था कि उन्होंने अपने पतियों को छोड़ दिया। इससे उसे न जाने क्यों एक प्रकार की प्रसन्नता हुई। नारी अब अपने अधिकारों के प्रति जाग्रत हो रही है। उसके मन में अन्याय का विरोध करने की भावना जग रही है, यह देखकर एक प्रकार के संतोष का अनुभव उसे हुआ। एक घटना के मूल में यह रहस्य निहित था कि उस स्त्री का पति 'पुरुष' ही नहीं था। दूसरे स्थान पर एक लड़की विवाह के उपरान्त अपनी

ससुराल इसलिए नहीं गयी कि उसका पति विवाह से पूर्व ही क्षय रोग से ग्रसित था और यह बात उस ओर से जानबूझकर छिपायी गयी थी। एक तीसरी स्त्री को जब इस बात का पता चला कि उसका पति पहले से ही विवाहित है तो उसने अपने पति-परमेश्वर का परित्याग कर दिया। सबसे ज़ोरदार वह घटना थी जिसमें एक नवविवाहिता ने सोहाग-रात के अवसर पर ही अपने पति से सम्बन्ध-विच्छेद इस बात पर कर लिया कि उसने उसे असुन्दर कह दिया था। सन्तोष की बात भी कुछ इन्हीं घटनाओं से मिलती-जुलती थी।

सुनकर अमरनाथ को बहुत दुःख हुआ। सन्तोष के पति रेलवे में गार्ड थे। वे प्रायः तीसरे दिन रात को लौटकर आया करते थे। बहुत जल्दी उसे पता चल गया कि वे शराब पीते हैं। सन्तोष ने विरोध किया। गार्ड साहब ने समझाया कि जाड़ों में बिना थोड़ी-सी लिए ट्रेन ले जाना सम्भव नहीं है। सन्तोष चुप हो गयी। बाद में किसी ने उसे बताया कि जिस जंकशन तक वे ट्रेन ले जाते हैं वहाँ उन्होंने एक पहाड़िन रख छोड़ी है। एक दिन गार्ड साहब अपनी ड्यूटी से लौटे। जाड़े के दिन थे। उन्होंने घर आकर थोड़ी सी पी और सन्तोष को बुलाया। सन्तोष को उस दिन ज्वर चढ़ आया था; अतः वह आशा को लेकर दूसरे कमरे में जाकर सो गई। गार्ड साहब ने किवाड़ खटखटाने प्रारम्भ किए। यह सोचकर कि रात में इस शोर को सुनकर पड़ोसी लोग क्या कहेंगे, वह क्रोध में भर कर उनके कमरे में आई।

"क्या है ?" उसने उसी क्रोध में पूछा।

"मेरा यह पलंग आपका इन्तज़ार कर रहा है।" गार्ड साहब ने एक कुत्सित-सा संकेत करते हुए कहा।

"उस पहाडिन ने कल बात नहीं पूछी क्या ?" सन्तोष आवेश में आकर बोली।

"उसने कुछ भी किया हो; लेकिन तू हरामख़ोर कैसे मना कर सकती है ?"

"क्यों, मैं आपकी ख़रीदी हुई लौंड़ी हूँ क्या ?"

इस पर गार्ड साहब ने सन्तोष को एक बहुत ही भद्दी सी गाली दी और कहा, "ऐसी ही मरोर है तो कमाकर क्यों नहीं खाती। जब तक मैं रोटी-कपड़ा देता हूँ, तब तक मैं जो चाहूँगा, वह होगा।"

सन्तोष चुप हो गई। 'मैं रोटी-कपड़ा देता हूँ' यह बात जैसे उसे खा गई। उस समय तो उस ज्वर की अवस्था में ही उसने आत्म-समर्पण किया; लेकिन दूसरे दिन जब गार्ड साहब घर पर नहीं थे, वह आशा को लेकर अपने पिता के पास लौट गई। पिता ने अपने दामाद को साफ़ लिखा कि अब मेरी लड़की तुम्हारे घर लौटकर कभी नहीं आवेगी।

आशा उस समय दो वर्ष की थी। सन्तोष ने इंटर किया और फिर सी० टी० और तब वह आगरे के एक स्कूल में काम करने लगी।

अमरनाथ ने जब उमा से सन्तोष के जीवन की यह कहानी सुनी तो उसे बहुत दुःख हुआ। और एक दिन वह भी आया जब सन्तोष के अपमान की बात उसने सन्तोष के मुख से ही सुनी। लेकिन उमा और अमरनाथ से बात करते समय भाषा में बहुत अन्तर था और यह स्वाभाविक भी था। नारी जैसा अपना हृदय नारी के सामने खोल सकती है वैसा पुरुष के सामने शायद ही कभी खोल सके। लेकिन सन्तोष अब अमरनाथ पर थोड़ा विश्वास करने लगी थी और साथ ही उससे थोड़ा खुलने भी लगी थी; अतः आज जब अमरनाथ उसके घर पहुँचा तो उसने उसके हाथ में एक लिफ़ाफ़ा दिया।

"इसे पढ़िए।" सन्तोष ने कहा।

अमरनाथ ने पत्र के अन्त को पहले देखा। उसने पूछा, "ये मिश्रीलाल कौन हैं ?"

"गार्ड साहब।" सन्तोष ने कुछ संकुचित होते हुए कहा।

"बधाई है।" अमरनाथ के स्वर में व्यंग्य न था।

"सात वर्ष में यह पहला पत्र आया है।"

"तुम्हीं बताओ इसमें क्या लिखा है ? सम्भव है उसमें कुछ ऐसा हो जो मुझे न पढना चाहिए ।"

"आप भी कैसी बात करते हैं ! अब भी उसमें कुछ ऐसा होगा ?"

अमरनाथ ने पत्र पढ़ा । मिश्रीलाल ने सुना था उनकी लड़की आशा बड़ी हो गई है और वह सातवीं कक्षा में पढ़ रही है । इस बात पर उन्होंने खेद प्रकट किया था कि सन्तोष अपने व्यर्थ के हठ के कारण नौकरी कर रही है । अन्त में उन्होंने एक प्रस्ताव रखा था कि आशा की पढाई आदि के लिए वे पचास रुपये महीने भेजने को तैयार हैं । मिश्रीलाल जी चाहते हैं कि आशा का पालन-पोषण ठीक ढङ्ग से हो—उनके कुल की मर्यादा के अनुरूप ।

"इस पत्र का क्या उत्तर होना चाहिए ।" सन्तोष ने अमरनाथ से पूछा ।

अमरनाथ ने पत्र के टुकड़े-टुकड़े करते हुए कहा, "यह ।"

काग़ज़ के टुकड़े उसने हवा मे बिखेर दिए ।

सन्तोष ने अपने को संयत करते हुए पूछा, "ऐसा आपने क्यों किया ?"

"यह पत्र नहीं है, मीठा विष है । इससे आपको दूर रहना चाहिए, इस लिए । आपने मेरी सलाह माँगी थी; अतः मैंने आपको सावधान कर दिया । जीवन में न जाने ऐसे कितने प्रलोभन आते हैं । उनसे हमें बचना चाहिए ।"

"अगर आप मुझे ग़लत न समझें तो मै थोड़ी बात करना चाहती हूँ ।" सन्तोष ने जल्दी से पूछा ।

"जो सन्देह आपके मन में उठा है, उसे निश्चित रूप से मिटा लीजिए ।" अमरनाथ ने एक-एक शब्द को तोलते हुए उत्तर दिया ।

"झगड़ा मेरा है उनसे, इस बच्ची ने तो कुछ भी नहीं बिगाड़ा है । यह जितनी मेरी सन्तान हैं, उतनी ही उनकी । बच्चों के भरण-पोषण का उत्तरदायित्व पिता पर ही रहता है । ऐसी दशा में यदि वे इसके ऊपर कुछ

ख़र्च करना चाहते हैं तो इससे यह तो कोई नहीं कह सकता कि वे मेरे ऊपर एहसान कर रहे हैं। सच पूछिए वे अपने कर्तव्य का पालन कर रहे हैं।"

"लेकिन सात साल से वे कहाँ थे ?" अमरनाथ ने पूछा, "कहाँ थे वे जब आप घर से निकलने के लिए विवश हुईं थीं ? कहाँ थे वे जब आप शिक्षा पा रही थीं और दो साल की बच्ची को रक्त देकर बड़ा कर रही थीं ? अब जब आप इस योग्य हो गई हैं कि अपने पैरों पर खड़ी हो सकें, तब उन्हें अपनी बच्ची की याद आयी है। यह ममता अब तक कहाँ मर गई थी ?"

"हो सकता है कि उन्होंने देर से अपनी भूल को पहचाना हो; लेकिन पहचाना तो..."

"इस पचास रुपये मासिक में सन्तोष, अपनी बच्ची के लिए ममता ही नहीं, तुम्हें भी ख़रीदने की क़ीमत छिपी हुई है। यदि गृहस्थ-जीवन का सुख भोगने की दुर्बलता अब भी तुम्हारे मन में शेष है तो तुम लौटकर जा सकती हो, क्योंकि उस कमी को तो वही व्यक्ति पूरा कर सकता है।"

"आप मुझे इतना दुर्बल समझते हैं ?"

"नही हो, तो फिर यह दुविधा किस लिए है ? जिस व्यक्ति को सदा के लिए छोड़ आई हो, उसकी ओर निगाह उठाने की अब क्या आवश्यकता है ?"

"मैं सोचती थी उनका वह पैसा जो या तो शराब में जाता है या वह पहाड़िन खा जाती है, अगर उनकी बच्ची के काम आ जाता..."

"तो उस पैसे को तुम अभी तक अपना समझती हो ? ऐसे ही दुर्बल ढङ्ग के तर्क से मनुष्य के मन की दुर्बलता उसे तोड़ देती है। यह मैं नहीं करने दूँगा।"

"लेकिन पैसा अगर मेरे मन को दुर्बल बना सकता है, तो आप भी तो वही काम कर रहे हैं..."

अमरनाथ को गहरा आघात लगा। उसने सँभलकर कहा, "सन्तोष

कड़वी बात कहकर तुम मुझे विचलित कर सकती हो, यह असम्भव है। लेकिन एक बात तुम्हारे सम्बन्ध में बिल्कुल सच है…"

"क्या ?" सन्तोष ने हँसकर पूछा।

"कि तुम बेवकूफ़ हो…"

अमरनाथ उठ बैठा। उसने आँगन पार किया। सन्तोष उसे देखती रही। फिर उसने वाणी में मधुरता लाते हुए कहा, "रुकिए।"

अमरनाथ रुक गया।

"लौटिए।"

अमरनाथ वहीं खड़ा रहा। सन्तोष उसका हाथ पकड़ कर भीतर ले आई।

"हमारी ज़रा सी बात पर नाराज़ हो गए ?" सन्तोष ने एक गहरी साँस लेते हुए कहा। "जो आप कहते हैं, वह मैं समझती हूँ; लेकिन फिर भी मेरे अपने संस्कार हैं। इनके ऊपर उठने का मैं प्रयत्न कर रही हूँ। इन पर विजय प्राप्त कर पाऊँगी या नहीं, मैं नहीं जानती; लेकिन यदि आप इस तरह से रूठकर जायँगे, तब तो मैं कुछ भी नहीं कर पाऊँगी।"

अमरनाथ ने बहुत कोमल स्वर में कहा—बेवकूफ़।

सन्तोष हँसने लगी। जब वह हँसी समाप्त हो गयी तो बोली, "मैं आपका शहर छोड़ रही हूँ।"

"शहर ने क्या बिगाड़ा है ?"

"मेरी नौकरी बनारस में ठीक हो गयी है। इस महीने के अन्त तक मुझे चला जाना है।"

"तो जाने से पहले एकाध बार मिलोगी न !"

"हाँ।"

१७

काशीनाथ व्यापारी होते हुए भी स्वभाव से बहुत उदार और खुली प्रकृति के थे। सभी से हँसते-बोलते और मज़ाक करते थे। मज़ाक करने

में वे अपने लड़कों से भी नहीं चूकते थे। जितनी देर वे घर में रहते, विनोद की एक निर्मल धारा-सी बहती रहती। लड़के उनके कई थे; लेकिन लड़की यह मीरा ही थी। इसी से वे इसे बहुत प्यार करते थे। उसके ऊपर कोई रोक-टोक न थी। मा को उसकी समझदारी पर विश्वास था; इसलिए वह घर में एक प्रकार की मनमानी-सी करती थी। मीरा ने इस स्वतन्त्रता का कभी भी दुरुपयोग नहीं किया। उसके सभी भाई और भाभियाँ उसे प्यार करती थीं। भाभियाँ उसके विवाह को लेकर कभी-कभी उससे मीठा मज़ाक भी कर बैठती थीं। मीरा आकृति से सौम्य, स्वभाव से सरल और आत्मा से निश्छल थी। घर में कभी किसी ने उस पर किसी प्रकार का किसी भी रूप में सन्देह नहीं किया था। सन्देह करने की कोई बात ही नहीं थी।

रामकृष्ण को लेकर जब मीरा अमरनाथ से कॉलेज में मिलने गयी थी, तब भी सबसे कहकर गई थी। अमरनाथ के यहाँ जब उसका आना-जाना कुछ अधिक होने लगा, तो छोटी भाभी ने उससे कुछ मज़ाक किया। लेकिन जब मीरा की रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगीं तो मज़ाक कुछ कम होने लगा। और एक दिन मीरा, 'आलोक' की सदस्या हो गई। भाभी को पता चला तो उसने फिर छेड़छाड़ की। मीरा ने हँसकर टाल दिया। लेकिन भाभियों का तो स्वभाव ही ननदों से मज़ाक करने और उन्हें तंग करने का होता है।

एक दिन शान्ति ने कहा, "हमारी बीबी जी की अब शादी हो जानी चाहिए···"

"क्यों ?···क्यों ? छोटी भाभी।" मीरा ने सहज भाव से पूछा।

"अब हमारी बीबी जो कुछ भूली-भूली सी रहने लगी है···" भाभी ने उत्तर दिया।

"बात यह है भाभी कि जो लोग लिखने का काम करते है, वे कुछ इसी तरह के हो जाते हैं।"

"एक दिन हमें भी दिखाओ न उनको।"

"किसको भाभी ?"

"अरे, उन्हीं प्रोफ़ेसर साहब को।"

"छि: भाभी, यह क्या बात हैं। हम मार बैठेंगे।"

"मार बैठने से मन का दर्द तो नहीं मिट जायगा बीबी जी..."

"ओह भाभी, यह बात हमें अच्छी नहीं लगती। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि हमारे प्रोफ़ेसर साहब कितने सज्जन व्यक्ति हैं। उन्हे इस बात का पता चल गया कि तुम उन्हें लेकर हमसे ऐसा मज़ाक करती हो तो वे फिर हमें अपने पास आने भी नहीं देंगे।"

"तो तुम्हें इससे दुःख होगा ?"

"झूठ क्यों बोलें, होगा तो।"

"तो बस हो गई बात पक्की।"

मीरा भाभी को मारने दौड़ी। भाभी ने हँसकर उसके दोनों हाथ पकड़ लिए। बोली, "मारने से बात झूठी थोड़ो-ही पड़ जायगी।"

"हाय भाभी, उनका विवाह हो चुका है। तुममें लज्जा-शर्म कुछ नहीं।"

"प्यार क्या विवाहित-अविवाहित को देखता है ?"

"अच्छा, क्या तुम अब किसी को प्यार कर सकती हो ?"

"करूँगी ही और जब करूँगी तो तुम्हें बताकर करूँगी।"

"हे राम ! तुम ऐसी बात सोच सकती हो। अच्छा, बताओ किसको करोगी ?"

"तुम्हे बताने से कुछ फ़ायदा नहीं। बेकार ईर्ष्या होगी।"

मीरा को उत्सुकता हुई। बोली, "भाभी, क्या यह बात सच हैं ?"

"एकदम सच है।"

"भैया को पता चल गया तो ?"

"तो, ज़्यादा से ज़्यादा वे घर से ही तो निकाल देंगे।"

"फिर तुम क्या करोगी ?"

"उनके साथ चली जाऊँगी।"

"तुम्हें मालूम है वह कौन है ?"

"बिल्कुल मालूम है।"

"कौन है ?'

"तुम्हारा दूल्हा है।"

"चल चोट्टी, मैं विवाह ही नहीं करूँगी। लेकिन भाभी, तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, तुम प्रोफ़ेसर साहब को लेकर हमसे मज़ाक न किया करो।"

"अच्छा, जब तुम उससे मिलने जाती हो तो कपड़ों-लत्तों का विशेष ध्यान क्यों रखती हो ?"

"हाय भाभी, यह कैसा लांछन है। कॉलेज या और कहीं जाते समय तो मैं रेशमी या रंगीन साड़ी भी पहन लेती हूँ, लेकिन वहाँ जाना होता है तो एकदम सादे सफ़ेद कपड़े पहनती हूँ। चूड़ियाँ तो मैं वैसे ही नहीं पहनती। हाथों में कभी-कभी कंगन डाल लेती हूँ। सो वहाँ जाते समय उन्हें भी उतार जाती हूँ। कपड़ों में कभी इत्र लगाकर नहीं जाती और इस पर तुम कहती हो कि···"

"इस सतर्कता से ही तो तुम्हारे मन की चोरी पकड़ी गई है।"

"अच्छा ठीक है। ऐसा ही होगा। लेकिन इससे एक बात तो स्पष्ट है।···"

"वह भी मैं सुनूं।"

"विवाह से पहले तुमने ज़रूर कहीं प्यार किया है।"

"प्यार तो किया था बीबी जी, लेकिन सफल नहीं हुआ।" शान्ति ने एक गहरी साँस लेते हुए कहा।

"फिर क्या हुआ भाभी ?" मीरा ने पास सिमटते हुआ पूछा।

"फिर तुम्हारे निकम्मे भाई से मेरी मेरी शादी हो गयी।" इतना कहकर शान्ति खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसके हँसने में सब डूब गया। मीरा को इस बात का अनुमान लगाना कठिन हो गया कि विवाह से पूर्व शान्ति के प्रेम वाली बात सच थी या झूठ।

मीरा के घर में अमरनाथ का मिलना सबके सामने ही होता था। यही

वह चाहता भी था। पिछले दो-एक बार से उसने देखा कि मीरा प्रायः अकेली रह जाती है और विना कुछ कहे खोयी-खोयी-सी बैठी रहती है। इससे अमरनाथ को थोड़ी उलझन-सी हुई। फिर भी बाहर के जिस कमरे में वे बैठते थे वहाँ कोई न कोई आता ही रहता था। अतः एकांत की स्थिति अधिक देर तक नहीं रह पाती थी। अमरनाथ इस सम्बन्ध को न तो तोड़ना चाहता था और न आगे बढ़ाना। फिर भी वह स्पष्ट रूप से देख रहा था कि मीरा के मन में एक प्रकार की उलझन खड़ी हो गयी है।

इस बार जब अमरनाथ आया तो मीरा के साथ शान्ति भी थी। मीरा ने परिचय कराते हुए कहा: ये मेरी छोटी भाभी शान्ति हैं। अमरनाथ ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। शान्ति दोनों को अपने कमरे में ऊपर ले गयी और वहाँ वह उन दोनों को बिठाकर स्वयं चाय लेने चली गई। जाने से पहले अमरनाथ के हाथ मे तीन-चार पेन्टिंग्स देकर उसने कहा: लीजिए, तब तक हमारी बीबी जी के बनाये चित्र देखिए।

चित्रों की ओर एक दृष्टि डालकर अमरनाथ ने पूछा, "ये चित्र तुमने बनाये हैं?"

"हाँ।"

"तुमने मुझे कभी बताया नही कि तुम पेंट भी करती हो?"

"कभी अवसर ही नहीं आया।"

अमरनाथ चित्रों को देखने लगा। एक चित्र में केवल दो चरण अंकित थे। चरण पुरुष के थे। चरण-प्रान्त में कुछ कलियाँ, कुछ खिले फूल बिखरे पड़े थे। नीचे लिखा था—वे चरण। दूसरे चित्र में पवन के वेग से एक वृक्ष की कुछ कोमल शाखाएँ हिलती-सी, कुछ टूटी हुई प्रदर्शित की गई थीं। शीर्षक था—आँधी। तीसरे चित्र में कमल के एक बड़े पत्ते से जल की कुछ बूँदें ढलती दिखाई गई थीं। संकेत था—आँसुओं की ओर। चौथे चित्र में काली पृष्ठभूमि में एक टेढ़ी-मेढ़ी रेखा अंकित थी। उसका शीर्षक दिया था—सूनी राह।

अमरनाथ ने हँसते हुए पूछा, "ये चरण किसके हैं?"

"पता नहीं।"

"और आँसू ?"

"यह भी पता नहीं।"

"तुम क्या मीरा बहुत परेशान हो ?"

"पता नहीं।"

इतने में शान्ति चाय ले आयी। चाय रखकर जब वह जाने लगी तो अमरनाथ ने साग्रह कहा, "बैठिए न !"

इसी के साथ मीरा ने कहा, "बैठो न भाभी।"

शान्ति ने मृदु मुस्कान के साथ कहा, "वे आ गए हैं।"

"तो हम लोग कहीं दूसरी जगह बैठ जायेंगे।"

"नहीं नहीं, वे यहाँ नही आयेंगे। आप लोग यहीं बैठिए। हो सकता है थोड़ी देर में लौट जायँ।"

"तब ऐसा क्या बेचैनी है ?" मीरा ने चुटकी लेते हुए कहा।

"अभी नहीं समझ पाओगी···" इतना कहकर शान्ति उसी मृदु मुस्कान के साथ नीचे उतर गयी।

शान्ति के जाते ही मीरा ने फिर गर्दन झुका ली। अमरनाथ की बात का वह संक्षिप्त-सा उत्तर दे देती। फिर चुप। यह स्थिति अमरनाथ को कुछ असह्य-सी हो उठी। उसने गम्भीर स्वर में पूछा, "तुमने मुझे इसीलिए बुलाया था ?"

"मैं समझी नहीं।"

"कोई हम दोनों को इस तरह गुमसुम बैठे देखे तो क्या कहेगा ?"

"कुछ नहीं कहेगा।"

"अच्छा, मेरी ओर देखो।"

मीरा ने गर्दन नहीं उठाई। अमरनाथ ने स्वर को और गम्भीर करते हुए कहा, "मीरा !"

"हाँ।"

"यह ठीक नहीं है।"

"क्या ठीक नहीं है ?"

"यही जो हमारे तुम्हारे बीच आ गया है।"

"क्या आ गया है ?"

"तुम्हें पता है मैं विवाहित हूँ ?"

"उससे क्या अन्तर पड़ता है ?"

"और तुम्हें यह भी पता है कि मैं सत्ताईस का होने को आया। मैंने विद्यार्थी जीवन व्यतीत किया है। यह चेतना व्यक्ति में सोलह-सत्रह वर्ष से ही प्रारम्भ हो जाती है। तुम यह आशा नहीं कर सकतीं कि मेरे जीवन में कभी कुछ हुआ ही नहीं। यह आशा नहीं कर सकतीं कि पिछले दस वर्ष से मैं इस प्रतीक्षा में बैठा होऊँगा कि कभी आगरे जाना हुआ तो मीरा नाम की एक लड़की वहाँ मिलेगी और उससे…"

"यह तो मैं आशा नहीं करती और न मैंने यह कहा ही।"

"फिर ?"

"मेरा कोई अधिकार नहीं है ?"

"है।"

मीरा ने उत्साहित होते हुए कहा, "क्या ?"

"पीछे लौटने का।"

मीरा उदास हो गयी। बोली, "यह अब सम्भव नहीं है।"

"सब सम्भव है।"

"नहीं, मैं विवश हूँ।"

"तुम सरल हो और जीवन का तुम्हें कोई अनुभव नहीं है। इसीलिए एक हितैषी के नाते मैं तुम्हें समझाता हूँ कि इस रास्ते में तुम्हारे लिए दुःख के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।"

"मैं न यह सुनना चाहती हूँ और न समझना।"

"तब इसका फ़ैसला कैसे होगा ?"

"फ़ैसले की कोई बात ही नहीं उठती।"

शान्ति ने लाकर पान की तश्तरी रख दी। पान खाकर अमरनाथ ने

विदा ली। शान्ति उसे विदा करने द्वार तक आई। मीरा वहीं बैठी रही। लौटकर शान्ति ने देखा मीरा घुटनों में सिर टेके बैठी है। वह उसे वैसे ही छोड़कर लौट गई।

१८

गंगाधर पन्त कलकत्ते के एक मैडिकल हॉल में दवा बेचने का काम करते थे। दवाख़ाने के स्वामी एक समृद्ध बंगाली महाशय थे। उनके यहाँ रोगियों को देखने के लिए एक डाक्टर सुबह बैठता था, दूसरा रात को। रात को आनेवाला डाक्टर एंग्लो-इंडियन था। दोनों डाक्टर रोगियों से कोई फ़ीस नहीं लेते थे। उन्हें मि० मलिक की ओर से वेतन मिलता था। डाक्टर लोग जो दवा लिख देते थे, रोगी स्वभावतः उसे मि० मलिक के मैडिकल हॉल से क्रय कर लेते थे। यों दोनों डाक्टर घर पर रोगियों को देखते थे और वहाँ वे ध्यान भी अधिक देते थे। इनमें ऐंग्लो इंडियन डाक्टर की ख्याति कुछ अधिक थी। दिन में जितनी देर वह रोगियों को देखता, उसके बँगले में भीड़-सी लगी रहती।

गंगाधर पन्त इसी बँगले में एक ओर रहते थे। जब उन्होंने कुछ रुपया इकट्ठा कर लिया, तो एक दिन एक बंगाली लड़की से, जो अवस्था में उनसे कुछ ही कम थी, विवाह कर लिया।

सरोजिनी इसी बंगाली महिला से एंग्लो-इंडियन डाक्टर की लड़की थी। गंगाधर इस बात को जानते थे; लेकिन कुछ कर नहीं सकते थे। सरोजिनी की मा ने अपने पति के लिए इतना किया कि डाक्टर का बहुत-सा रुपया लेकर वह युक्तप्रांत के इस नगर में चली आयी। डाक्टर की वह विश्वास-पात्र हो गई थी और फ़ीस आदि के सब रुपये वह उसी को सौंप देता था। पहले उसकी इच्छा उसे ज़हर देने की थी; पर ज़हर वह उसे दे नहीं पायी। डाक्टर ने इन लोगों को खोजने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

इस बीच सरोजिनी की मा ने अपने पति को भी शराब पीने का चस्का डाल दिया था। बँगले पर गंगाधर डाक्टर के कम्पाउंडर का काम करते थे। यों डाक्टर के दो कम्पाउंडर और भी थे। आगरे आने पर उन्होंने एक छोटा सा मकान लिया, जिसमें नीचे के भाग में वे डाक्टरी करने लगे। धीरे-धीरे उनके रोगियों की संख्या बढ़ने लगी। उनके हाथ में कुछ ऐसा यश था कि पास-पड़ोस के लोग नगर के प्रसिद्ध डाक्टरों को छोड़कर उनके यहाँ आने लगे। पत्नी का रुपया उन्होंने बैंक में जमा कर दिया।

गंगाधर अब स्वतन्त्र थे और रुपया उनके हाथ में आने लगा था; अतः पत्नी की स्वतन्त्र प्रवृत्ति उन्हें अखरी। उनके कोई दूसरा बच्चा नहीं हुआ था और होने की कोई सम्भावना भी नहीं थी। ऐसी दशा में इस डर से कि कहीं उसकी पुरानी प्रवृत्ति फिर न उभर आवे, उन्होंने एक बार बीमार होने पर उसे ऐसी दवा दी कि धीरे-धीरे उसका जीवन-प्रदीप बुझ ही गया। पन्त जी निश्चिंत हो गये।

लेकिन सरोजिनी के लिए, उसके बचपन से ही, उनके मन में ऐसा मोह था कि उसकी हत्या वे नहीं कर सके। इसका कोई अपराध नहीं है, ऐसा उनका अन्तःकरण कहता था।

सरोजिनी की प्रारम्भिक शिक्षा कलकत्ते में ही हुई थी। वह डाक्टर को अपना पिता समझती थी और पिता को नौकर। गंगाधर उसके पिता हैं, यह ज्ञान उसे बहुत बाद में हुआ। आगरे आने पर गंगाधर ने उसकी शिक्षा में कोई कमी नहीं की। उसे किसी प्रकार का अभाव न खटके, इसके लिए वे बहुत परिश्रमपूर्वक कमाने लगे। लेकिन जो भूल उनसे हुई वह यह कि प्रारम्भ से ही उन्होंने उसके ऊपर कोई नियन्त्रण नहीं रखा। जब वह बी० ए० में पढ़ती थी, तभी उसके सहपाठी उससे मिलने घर पर आने लगे थे। इसमें वे किसी प्रकार की रोक-टोक नहीं करते थे। सरोजिनी किसी के प्रति आकर्षित नहीं थी, यह वे जानते थे। इससे वे निश्चिंत से हो गए। इधर सरोजिनी से भी यह बात छिपी न रही कि रात को उसके पिता शराब पीते हैं। उन्हें देर हो जाती तो सरोजिनी याद दिला देती : पापा, आज

आपने दवा नहीं पी। गंगाधर को सरोजिनी के मुँह से पापा सुनना बहुत ही अच्छा लगता था। इतना होने पर भी उन्होंने अपनी बेटी के सामने कभी शराब नहीं पी। ऊपर एक छोटा-सा कमरा था। वहीं बैठ कर वे शराब पीते थे। शराब पीने के लिए न वे कभी बाहर गये और न उन्होंने कभी कोई साथी ही ढूँढ़ा। ऐसा वे अपनी लड़की की इज्ज़त के लिए करते थे।

पहली प्रवृति जो सरोजिनी में उभरी वह सौंदर्य की चेतना थी। बचपन से ही उसे दर्पण देखने का चाव था। वह घण्टों बैठी दर्पण देखती रहती। इधर से निकली तो दर्पण, उधर से निकली तो दर्पण। उसे कभी-कभी लगता वह अपने रूप पर स्वयं मोहित है। गंगाधर सामने पड़ जाते तो वह कहती : पापा देखो, मेरे बाल कैसे सुनहली हैं, मेरी उँगलियाँ कैसी लम्बी हैं, मेरी बाहें कैसी चन्दन-सी हैं। पन्त जी कहते—हाँ बेटा। यह रूप का मोह इस सीमा तक बढ़ गया कि सरोजिनी को अपने अतिरिक्त कोई स्त्री सुन्दर ही न लगती। जो भी लड़की उसे सुन्दर दिखाई देती, उसी में वह कुछ न कुछ ऐब निकाल देती—यद्यपि इस बात को किसी से कहती नहीं थी। उसके चेहरे पर आँखें नहीं सुहातीं या नाक नहीं अच्छी लगती या आँखें तो बड़ी हैं, लेकिन ओंठ कुछ मोटे हैं, माथा कम चौड़ा है, तिल ठीक स्थान पर नहीं है।

जैसे-जैसे वह बड़ी हुई उसे अच्छे से अच्छे कपड़े पहनने का शौक हुआ—नये से नये डिजाइन के कपड़े। यह पहनना केवल पहनने के लिए होता था। इसके पीछे उपयोगिता की भावना बिल्कुल नहीं थी। पहनना सुन्दरता को निखारने के लिए होता। अच्छा पहनने पर उसकी इच्छा होती कि कोई उसकी प्रशंसा करे। लेकिन वह किसी से कुछ कहती नहीं थी। भीतर से वह सबसे यही आशा करती थी कि सम्पर्क में आने वाले उसकी सुरुचि की प्रशंसा करें। जिस दिन उसके किसी वस्त्र की कोई प्रशंसा नहीं करता था, उस दिन वह कुछ अनमनी-सी हो जाती थी।

रूप और सुरुचि ने जिस तीसरी प्रवृति को उसके हृदय में विकसित

क्रिया वह था—अहं। यह अहं इस सीमा तक बढ़ा हुआ था कि उसने उपेक्षा का रूप धारण कर लिया। मैं इस धरती पर चलने के लिए हूँ और सब मेरे चरणों के नीचे कुचले जाने के लिए, ऐसा वह सोचती थी। इसी अहं ने उसे कल्पनाशील बना दिया था। कभी-कभी वह सोचती···वह वायुयान से उतरी है। स्त्री-पुरुषों की मीलों लम्बी पंक्ति घण्टों से उसकी प्रतीक्षा कर रही है। वह उनके बीच से अप्रभावित होकर निकल जाती है; लेकिन लोग हैं कि उसके रूप को देख कर ठगे से खड़े रह गये हैं। चाँदनी रातों में उसे लगता जैसे वह धरती से सहसा उठ कर चन्द्रलोक मे पहुच गयी है और वहाँ की सुन्दरियों से मिलती है। जल्दी ही वहाँ से उसका लौटने को मन करता है। क्या इन्हीं सुन्दरियों की इतनी प्रशंसा है। इनसे तो मै कहीं अधिक सुन्दर हूँ। कभी वह समुद्र के किसी छोटे से द्वीप में पहुँच जाती और देखती कि वहाँ की स्त्रियों ने उसे घेर लिया है। पद्मिनी स्त्रियाँ कैसी होती है, यह जानने की उसकी बड़ी इच्छा थी। यदि ये ही पद्मिनियाँ हैं तो कुछ भी नहीं है। हेलन कैसी रही होगी ? ओह, होगी सुन्दर। पर संसार जितनी प्रशंसा करता है, उतनी सुन्दर तो भला क्या होगी ?

रूप की चेतना, शृङ्गार की भावना और अहं की प्रवृत्ति ने सरोजिनी के स्वभाव को ऐसा कम्प्लैक्स प्रदान किया जो अन्ततः उसके लिए घातक सिद्ध हुआ। उसकी महत्त्वाकांक्षा की कोई सीमा नहीं थी और साधन थे बहुत ही सीमित ! कॉलेज में कई लड़कियाँ उसके साथ पढ़ती थीं; लेकिन घनिष्ठता हुई केवल ग्रेस वैज़ली से। ग्रेस क्रिश्चियन थी। उसके पिता आगरे में सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस थे। ग्रेस का रंग काला था; लेकिन वह थी आकर्षक। सरोजिनी जब उसके साथ चलती तो वैषम्य से और भी सुन्दर और मोहक लगती। सहपाठियों ने उन्हें 'हंसिनी और कोयल' की संज्ञा दे रखी थी और वे लगती भी हंसिनी और कोयल-सी ही थीं। यह उपमा उन पर इसलिए और भी उपयुक्त बैठती थी कि ग्रेस का स्वर बहुत ही मधुर था। सरोजिनी कभी-कभी इस आकर्षण का विश्लेषण करती। वह

सोचती वह ग्रेस के मधुर स्वभाव पर मुग्ध है, उसके गाने पर मुग्ध है। उससे विदेशी नृत्य सीखने का भी उसे लोभ था। इन दिनों ग्रेस जो एकांत में बैठकर अश्लील चर्चा करती थी, वह उसे बहुत अच्छी लगती थी! लेकिन घनिष्ठता का जो प्रच्छन्न मूल कारण था, उसे सरोजिनी कभी समझ ही नहीं पायी। वह थी ग्रेस की कार जिसमें वह आती थी और आते समय न तो वह सरोजिनी को लाना भूलती थी और न कॉलेज के बाद घर पर उसे छोड़ना। इस कार में बैठकर और एस० पी० की लड़की की मित्र बनकर सरोजिनी एक प्रकार के ऐसे सुख और गौरव का अनुभव कर रही थी जो उसकी किसी आंतरिक प्रच्छन्न वृत्ति को बार-बार गुदगुदा जाता था।

ग्रेस और सरोजिनी की यह मित्रता ऐसी बढ़ी कि कभी ग्रेस सरोजिनी के घर और कभी सरोजिनी ग्रेस के यहाँ घण्टों बैठी रहती। पं० गंगाधर पन्त ने ग्रेस के आने पर कभी आपत्ति नहीं की। प्रारम्भ में ग्रेस को छोड़ने ड्राइवर आता था; पर अब कभी-कभी उसका भाई, जो उससे अवस्था मे तीन वर्ष बड़ा था, आने लगा। ग्रेस ने एक दिन हँसी-हँसी में कहा था कि यद्यपि उसके भाई का नाम सैवेज है, लेकिन है स्वभाव का वह बहुत ही कोमल। एकांत मे उसने यह भी बतलाया कि वह लड़कियों में बहुत पौपूलर है। सरोजिनी ने सैवेज की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। अपनी सहेली के प्रशंसा करने पर भी उसे सैवेज की दृष्टि में ऐसी क्रूरता लगती थी जो उसके नाम को सार्थक करती थी।

कार में बात करने के लिए ग्रेस और सरोजिनी दोनों पीछे बैठती थीं। कभी-कभी वे ज़ोर से बातें करने लगतीं, कभी बहुत धीरे-धीरे। कभी सहसा खिलखिलाकर हँस भी पड़तीं। सैवेज उनकी बातों में कभी हस्तक्षेप नहीं करता था। बीच-बीच में कभी-कभी वह भी हँस पड़ता था। वह अच्छी लगने वाली बात पर भी हँसता था और बुरी लगने वाली बात पर भी। ग्रेस के सम्पर्क से सरोजिनी की काफ़ी झिझक खुल गयी थी और कभी-कभी वह बहुत खुलकर उससे बात करने लगती थी। एक दिन बातचीत के प्रसंग मे ग्रेस ने कहा—आदमी वाइफ़ के बिना रह सकता है; लेकिन औरत के बिना

नहीं । सैवेज बहिन की इस बात पर हँस पड़ा । सरोजिनी ने इसके उत्तर में बिना झिझक के कहा—मेरा तो ऐसा विचार है कि अधिकतर आदमी गुण्डे होते हैं । सैवेज इस बात पर भी हँस पड़ा । दोनों सहेलियों ने इस हँसने की बिल्कुल चिंता नहीं की । इस हँसी से वे अब परिचित हो गई थीं ।

कुछ दिनो से सैवेज कुछ गम्भीर रहने लगा था । पूछने पर ग्रेस ने बतलाया कि भाई का रोमांस लिली नाम की एक लड़की से चल रहा है । सैवेज ने उसे चर्च में देखा था और तभी से इसे न जाने क्या हो गया है; लेकिन दोनों की किसी दिन शादी हो जायगी, इसमें सन्देह नहीं । सरोजिनी के मन में लिली को देखने की उत्सुकता हुई । उस समय तक प्रेम का उसे कोई अनुभव नहीं था । हँसी-हँसी मे एक दिन उसने सैवेज से पूछा—फूलों मे लिली तुम्हें कैसी लगती है ? सैवेज ने उत्तर कुछ भी नहीं दिया । वह ठठाकर हँस पड़ा । इससे इतना पता उसे अवश्य चल गया कि सरोजिनी से ग्रेस ने उसके सम्बन्ध में कुछ कहा है ।

एक दिन बहुत सबेरे सैवेज सरोजिनी के यहाँ कार लेकर आया और हॉर्न देकर अपने आने की सूचना दी । सरोजिनी ने हाथ का संकेत देकर उसे ऊपर बुला लिया । कॉलेज मे उन दिनों किसी त्योहार की छुट्टियाँ थी । सैवेज ने बतलाया कि ग्रेस की कुछ सहेलियाँ घर पर आयी हुई हैं और उसने उसे तुरन्त बुलाया है । सरोजिनी को किसी प्रकार का सन्देह नहीं हुआ । अपने पिता से आज्ञा लेकर वह सैवेज के साथ चल दी ।

कार में वह सैवेज के पास ही बैठ गई ।

दोनो के बीच में एक पैकेट था । सरोजिनी ने पूछा, "यह क्या है ?'

"उपहार ।"

"किसके लिए ।"

"लिली के लिए । आज उसका जन्म दिन है ।

"तभी आप इतने प्रसन्न हैं ।"

"खुशी की एक वजह यह भी है कि आज आप पहली बार मेरे इतने पास बैठी हैं ।"

"लेकिन अगर मेरे स्थान पर लिली होती तो?"

"देखो 'जिनी' ज़िन्दगी में कोई किसी की जगह नहीं ले सकता। सब की अपनी-अपनी जगह है।"

सरोजिनी को अपना नाम इस तरह लेना अच्छा नहीं लगा। लेकिन उसका नाम इस सुन्दर रूप से संक्षिप्त किया जा सकता है, इसकी उसने कल्पना ही नहीं की थी। 'जिनी' यह शब्द उसे बहुत मधुर लगा और अपना आधा नाम लेने के लिए उसने सैवेज को अपने मन में क्षमा कर दिया।

"पहले मैं आपको घर पर उतार दूँ। ग्रेस इंतजार कर रही होगी। इसके बाद मैं लिली से मिलने जाऊँगा।"

सरोजिनी ने सैवेज की कुटिलता को बिल्कुल नहीं समझा। उसने कहा, "कार तो है ही। उसमे कितनी देर लगेगी। चलिए, पहले लिली के यहाँ ही चलें। इस बहाने मैं भी उसे देख लूँगी।" फिर रुककर पूछा, "लेकिन मुझे भी तो कुछ उपहार लेकर चलना चाहिए?"

सैवेज ने हँसकर कहा, "यह प्रेजेंट मैं आपकी ओर से ही भेंट कर दूँगा।" इतना कहकर कार की स्पीड उसने बढ़ा दी।

शहर के एक कोने में जहाँ बस्ती घनी नहीं थी, सैवेज अपनी कार ले गया। रास्ते में बराबर वह सरोजिनी को दिलचस्प बातें सुनाता रहा—विशेष रूप से पश्चिम के कुछ प्रसिद्ध मज़ाक। सरोजिनी हँसती रही।

सामने ईसाइयों के कुछ बँगले थे। लेकिन सैवेज सरोजिनी को जहाँ ले गया वह एक टूटा-सा मकान था। चहारदीवारी के भीतर एक बाग़ था। बाग़ के भीतर मकान। कार कुछ दूर पर ही रोक दी गई थी और दोनों को कुछ दूर कच्चे रास्ते धूल में भी चलना पड़ा था। बाग उजड़ा-सा पड़ा था और उसमें कोई माली नहीं था। इसके पूर्व कि सरोजिनी किसी प्रकार का सन्देह करके कोई प्रश्न करे, सैवेज ने कहा, "लिली के मा-बाप बहुत ही ग़रीब हैं, इसी से माफ़ कीजिए, मिस पन्त, मैं आपको यहाँ लाना नहीं चाहता था।"

मकान दुमंज़िला था। सैवेज ने नीचे से ही आवाज़ दी, "लिली। लिली डियर।"

ऊपर से एक व्यक्ति ने झाँका। उसकी कमीज़ की बाँहें ऊपर को चढ़ी हुई थीं। वह दोनों को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। "यह लिली का भाई है। एक मोटर कम्पनी में काम करता है।" सैवेज ने कहा।

दोनों ऊपर पहुँच गए और एक छोटे से कमरे में जाकर बैठ गए।

थोड़ी देर में वहाँ एक के स्थान पर दो व्यक्ति दिखाई दिए। सैवेज के साथ वे दोनों भी ठठाकर हँस पड़े। तीनों ने मिलकर सरोजिनी को एक चार-पाई से बाँध दिया और फिर उसके शरीर की जितनी कुगति हो सकती थी, उतनी सैवेज ने की। उसके मित्र जब उठकर जाने लगे तो वह फिर ठठाकर हँसा और उसने उन्हे जाने नहीं दिया। तीनों हँसते रहे...हँसते रहे... हँसते रहे।

बाद में सैवेज सरोजिनी को उसके घर छोड़ आया। सरोजिनी ने किसी से कुछ भी नहीं कहा। वह किससे क्या कहती!

ग्रेस के यहाँ सरोजिनी का आना-जाना वैसे ही बना रहा। सैवेज वैसे ही कभी-कभी कार ड्राइव करता रहा।

इस घटना को एक महीने से ऊपर हो गया।

एक दिन सरोजिनी ग्रेस के घर पर थी। ग्रेस बहुत देर से उसे हँसाने का प्रयत्न कर रही थी; पर उसके मुख पर बार-बार चिन्ता की छाया आ जाती थी।

"क्या बात है जिनी डियर?" ग्रेस ने सरोजिनी ने पूछा। सरोजिनी का यह नाम अब ग्रेस के घर और कॉलेज में प्रसिद्ध हो गया था।

"कुछ दिन चढ़ गए हैं ग्रेस।"

"सच?" ग्रेस ने सरोजिनी को नोंचकर पूछा।

"पाजी कहीं की। यह कोई खुशी की बात है जो नोंच रही है?"

"मर मिटने की बात है डियर; लेकिन पूरी बात बतानी होगी।"

"कुछ करना होगा ग्रेस, नहीं तो मैं यमुना में डूब कर मर जाऊँगी।"

"तेरे तो फ़ादर ही डाक्टर हैं।" ग्रेस ने कहा।

"अरी बेशरम, यह बात क्या फ़ादर से कही जा सकती है ?" सरोजिनी ने कृत्रिम झुँझलाहट से पूछा।

"हाँ, यह बात ठीक है।" ग्रेस ने सरोजिनी को कसकर आलिंगन में ले लिया और वैसे ही कसकर उसका एक चुम्बन लिया।

"मेरी प्यारी ग्रेस, कुछ उपाय कर न।"

"अरी ,उपाय क्या करना है। वह अपना डाक्टर है न विनयमोहन। उसी के पास चलेंगे।"

"आदमी के पास ?"

"हाँ। मुझे तो जब कोई उलझन होती है तो डा० विनय के पास सीधी चली जाती हूँ..."

"तुम ऐसी उलझन में पड़ चुकी हो ?"

"क्यों, मेरे मन नहीं है ? मैं प्यार करना नहीं जानती ?"

"प्यार ?" सरोजिनी ने पूछा।

"प्यार न कहो, रोमांस कहो।"

सरोजिनी ने समझ लिया तर्क करना व्यर्थ है। दूसरे दिन दोनों पैदल ही डा० विनयमोहन की डिस्पेंसरी गईं। विनयमोहन ने तीन वर्ष हुए एम० बी० बी० एस० किया था। तीस वर्ष के अविवाहित सुन्दर व्यक्ति थे। श्वेत वस्त्र, मूछें साफ़, आँखों पर चश्मा। डाक्टर की प्रैक्टिस प्रारंभ से ही खूब चलती थी। बाहर बेंचों पर रोगी बैठे हुए थे। डाक्टर एक-एक को बुला रहा था—जो पहले आया था उसे पहले, जो बाद में आया था, उसे बाद को। कम्पाउन्डर एक ही था। वह रोगियों को दवा दे रहा था। डाक्टर इतने सज्जन थे कि परामर्श के कमरे से स्वयं ही उठकर हर बार बाहर आते और रोगी को संकेत से अपने पास बुलाते और फिर ध्यानपूर्वक उसका निरीक्षण करते। एक बार जब किसी रोगी को बुलाने बाहर निकले तो ग्रेस पर दृष्टि पड़ी। हाथ वहीं रुक गया। नियम भंग करके उन्होंने दोनों युवतियों को कमरे में बुलाया।

"कैसे तकलीफ़ की ?" डा० विनय ने ग्रेस से पूछा ।

"ये मेरी सहेली हैं मिस पन्त । कॉलेज में मेरे साथ पढ़ती हैं । इन्हे आज आपके दर्शन के लिए खींच लाई हूँ।" ग्रेस ने मुस्कराकर कहा ।"

"आपको क्या शिकायत है ?"

"प्यार का परिणाम भुगत रही है बेचारी और क्या ! आपकी जात ही ऐसी पाजी है।"

डा० ने मुस्कराकर कहा, "अच्छा, आप लोग ऊपर मेरे कमरे में चलिए । थोड़ी देर लगेगी । मै और मरीज़ों से निबटकर अन्त में आपसे बात करूँगा । मुझे देर लगे तो उकताइए नहीं । ऊपर किताबें हैं, वायलिन है, चाय का सामान है ।"

दोनों सहेलियाँ ऊपर चली गयीं ।

पूरे एक घण्टे बाद विनय ऊपर आया । ग्रेस और जिनी बैठे-बैठे उकता गयी थीं । ग्रेस ने एक बार जिनी से कहा भी—तू बैठ मैं चलूँ । लेकिन जिनी ने उसे उठने नहीं दिया ।

"मुझे डर लगता है ।" जिनी बोली ।

"तब डर नहीं लगा था ?" ग्रेस ने शरारत से पूछा ।

सरोजिनी का सारा अन्तःकरण घृणा से भर गया । इसी का तो भाई है, उसने सोचा । घृणा के भयावह बादलों पर मुस्कान की शारदी चाँदनी बिखेरती हुई वह बोली, "कभी-कभी जीवन में ऐसा घटित हो जाता है ग्रेस, जिसमें हमारे मन का बिल्कुल योग नहीं होता और उससे मनुष्य का जीवन ही बदल जाता है।"

जिनी को दार्शनिक की सी बातें करते देख ग्रेस ने कहा, "मैं डाक्टर का वायलिन बजाऊँ, जिनी ?"

"नहीं। मेरा मन न जाने क्यों उड़ा-उड़ा-सा हो रहा है । कुछ भी अच्छा नहीं लगता ।"

"तो चाय बनाऊँ ?"

"तुम क्या डाक्टर से बहुत फ्री हो ?"

"इसमें झी होने की क्या बात है? डाक्टर ने स्वयं ही तो कहा था। अगर इस वक्त आकर वे तुमसे कहें कि चाय बनाओ तो क्या तुम मना कर दोगी?"

"इस वक्त तो शायद मना न कर सकूँ।"

"तो क्या अब डाक्टर पर दिल आ गया?"

जिनी को यह बात ज़हर-सी लगी; लेकिन अपने संकट की कल्पना करके उसने क्रोध के स्थान पर मृदु मुस्कान से ही काम लिया। पूछा, "तुम क्या प्रत्येक व्यक्ति के सम्बन्ध में एक-सा सोच सकती हो?"

"जो अच्छा लगता है उसके बारे में तो सोच ही लेती हूँ···सभी सोचते हैं। तुम भी सोचती होगी।"

"मैंने तो आज तक किसी के बारे में नहीं सोचा।"

"तभी तो डाक्टर के यहाँ बैठी हुई हो···"

"डाक्टर का यह दुर्भाग्य है कि उसके यहाँ सब बीमार पड़ने पर आते है, वैसे कोई नहीं आता।" पूरे एक घण्टे बाद विनय ने ऊपर के कमरे में प्रवेश करते करते हुए कहा। आते ही सरोजिनी से बोला, "आप नीचे चलिए।"

"मै भी साथ चलूँ डाक्टर?" ग्रेस ने पूछा।

"नहीं। तुम चाय बनाओ। मुझे इनसे कुछ पूछना है।" सरोजिनी से उसने कहा, "आइए।"

सरोजिनी सिर झुकाए नीचे चली गई।

परीक्षण-कक्ष में डाक्टर ने सरोजिनी से एक गद्दे‌दार लम्बी बैंच पर लेटने के लिए कहा और उसके पेट के ऊपर की साड़ी हटा दी। एक उँगली से उसने पेट को कई स्थानों पर कहीं कोमलता से और कहीं कठोरता से स्पर्श किया। पेट की कुंद जैसी आभा, नवनीत जैसी कोमलता और शंख जैसी चिक्कणता को देखकर वह एक बार तो संज्ञा-सी खो बैठा। सरोजिनी उसी स्थिति में लेटी रही।

"मुझसे कुछ लज्जा करने की आवश्यकता नहीं है। लज्जा करेंगी तो

मैं कुछ नहीं कर पाऊँगा। आप यहाँ आई हैं और मुझ से इलाज कराया है, इसका पता कभी किसी को नहीं चलेगा। यह मेरे पेशे की इज़्ज़त का सवाल है। मुझे कुछ नहीं मालूम कि क्या हुआ और मैं कुछ जानना भी नहीं चाहता। उसमें मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है। ऐसी बातों में हम दिल-चस्पी लेने लगें, तो अपना काम नहीं कर सकते। मेरे आपके बीच जो बात होगी वह ग्रेस से भी छिपानी होगी।"

"क्या वह आवश्यक है?"

"हाँ।"

"वह पूछेगी तो मैं क्या कहूँगी ?"

"कुछ भी कह दीजिए। जीवित रहना है, तो थोड़ा झूठ बोलना सीखना चाहिए। क्या इस घटना की चर्चा आपने ग्रेस से कर दी है ?"

"नहीं तो।"

"फिर ?"

"अच्छा, मैं छिपा सकूँगी।"

डाक्टर ने सरोजिनी से उठकर बैठने के लिए कहा। सरोजिनी वहीं बैठी रही। डाक्टर ने कुर्सी खींच ली।

"जब मैं आपके पेट को दबाकर देख रहा था तो आपके चेहरे से मुझे लगा कि कहीं कुछ दुखता है।"

"हाँ।" सरोजिनी ने गर्दन झुकाकर कहा।

"बहुत ?"

"हाँ।" सरोजिनी ने हथेलियों से आँखें मींचकर कहा।

"आपने मेरे पास आने में बहुत देर कर दी; लेकिन इस समय खाने के लिए मैं दवाई देता हूँ। क्या आप शाम को अकेली आ सकेंगी ?"

"अकेली ?"

"हाँ।"

"मैं कह नहीं सकती।"

"सोच लीजिए।"

दोनों ऊपर आ गए।

चाय पीने के उपरान्त सरोजिनी ग्रेस के साथ घर लौट गई।

"कोई लेडी डाक्टर नहीं मिल सकती ग्रेस ?" सरोजिनी ने चिंतित होते हुए कहा।

"मैं किसी ऐसी लेडी डाक्टर को नहीं जानती जो यह काम जानती हो; नहीं तो वह हर हालत में बेहतर रहती।" ग्रेस ने उत्तर दिया।

"मुझे लगता है कि इस डाक्टर से इलाज कराना पड़ा तो मैं तो शर्म के मारे मर जाऊँगी। तुम्हें शर्म नहीं लगी ?"

"अरी, अपने काम से काम। शर्म-वर्म क्या ?"

"मैं तो इस तरह नहीं सोच सकती।"

"तो फिर मरो। अभी तो मुझे और डाक्टर को ही पता है; फिर मुहल्ले और सारी दुनिया को पता चलेगा। शर्म क्या कोई जिस्म से चिपटी रहती है ?"

"अकेले में बुलाया है, कल शाम को। तुझे बुरा नहीं लगा ? मैं तुझे भी लेकर नहीं जा सकती।"

"मुझे यह सुनकर बिल्कुल बुरा नहीं लगा ! मैं डाक्टर को प्यार नहीं करती कि तुम्हे अपना रायवल समझूँ। लेकिन जिन्दगी में थोड़ा प्रैक्टीकल होना चाहिए, यह मैं जानती हूँ। मुझे तो डाक्टर की बात पर बिल्कुल गुस्सा नहीं आता।"

"क्यों नहीं आता ?"

"हाय, ऐसे हेंडसम आदमी से इलाज कराने में कितना अच्छा लगता है ! और वह तो डा० विनयमोहन हैं। कोई और होता तो तुम्हारे इस तरह उठ आने पर पुलिस में ख़बर कर देता। अगर पुलिस सवाल करती तो सारी बातें बतानी पड़तीं या नहीं ? वहाँ बेइज़्ज़ती भी हो सकती थी। बदनामी होती सो अलग। मैं तो अब भी कहती हूँ कि आगा-पीछा न सोच कर डाक्टर से इलाज करा। थोड़े दिन में सब भूल जायगी।"

सरोजिनी ग्रेस को देखने लगी। वह उसे बहुत भयंकर लगी; लेकिन उसकी बातों में सार था।

जिनी ने डा० विनयमोहन से इलाज कराया। डाक्टर ने उसे स्वस्थ कर दिया। जिनी को फ़ीस के बदले अनिच्छा से डाक्टर को अपना शरीर समर्पित करना पड़ा।

इस बार उसकी आँखों में आँसू नहीं आये। वह पुरुष जाति को ही हृदय से घृणा करने लगी।

इस घृणा ने 'फ्लर्टेशन' का रूप धारण किया। जिनी बहुत कम लोगों को प्राप्य थी। जिसके सम्पर्क में वह रहती, उसके लिए उस अवधि मे उसकी 'सिंसियरिटी' आश्चर्यचकित करने वाली होती। वह ठीक समय पर मिलती, ठीक ढङ्ग से बातें करती। फिर जब वह देखती कि आदमी उसके प्यार में डूब गया है, तो वह सहसा उदासीन हो जाती।

ग्रेस ने दुनिया की सारी ऊँच-नीच उसे समझा दी थी और अपनी रक्षा करने की शक्ति उसमें आ गई थी।

इसी बीच अमरनाथ उसकी लपेट में आ गया।

और पाराशर से उसका रोमांस चल ही रहा था।

१६

आगरा अमरनाथ को उजड़ा हुआ शहर-सा लगा। यह नहीं कि चहल-पहल वहाँ बिल्कुल नहीं थी; पर वह चहल-पहल उसके मन के अनुकूल न थी। उस शहर में अभी बहुत कुछ विकसित होने को था। अच्छे साथियों का अभाव वहाँ उसे प्रायः खटकता था। उसका कोई मित्र न था। अपने काम से लौटता, तो वह बहुत उदास रहता। उसने कई बार बाहर निकलने का प्रयत्न किया; लेकिन सफल नहीं हुआ। जहाँ तक मित्रता का सम्बन्ध था, कई प्रतिष्ठित और प्रभावशाली व्यक्तियों ने उससे घनिष्ठता बढ़ाने का

प्रयत्न किया। इनमें से एक सरकारी अफ़सर ने तो उसका बहुत दिनों तक पीछा किया। लेकिन ये सभी लोग उसे बहुत उथले लगे। कुछ दिनों के उपरान्त ये लोग कॉलेज की लड़कियों के सम्बन्ध में बातें करने लगते थे। उनके सम्बन्ध में न जाने क्या-क्या जानना चाहते थे। अमरनाथ को इससे बड़ी विरक्ति होती थी। और वह मनुष्य के स्वभाव के ओछेपन पर आश्चर्य करने लगता था। परिणाम यह हुआ कि घनिष्टता धीरे-धीरे कम होने लगी। सम्पन्न, शिक्षित और शिष्ट कहलाने वाले कुछ व्यक्तियों के इस छिछोरेपन के स्वभाव पर उसे बड़ी हँसी आती थी।

एक दिन वह बाज़ार से निकला जा रहा था कि तारापद बागची पर उसकी दृष्टि पड़ी। तारापद अनूपशहर का रहने वाला था। ए० वी० हाई स्कूल में वे दोनों साथ-साथ पढ़े थे। इसके उपरान्त एन० आर० ई० सी० इंटर कॉलेज खुर्जा मे दोनों का साथ हुआ। फिर तारापद कहाँ चला गया, उसे पता ही नहीं चला। तारापद जब हाईस्कूल में पढ़ रहा था, तब उसके साथ एक दुर्घटना घट गई। बागची ने उस घटना को बहुत छिपाने का प्रयत्न किया, लेकिन अमरनाथ को पता चल ही गया। तारापद के पिता कालीचरण बागची अनूपशहर के प्रसिद्ध होमियोपैथ डाक्टर थे। उनके सम्बन्ध मे प्रसिद्ध था कि वे रोग बताने से पहले दवाई देते थे। मान लीजिए किसी को जुकाम, खाँसी या बुख़ार है। आपने 'जु' कहा नहीं कि उन्होंने पुड़िया आपको थमा दी, आपके मुँह से 'खाँ' निकला नहीं कि उन्होंने शीशी में से छोटी गोलियाँ उड़ेलकर दे दीं, आपके मुँह से 'बु' निकला नहीं कि उन्होंने कहा: बस बस, मैं समझ गया और एक ख़ुराक बनाकर आपके मुँह में डाल दी और कहा—जाइए। यह बात उसके सम्बन्ध में हँसी के रूप में कुछ अतिरंजित रूप में कही जाती थी; पर यह सत्य था कि रोगियों की वे कम सुनते थे। रोगी इतने आते थे कि उनके पास देर तक बात करने के लिए समय ही नहीं था। रोगियों पर वे कभी-कभी झुँझला भी पड़ते थे; लेकिन वे लोग घूम-फिरकर फिर उनके ही पास आते थे। इतने कम दामों में इतनी जल्दी अच्छा करने वाला दूसरा डाक्टर शहर में था ही नहीं।

इस प्रेक्टिस से डा० कालीचरण बागची ने एक नया मकान बनवाया और एक युवती बङ्गाली लड़की से दूसरा विवाह किया। यह नयी मा तारापद को बिल्कुल अच्छी नहीं लगती थी। परिणाम यह हुआ कि नई मा की सहानुभूति के साथ पिता के हृदय का प्यार भी वह खो बैठा। घर का वातावरण जब उसके अनुकूल नहीं रहा तो उसने बाहर मन की शान्ति खोजने का प्रयत्न किया और एक कायस्थ लड़की के प्यार में पड़ गया। तारापद का कहना है कि लड़की के मा-बाप ने उसका विवाह लड़की की अनिच्छा से दूसरे स्थान पर कर दिया। मित्रों का विचार है कि उसकी प्रेमिका ने उसके साथ विश्वासघात किया। कुछ भी हो, ससुराल में जाकर लड़की को दिल के दौरे पड़ने लगे और विवाह के छह महीने के भीतर एक दिन उसकी मृत्यु हो गई। तारापद का संसार सूना हो गया। इतने आँसू लड़की के पति ने भी नहीं बहाये होंगे, जितने तारापद ने बहाये। अपनी प्रेमिका के करुण वियोग में उसने बहुत से कसकपूर्ण गीत लिखे। जानकार लोगों का कहना है कि वे गीत बँगला साहित्य में पहले से ही उपलब्ध थे, तारापद ने केवल उनका आदि और अंत बदल दिया था। लेकिन काँटा जिसके चुभता है, उसकी पीड़ा वही जानता है। मित्रों के कलेजे में तो वह काँटा चुभा नहीं था जो उस व्यथा को पहचानते। घर से उपेक्षित और क्रूर नियति के मारे तारापद का मन संसार से एकदम विरक्त हो गया और वह साधुओं के बीच घूमने लगा। गंगा नदी अनूपशहर को भी छूकर बहती है; अतः साधुओं की वहाँ कमी न थी। एक दिन एक बाबा जी ने उसे समझाया कि जीव को अशान्त रखने वाली यह माया है, माया का अस्त्र वासना है; अतः वासना के मूल को नष्ट कर देना चाहिए। भोले तारापद की समझ में यह बात आ गई। अपनी प्रेमिका के चिर विरह में लीन रहने पर भी सौंदर्य को देखकर उसका मन कभी-कभी चंचल हो उठता था। ज्ञान की ऐसी गहरी बात सुनकर तारापद बाबा जी के चरणों में गिर पड़ा। उसने सौगन्ध खाकर कहा कि संसार से उसका मन इतना विरक्त हो चुका है कि अब वह उसका भोग नहीं करना चाहता और विवाह से उसे घृणा है।

बाबा जी ने प्रसन्न होकर अपनी धूनी की गरम राख गुप्त इंद्रिय पर मलने के लिए उसे दी। तारापद जब संकोच करने लगा तो बाबा ने अप्रसन्न होते हुए कहा : दुष्ट, दीक्षा लेकर पीछे हटता है। तारापद डर गया। बाबा ने गरम राख का पहला प्रयोग अपने कर-कमल से कर दिया और कहा—जा। परिणाम यह हुआ कि तारापद संसार के लिए बेकार हो गया।

थोड़े दिनों के उपरांत तारापद बहुत बेचैन रहने लगा। बाबा जी इस बीच कहीं चम्पत हो गए थे। रमते साधू और बहते पानी का क्या ठिकाना, वे कहाँ से कहाँ पहुँचें। अपने पिता से तारापद कुछ कह नहीं सकता था। अन्त में उसने एक ऐसे डाक्टर को खोज निकाला जो इस प्रकार के रोगों का इलाज करता था। एक दिन तारापद और अमरनाथ किसी काम से बाज़ार गए। रास्ते में डाक्टर की दूकान पड़ती थी।

अमरनाथ के बैठते ही डाक्टर ने घूरकर उसकी ओर देखते हुए पूछा, "कहिए मिस्टर, आपको यह रोग कब से है?"

अमरनाथ ने चकित होकर पूछा, "कैसा रोग?"

"यही, जिसे आप छिपाये फिरते हैं!"

"क्या छिपाये फिरता हूँ?"

"आप किसी दिन अकेले में आइए।"

"लेकिन क्यों?"

"डाक्टर से कुछ छिपाने में मरीज़ का ही नुकसान है। मेरा तो कुछ नहीं बिगड़ता। आप सोच लीजिए।"

अमरनाथ ने तारापद से उठने के लिए कहा। रास्ते में तारापद ने अमरनाथ से कुछ भी नहीं छिपाया। उस दिन से अमरनाथ ने तारापद का साथ छोड़ दिया। लेकिन ख़ुर्जा में फिर दोनों का साथ हुआ। इस बीच अमरनाथ को जीवन का थोड़ा-बहुत ज्ञान हो गया था। तारापद से उसे सहानुभूति हुई।

फिर वे दोनों बिछुड़ गए।

आगरे में तारापद बागची से फिर सहसा भेंट हो गई।

"तुम यहाँ कब से हो ?" अमरनाथ ने पूछा ।

"कई वर्ष से ?"

"क्या कर रहे हो ?"

"होमियोपैथी ।"

"अकेले ही हो ?"

"नहीं, मा है ।"

अमरनाथ को तारापद पर श्रद्धा हुई । तारापद की मा की आँखें जाती रही थीं और इसीलिए उसके पिता कालीचरण बागची ने दूसरा विवाह कर लिया था । बेटा हो तो ऐसा हो ।

तारापद को सिर झुकाए देख अमरनाथ ने पूछा, "क्यों क्या बात है ?"

"मेरा विवाह हो गया है ।"

अमरनाथ जैसे आसमान से गिरा । उसे तारापद पर बड़ी अश्रद्धा हुई । मन के भाव को दबाकर उसने प्रश्न किया, "यह विवाह तुमने स्वयं किया ?"

"नहीं, नमी मा ने ।"

अमरनाथ ने मन में उस अभागी लड़की की कल्पना की जिसका सारा जीवन तारापद से बँध गया था, उस क्रूर नयी मा की कल्पना की जो इस काम में सहायक हुई, उस दुर्बल पिता की कल्पना की जिसने इस काम में हस्तक्षेप नहीं किया और उस व्यक्ति की कल्पना की जिसमें इतना नैतिक बल नहीं था कि 'ना' कह सके । लेकिन वह व्यक्ति तो उसके सामने ही खड़ा था । अत्याचार सबल ही नहीं करता, कभी-कभी दुर्बल व्यक्ति भी करता है । वह क्या कहे तारापद से !

"तुम्हें किसी समय घर चलना पड़ेगा ।"

"हाँ, हाँ, तारापद, अवश्य ।"

और एक दिन अमरनाथ तारापद के घर भी गया ।

२०

बल्काबस्ती में एक वकील साहब का दो-मंज़िला छोटा-सा मकान था। उन्होंने कचहरी के पास अपना नया मकान बनवा लिया था। यह मकान तारापद को उन्होंने किराये पर दे दिया था। तारापद से उनको केवल इतना लाभ था कि वह उनके घर में मुफ्त इलाज करता था। तारापद ने अमरनाथ को ले जाकर अपनी अन्धी मा के पास खड़ा कर दिया और अपने मित्र के रूप में उसका परिचय दिया। अमरनाथ ने उन्हें प्रणाम किया। आँखें आने में उनकी आँखें चली गई थीं; इसलिए वे जन्म से अन्धी नहीं थीं और घर का बहुत कुछ काम कर लेती थीं।

अमरनाथ तारापद की पत्नी को देखने के लिए उत्सुक था और वह अकारण देर लगा रहा था। इतने में ऊपर की मंज़िल से किसी के खाँसने की आवाज़ आयी।

"यह कौन खाँस रहा है?" अमरनाथ ने पूछा।

"शची।"

"तुम्हारी पत्नी?"

"हाँ।"

"बीमार हैं?"

"हाँ, जुकाम बिगड़ गया है। जो प्राणी अपने स्वास्थ्य की चिंता नहीं करेगा, वह किसी न किसी समय बीमार पड़ ही जायगा। जान है तो जहान है। बहुत दिन हुए एक रात इन्हें सर्दी लग गई। उसी में जुकाम हो गया। जुकाम ठीक हो नहीं पाया कि बुख़ार आ गया। बुख़ार उतरा ही नहीं। उतरे कहाँ से। कोई परहेज़ करे तब न! मुझे तो पता नहीं; पर मा का कहना है कि इन्हें चाट खाने की कमज़ोरी है। यहाँ गली-कूचे में भी चाट बेचने वाले घूमते रहते हैं। अपने ऊपर ही नियन्त्रण रखा जा सकता है, खोमचे वालों को कौन रोक सकता है। मैं तो यहाँ रहता नहीं।

ये संध्या को रोज़ाना कभी पानी और सोंठ के बताशे और कभी दही-वड़े खाती रही। पास ही बाज़ार है। वहाँ से खाने के साथ दही मँगाकर खाती रहीं। बुख़ार जड़ पकड़ गया। मेरे इलाज करने पर भी वह नहीं टूटा।"

"तुमने एक्स-रे नहीं कराया?" अमरनाथ ने चिंतित होते हुए पूछा।

"तीन बार एक्स-रे कराया है। पहली बार तो फेफड़े ठीक थे। कुछ दिनों के बाद मुझे फिर सन्देह हुआ। फेफड़ों मे पानी उतर आया था। वह मैंने निकलवा दिया था।"

"मैने सुना है प्लूरिसी क्षय में बदल जाती है?"

"कभी-कभी।"

"तुम इन्हें भुवाली नहीं ले गए?"

"नहीं। यहीं जितने लोगों को दिखा सकता था, दिखा दिया है—वैद्य, हकीम, डाक्टर सबका इलाज करा चुका हूँ। मेरी दवा पर तो अब इन्हें विश्वास नहीं रहा। एक वैद्य ने दवा के साथ सच्चे मोती पीसकर देने के लिए कहा था। उसमें मेरे बहुत रुपये लग गए। फ़ायदा कुछ भी नहीं हुआ।"

"तो क्या...?"

"हाँ।" तारापद ने बहुत धीरे से कहा।

"मैं इन्हें देख सकता हूँ, तारापद?"

"चलो।"

दोनों ऊपर गए। बिना बिस्तर वाले मूंज के एक पलंग पर तारापद की युवती पत्नी लेटी हुई थी केवल एक तकिया लगा था। सिरहाने की ओर खिड़की खुली थी। पलंग के नीचे चिलमची रखी थी।

तारापद ने सहज भाव से पुकारा, "शची।"

शची ने करवट ली। "ये मेरे मित्र हैं। यहाँ एक कॉलेज में अध्यापक हैं। इनसे सहसा बाज़ार में भेंट हो गयी। हम दोनों बहुत दिनों तक सहपाठी रह चुके हैं। तुम्हें देखने आये हैं।"

शची ने कठिनाई से हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

"यह आपकी क्या हालत हो गई?" अमरनाथ ने ऐसे स्वर में कहा जैसे वह शची को बहुत दिनों से जानता हो।

शची करुण भाव से मुस्कराकर रह गई। यह करुण मुस्कान ही उस प्रश्न का उत्तर था। शची ने करवट बदल ली। अमरनाथ ने खिडकी से देखा—सूर्य अस्त होने वाला है। तारापद ने बढ़कर खिड़की बन्द कर दी।

"मैं इन्हें देखने कभी-कभी आ सकता हूँ, तारापद?" अमरनाथ ने पूछा।

तारापद अमरनाथ के मुँह की ओर देखने लगा। बोला, "यह तो मेरे ऊपर उपकार करना होगा। ये कितना एकाकी अनुभव करती हैं। मुझे तो समय नहीं मिलता। होमियोपैथी में तुम जानते हो, कुछ मिलता नहीं। परीक्षा मैंने कहीं से पास नहीं की। जब मैं पढ़ता था, तब समय मिलने पर पिता जी सुबह-शाम मुझसे दवा बँधवाते थे। बस उन्हीं का आशीर्वाद है। और घर का खर्च तो चलाना ही पड़ता है—वह चाहे कितना ही कम हो, तुम कभी-कभी आओगे तो इनका जी कुछ लग जायगा। और यह तो मेरे ऊपर एहसान करना होगा।"

शची कुछ हिली। शायद वह कुछ कहना चाहती थी। शायद अमरनाथ को ठीक से देखना चाहती थी; लेकिन या तो वह करवट ले नहीं सकी या करवट उसने ली नहीं।

अमरनाथ लौट आया।

आधी रात तक अमरनाथ को नींद नहीं आयी। शची की कथा उसे सालती रही। पता नहीं यह उसका कैसा स्वभाव है कि जीवन भर वह अपने दुःख से ही नहीं, दूसरों के दुःख से भी दुःखी रहा है। सम्पर्क में आने वाले प्राणियों के मन की वेदना उसके मन मे सीधी उतर आती है। उसे लगा कि शची का धीरे-धीरे घुल-घुलकर मरना, उसी का घुल-घुलकर मरना है। शची भी कभी बड़ी हुई होगी, उसके भी सपने रहे होंगे! पर उसका यौवन यों ही सूख गया, उसके सपनों के फूल यों ही

मुरझा गए! उसके जीवन के इस अंधकार, जीवन की इस निराशा, इस निर्मम पीड़ा के लिए कौन उत्तरदायी है? विधाता? तारापद? वह स्वयं? तारापद ने जानबूझकर उसके जीवन में क्यों अँधेरा भरा? शची ने ही इस करुण तम से आच्छादित जीवन को क्यों स्वीकार किया? क्या वह और दस लड़कियों के समान किसी आदमी के साथ भाग नहीं सकती थी? क्या वह बिना किसी को जताए व्यभिचारिणी नहीं हो सकती थी? और कुछ नहीं तो क्या वह तारापद के मुँह पर जोर से एक तमाचा नहीं मार सकती थी? उसकी इच्छा हुई कि वह यह तमाचा तारापद के मुँह पर उसके सामने मारे। यह तमाचा वह तारापद के मुँह पर सारे समाज के सामने मारे। और कुछ नहीं तो जब वह मर रही हो तो तारापद को वह अपने पास बुलाये और ऐसा कसकर चाँटा दे कि तारापद की आँखों के सामने अँधेरा छा जाय। यदि वह अमरनाथ को आज्ञा दे दे, तो वही तारापद को किसी तिमंज़िले मकान की छत पर खड़ा करके धक्का दे दे और जब सड़क पर खड़ी भीड़ उससे पूछे कि 'क्या हुआ', तो वह कहे 'कुछ नहीं, कुछ नहीं' और सब 'ठीक हुआ' कहते हुए आगे बढ़ जायँ और चील-कौए तारापद की लाश को नोंच-नोंच कर खा जायँ!

शची जैसी लड़कियों के के जीवन की सार्थकता क्या है?

धीरे-धीरे किसी व्यक्ति का मरना क्या होता है, जिसने इस दृश्य को देखा है, केवल वही जानता है!

संध्या होते ही अमरनाथ वहाँ पहुँच जाता था। शची का शरीर धीरे-धीरे सूखता जा रहा था और अब वह हड्डियों का पंजर-मात्र रह गयी थी। इतना होने पर भी आवाज़ में किसी प्रकार की दुर्बलता नहीं आयी थी। वाणी का स्वर ज्यों का त्यों था—एकदम नॉर्मल। तारापद बचपन से ही स्वच्छताप्रिय था और अब तो डाक्टर था; अतः शची का कमरा एकदम स्वच्छ रहता था, बिस्तर भी एकदम स्वच्छ। शची मना करने

पर भी खिड़की को खुला रखती थी और उसी के सहारे तकिया लगाकर बैठी रहती थी। घर में सुबह-शाम एक कहारिन आती थी। वह पड़ोस में ही रहती थी और बीच में भी एकाध बार देख जाती थी। शची के कपड़े वही बदलती थी। एक दिन संध्या समय जब अमरनाथ पहुँचा, तो कहारिन शची के बाल काढ़ रही थी। शची ने उसका हाथ वहीं रोक दिया और उससे कहा—तू जा।

अमरनाथ सदैव की भाँति शची के पलंग पर पैरों की ओर बैठ गया। शची तकिये का सहारा लेकर खिड़की के सहारे बैठी रही। अमरनाथ ने जेब से निकालकर इलायची उसकी ओर बढ़ायी। इलायची शची ने ले ली। अमरनाथ की दृष्टि शची के नाखूनों पर गई। नाख़ून नीले पड़ गए थे। अमरनाथ मृत्यु की छाया को बढ़ते देखकर भीतर से जैसे काँप गया। थोड़ी देर में आकाश में एक तारा उगता दिखाई दिया।

"आज मैं कुछ स्वस्थ-सी हूँ न ?"

"............"

"आप झूठ बोलते हैं।"

"कैसा झूठ ?"

"कि मैं मर जाऊँगी।"

"............"

"मैं नहीं मरूँगी। नहीं मरूँगी।"

"............"

"आपको मालूम है आप मुझे कितने अच्छे लगते हैं ?"

अमरनाथ चौंक उठा। क्या शची के मन में अभी भावनाओं का बल शेष है? शरीर की दुर्बलता के साथ क्या भावनायें दुर्बल नहीं होती ? अमरनाथ को अपना मौन स्वयं ही अखर रहा था। कहीं ऐसा न हो कि शची उत्तेचित हो उठे। उसने धीरे से कहा, "कुछ-कुछ आभास-सा तो है।"

"आपको मालूम है आप मुझे क्यों अच्छे लगते हैं ?"

"कोई विशेष कारण तो नहीं ही हो सकता।"

"हाँ, अच्छे लगने के लिए कारण की आवश्यकता नहीं, लेकिन इस अच्छे लगने का एक कारण है और वह यह कि औरों की तरह आपने मुझसे कभी झूठ नहीं बोला। आपने एक बार भी नहीं कहा कि मैं अच्छी हो जाऊँगी। मृत्यु की छाया को प्रत्येक प्राणी पहचानता है। मैं भी पहचानती हूँ। वह अभी मुझसे बहुत दूर है। मैंने जान बूझकर अपने शरीर को गिराया है। अगर मुझे पता होता कि आप किसी दिन आयेंगे, तो मैं...। लेकिन अब बहुत देर हो गई है। अब मैं मृत्यु को प्यार करने लगी हूँ, यद्यपि इतना प्यार नहीं करती कि वह बहुत जल्द आये।"

अमरनाथ ने बात को बीच में काटकर कहा, "बहुत नहीं बोलते।"

"एक बात मेरी समझ में नहीं आयी। मेरा आपसे पहले का कोई परिचय नहीं है। और यह छूत का रोग है। और आप अकेले भी नहीं हैं। लेकिन एक पल के लिए भी आपने कभी चिन्ता नहीं कि आप मुझसे दूर रहें। अगर आपको कुछ हो गया तो क्या होगा? क्या मैं परलोक मे भी सुखी रह सकूंगी?"

"हो सकता है, सब कुछ होते हुए मैं वास्तव में सुखी न होऊँ। चारों ओर से घिरे रहने पर भी एकाकीपन का अनुभव करता होऊँ। हो सकता है सब मिलाकर जीवन मुझे सारहीन लगता हो और इसलिए मैं जीवन को प्यार करते हुए भी, भीतर से मरना चाहता होऊँ—चाहता होऊँ कि यह रोग मुझे भी लग जाय..."

"यह तो अच्छी बात नहीं है।"

"शायद नहीं है—और कौन जानता है हो।"

शची ने आँखें मींच लीं। वह कुछ सोचने लगी। अमरनाथ ने पूछा, "कमरे में रोशनी कर लें?"

"नहीं।" शची ने आँखें मीचे ही कहा।

"क्या सोच रही हैं?"

"यह हो क्या गया! जीवन भर मैं इतनी स्वच्छता से रही हूँ कि

आप कल्पना नहीं कर सकते। मलिनता को मैं कहीं भी सहन नहीं कर सकती। फिर मुझे यह रोग लग कैसे गया ?"

"सफ़ाई से रहने वालों को यह रोग न लगता हो, ऐसी बात नहीं है...। और यह भी नहीं है कि जो लोग ऐसे रोगियों के पास रहते हैं उन्हें अनिवार्य रूप से अपने पंजे में यह जकड़ ही लेता हो। आख़िर, रोगियों की देखभाल करने वाले लोग उनके चारों ओर रहते ही हैं। सभी को तो यह लग नहीं जाता...।"

"मैं कितने दिन और चलूंगी ?"

"..............."

"मुझे मालुम है। अब बहुत देर नहीं है।"

"अभी तो आप कह रही थीं कि..."

"अब मेरी किसी में ममता नहीं रही। सब मिलाकर बहुत सूना-सूना-सा लगता है। केवल संध्या अच्छी लगती है।"

अमरनाथ सुनता रहा।

"यही सोचती रहती हूँ कि कब संध्या हो, कब आप आयें..."

अमरनाथ इस पल को बचाना चाहता था। वह बोला, "आप थोड़ा लेट जाइए। थक गई होंगी।"

"मुझे कहने में लाज लगती है; लेकिन बिना कहे मैं मर नहीं सकूंगी। क्या मेरे मन में जो है वह मुझे कह देना चाहिए।

"................"

"मेरे पास आइए।"

अमरनाथ उठकर खिडकी के सहारे खड़ा हो गया। शची ने अपने दुर्बल हाथों से उसके हाथों को पकड़कर उसे अपनी ओर झुकाया। तकिए के सहारे गर्दन कुछ ऊँची किए वह बैठी थी। सुगंधित तेल की भीनी गंध उसके खुले बालों से उड़ रही थी। उसने बहुत धीरे-धीरे कहा, "विवाहित होने पर भी मेरा शरीर और मन अभी तक एक कुंआरी बालिका का मन ही है। आज या कल में मैं इस सुन्दरता से भरे संसार

से उठ जाऊँगी। जीवन में मैंने कुछ भी नहीं जाना। मेरी केवल इतनी कामना है कि इन तप्त ओठों को एक बार तुम....''

आगे शची नही कह पायी और यह भी पता नहीं वह क्या कहना चाहती थी। ऐसे पलों के सारे निर्णय अमरनाथ अपनी अंतःप्रेरणा पर ही छोड़ देता था। उसके भीतर से आवाज़ आई, नहीं।''

''तुम्हें डर लगता है ?''

''नहीं।''

''फिर ?''

''मैं चाहता हूँ कि जैसा पवित्र तुम्हारा जीवन रहा हैं, वैसी ही पवित्र तुम्हारी मृत्यु हो।''

शची की आँखों से आँसू की दो बूंदें ढलकीं। उसने धीरे से कहा, ''अच्छा, मुझे लिटा दो।''

इसके उपरांत एक दिन शची की मृत्यु हो गयी। इस समाचार को जब अमरनाथ ने सुना तो वह एकांत में बैठकर बहुत देर तक न जाने क्यों रोता रहा।

२१

पं० दीनबन्धु, की अवस्था चौरासी वर्ष की हो चुकी थी। जीवन में वे कभी बीमार नहीं पड़े थे। वे जानते ही नहीं थे कि रोग कहते किसे हैं। अपनी वृद्धावस्था में भी वे दो-चार मील पैदल चल सकते थे। फिर भी जरा ने उनके शरीर को दुर्बल कर दिया था। मकान में नीचे दो कमरे थे। सड़क के किनारे वाला वड़ा कमरा अब ड्राइंग-रूम था। आँगन को पार करके सामने ही जो दूसरा कमरा था वह पं० दीनबंधु को दे दिया गया था। इन दोनों कमरों के ऊपर दूसरी मंजिल में जो दो कमरे थे, उनमें से एक में विद्यावती रहती थी, दूसरा उमा ने अपने लिए ठीक कर लिया था।

संतोष वाले हिस्से में कोयले, लकड़ियाँ, चारपाई और फालतू सामान रख दिया गया था। मकान कुछ ऊँचा था और इस तरह बना हुआ था कि नीचे आँगन में धूप नहीं आती थी। इसी से अमरनाथ अपने कमरे को कभी बंद करके न जाता था। दीनबंधु के मन में जब आता, उसके कमरे में आकर बैठ जाते थे। अमरनाथ की आलमारियाँ पुस्तकों से भरी हुई थीं। वे स्वयं शिक्षित व्यक्ति न थे। काम-काज के लायक हिंदी जानते थे। दूकान का सारा काम वे मुंडी में करते थे। अतः जब वे अमरनाथ के कमरे में आकर आराम कुर्सी पर बैठते, तो एक प्रकार के सुख का अनुभव करते। कभी-कभी कमरे में घूमते हुए वे उसकी पुस्तकों को अपने हाथ से छूते और पुलकित हो उठते। कभी-कभी वे किसी पुस्तक को निकालकर देखते और थोड़ी देर में उसे फिर वहीं रख देते। ऊपर से क्योंकि सब कुछ दिखाई देता था; अतः विद्यावती उन्हें कभी-कभी वहीं से टोकती : क्या कर रहे हो ? दीनबंधु उत्तर देते : कुछ नहीं, कुछ नहीं। वह फिर कहती : उसकी कोई चीज़ इधर, उधर मत करना। नीचे से उपनिषदों की आत्मा-सा उत्तर आता : नहीं, नहीं।

दीनबंधु कभी-कभी अमरनाथ के कमरे के आगे कुर्सी डालकर बैठ जाते और धूप का आनंद लेते रहते। वहीं उनसे उनके मिलने वाले आ जाते। कुछ तो उनकी अवस्था के लोग उनमें रहते ; पर प्रायः गरीब लोगों की भीड़ वहाँ लगी रहती। सच बात यह है कि दुर्बल होने पर भी दीनबंधु से प्रेत-विद्या का चक्कर दूर नहीं हुआ था। रोग-शोक होने पर पास-पड़ोस के लोगों को जिन्हें इस बात का पता चल गया था, वे कुछ न कुछ बताते रहते और इनमें से बहुतों को लाभ भी हो जाता था। किसी को वे टोटका-टमना बताते, किसी पर हाथ फेर देते, किसी को प्रसाद बाँटने के लिए कह देते। वे किसी से कुछ भी स्वीकार नहीं करते थे; अतः इस प्रकार के व्यक्तियों की संख्या बढ़ती ही चली जाती थी। पहले वे किसी के आने पर अपने कमरे के सामने आँगन में आकर जो उनसे बन पड़ता कर देते थे। विद्या को इस बात का पता चला तो उसने उन्हें टोका। पर पं० दीनबंधु

इसे उपकार का काम समझते थे; अतः विद्या के झुँझलाने का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। विद्या ने नीचे का दरवाजा बंद कर दिया। दीनबंधु में इतनी शक्ति नहीं थी कि विद्या को अप्रसन्न करके रोगियों को वे वहाँ बुला सकें। पर उन्होंने अपनी आत्मा के संतोष के लिए दूसरा रास्ता निकाल लिया। अमरनाथ के कॉलेज जाने के उपरांत वे उसके कमरे में आ जाते और चुप से जो जिसे बतलाना होता बतला देते।

नीचे से जब वे आवाज़ देते—बेटी, तो उमा समझ जाती कि पिता जी उसे पुकार रहे हैं और वह सौ काम छोड़कर उनका हुक्का भरकर दे आती थी। उमा विवाह के प्रारंभिक दिनों में सास और ममिया-सास से तो पर्दा करती थी; लेकिन पहले दिन से ही वह पं० दीनबंधु के सामने घूंघट नहीं काढ़ती थी।

एक दिन दीनबंधु ने उमा से कहा, "बेटी एक कंडे पर आग रखकर तो दे जा।"

"हुक्का मैंने अभी तो भरा है, पिता जी।"

"जाड़े के दिन हैं। आग जल्दी ठंडी हो जाती है।"

"आप जब भी आवाज़ देंगे, मैं पिता जी चिलम दोबारा भर कर आपको दे जाऊँगी।"

"नहीं बेटी, तुझे इतना लंबा ज़ीना चढ़ना उतरना पडता है। मैं तुझे बहुत कष्ट देता हूँ।"

"मैं क्या आपकी बेटी नहीं हूँ? ऐसी बात आप क्यों कहते हैं?"

"तेरी सास नाराज़ होती हैं......."

सास का नाम सुनकर उमा चुप हो गई। वह कंडे पर आग देकर ऊपर चली चली गई।

नीचे रहने पर भी पं० दीनबंधु को दो-एक बार ऊपर आना पड़ता था। इस घर में स्नानगृह और शोचालय ऊपर ही थे। दीनबंधु जब ऊपर जाते तो हर बार एक-दो सूखे कंडे वे अपने साथ नीचे ले आते। एक दिन जब उमा अपने मन से उनका हुक्का भरने नीचे आयी, तो उसने देखा

बरामदे में पं० दीनबंधु कंडों की आग में कोई दवा फूंक रहे हैं। विद्या उस दिन कहीं कीर्त्तन में बाहर चली गयी थी। उमा ने पूछा : यह क्या कर रहे हैं पिता जी ? दीनबंधु ने कहा : बहुत बड़ा काम कर रहा हूँ बेटी। बहुत आग्रह करने पर पं० दीनबंधु ने बतलाया : यह साँस के रोग की दवा है। लोग हज़ारों रुपया खर्च करने पर भी ठीक नहीं हो पाते। मैं उन्हें मुफ्त में ठीक करूँगा। उमा जब ऊपर जाने लगी तो दीनबंधु ने उसे अपने पास बुलाया और धीरे-से कहा : अपनी सास से मत कहना बेटी। उमा ने आश्वासन दिया : नहीं पिता जी। लेकिन जब दूर-दूर से साँस के रोगी आने लगे तो सास से यह बात कहाँ तक छिपी रहती। एक दिन जब दीनबंधु खाना खाने, ऊपर आये तो विद्या उनसे बहुत अप्रसन्न हुई।

"यह तुमने क्या भीड़ लगा रखी है ?" उसने आवेश में आकर पूछा।

"इसमें तुम्हारी हानि क्या है ?" पं० दीनबंधु ने पूछा।

विद्या ने दूसरा प्रश्न किया, "इसमें हमारा लाभ क्या है ?"

"दस आदमियों का भला होता है। हमारा खर्च नहीं होता।"

"यही तो बुरी बात है।" विद्या ने कहा।

"क्या बुरी बात है ?" दीनबंधु ने पूछा। बात उनकी समझ में सचमुच नहीं आयी थी।

"परसों जमुना ग्वालिन तुम्हारे पास अपने बीमार लड़के को लेकर आयी थी न ?"

"आयी तो थी।" दीनबंधु ने स्वीकार किया। विद्या को जमुना के आने का पता चल गया, इस बात पर दीनबंधु आश्चर्य कर रहे थे।

"उसका लड़का एक महीने से बीमार था ?"

"था तो।"

"उसका पेट फूल गया था और फूलता ही चला जाता था और वैद्य-हकीम सब उसे जवाब दे चुके थे और उन्होंने कहा था कि यह दो दिन से अधिक नहीं चल सकता।"

"कहा होगा। उससे मुझे क्या लेना-देना है ?"

"अब वह कहती फिरती है कि मैं पंडित जी के पास गई। उन्होंने ज़रा सी गंगा-रज लेकर अपने हाथ से उसके पेट पर मल दी और माशे भर उसके मुँह में डाल दी। मैं घर लौट कर आई तो लड़के को बहुत ज़ोर का एक दस्त हुआ और उसका फूला हुआ पेट धीरे-धीरे ठीक हो गया और अब वह लड़का गलियों में दौड़ता फिरता है......"

"उसने लड़के को लाकर मेरे पैरों पर डाल दिया और रोने लगी। मुझसे नहीं देखा गया। मैं क्या करता? क्या करता मैं?" दीनबंधु अधीर होकर बोले।

"इसका परिणाम भी समझते हो?"

उमा पास मे ही खड़ी थी। उसने कहा, "कोई बहुत संकट मे ही किसी के पास आता है माता जी। इसमें तो कोई बुराई नहीं है।"

विद्या ने झल्लाते हुए कहा, "बुराई नहीं है ? ऐसी दो-चार घटनाएं भी अपढ़ लोगों में फैल गई तो कल को वे मुर्दे लाकर मेरे दरवाज़े पर रखेंगे और इनसे कहेंगे, इन्हें अच्छा करो। कर देंगे ये अच्छा?"

पं० दीनबन्धु ने समझ लिया बात बढ़ने वाली है। अपनी पत्नी को समझाते हुए वे बोले, "लेकिन छोटे-मोटे रोग या भूत-प्रेत की बाधा और बात है, मृत्यु और बात। जन्म-मरण ईश्वरीय विधान है। उसमें कोई क्या कर सकता है?"

"नहीं। यह सब कुछ मैं नहीं चाहती। आज से यह सब बन्द।"

"हाँ हाँ, सब बन्द।"

"मुझे तुम्हारा विश्वास नहीं। साँस के रोग वाली दवा कहाँ है? मुझे लाकर दो।"

"वह तो बहुत थोड़ी बची है। उसे मैं फेंक दूँगा।"

विद्या ने अपना निश्चय बताते हुए कहा, "अच्छा, तुम नीचे जाओ। आज के बाद मैंने किसी प्रकार के किसी भी रोगी को तुम्हारे पास देखा तो मैं तुम्हें इतनी बड़ी सौगन्ध दूँगी कि फिर तुम स्वयं कुछ नहीं कर पाओगे।"

दीनबन्धु ने ज़ीने की ओर पैर बढ़ाते हुए कहा, "नहीं, नहीं, ऐसी सौगन्ध तुम मुझे मत देना। अब मैं किसी से कोई सम्बन्ध नहीं रखूंगा।"

उस दिन से पं० दीनबन्धु बहुत उदास रहने लगे। धीरे-धीरे लोगों का आना-जाना कम हो गया। इन लोगों के बीच दीनबन्धु का मन लगा रहता था। वृद्धावस्था में भी व्यस्तता के जो पल उन्हें मिले थे, उससे वे एक प्रकार के निर्मल आनन्द की अनुभूति अपने मन में करते थे। संध्या-काल में जाड़ों की धूप-सा यह कपूरी आनन्द अब उड़ गया था। प्रत्येक व्यक्ति की जीवन की सार्थकता कहीं न कहीं निहित रहती है। पं० दीनबन्धु को अपना जीवन अब सममुच फीका और सारहीन लगने लगा।

दीनबन्धु को अब भी कोई रोग नहीं था; लेकिन वे दिन पर दिन दुर्बल होने लगे। वे प्रायः चुप रहते। उमा ने इस बात को लक्ष्य किया। वह उनके पास आयी और बोली : पिता जी, आपको जब भी ऊपर आना हो, तो मुझे आवाज़ दे लें। और वे जब ऊपर जाते, उमा उन्हें ज़ीने में हाथ पकड़ कर लाती और उनका हाथ पकड़कर उन्हें लिटा आती। विद्या इधर उनसे जितनी उदासीन हो गयी थी, उमा उतनी ही उनकी चिन्ता करने लगी थी। खाना अब वह उन्हें वहीं दे आती थी। पानी की बाल्टी भरकर वह नीचे ले जाती और जब तक वे स्नान नहीं कर लेते थे, वहीं खड़ी रहती थी। जाड़ों मे गरम पानी मिलाकर रख आती और उसका मन होता तो उनकी कमर मलने लगती। पं० दीनबन्धु मना करते, तब भी वह नहीं मानती थी। हुक्का इधर वे अधिक पीने लगे थे; लेकिन उसकी आग उमा ने कभी ठंडी नहीं होने दी। जाड़ों की रात में कभी-कभी वह चुप से नीचे उतरती और उन्हें रज़ाई उढ़ा आती। दीनबन्धु चौंककर कभी-कभी पूछते; कौन है? फिर स्वयं ही उत्तर देते। मेरी बेटी होगी। और कौन है जो बुड्ढे आदमी की इतनी चिन्ता करेगा।

दोपहर कब की ढल चुकी। संध्या होने में अभी थोड़ी देर थी।

नीचे से आवाज़ आई, "बेटी!"

उमा नीचे गई। पं० दीबन्धु का हुक्का उठाने लगी। उसने अपने पिता

से कहकर दिल्ली से बड़ी नली वाला एक सुन्दर-सा ऊँचा हुक्का उनके लिए मँगवा दिया था। उमा ने चिलम उठाई तो दीनबन्धु ने पूछा, "आग है ?"

"बुझ-सी रही हैं, पिता जी । राख में थोड़े कोयले होंगे। मैं उन्हें दहका लूँगी ।"

"नहीं, रहने दो। अब हुक्का नहीं पीयेंगे। हमारा समय हो गया ।"

"ऐसी बात नहीं करते पिता जी । अभी आप बहुत दिन जीयेंगे ।"

"बहू !" पं० दीनबन्धु का स्वर कुछ भारी-सा था। वे उमा को प्राय: बेटी कहकर ही पुकारते थे। बहू उसे कभी-कभी कहा करते थे। उमा ने चौंककर उनकी ओर देखा। मृत्यु की छाया उमा ने कभी देखी नहीं थी। उसके सामने अभी तक किसी की मृत्यु हुई ही नहीं थी। वह यह भी विश्वास नहीं करती थी कि उसके ससुर की मृत्यु होने वाली है। दीनबन्धु की अवस्था अवश्य अधिक थी। दुर्बल वे लगते थे; लेकिन उन्हे कोई रोग नहीं था। इस समय कमरा और दिनों की अपेक्षा कुछ अधिक उजला लग रहा था। उमा को किसी प्रकार का भय नहीं लगा ।

"बहू !" दीनबन्धु का स्वर कुछ काँपा। उसमें एक प्रकार की विह्वलता थी।

उमा अपने कपड़ों का ध्यान किये बिना कमरे के फ़र्श पर बैठ गई। "क्या बात है कि पिता जी ?" उसने पूछा।

"बहू, मुझे इस बात का बहुत पछतावा है कि मैं अपने बच्चों के लिए कभी कुछ कर नहीं सका। मेरी कितनी कामनाएँ थीं। एक भी तो पूरी नहीं हुई। मा-बाप अपने बच्चों के लिए ज़मीन, जायदाद, रुपया-पैसा छोड़ जाते हैं। और तो क्या, मैं तेरे लिए अपने हाथ से कभी एक धोती भी नहीं ला सका। लड़के को उसकी शक्ति पर ही छोड़े जा रहा हूँ। मैं कुछ करता भी; लेकिन तेरी सास ने..."

"ऐसे नही सोचते हैं पिता जी। आपके आशीर्वाद से फिर सब कुछ हो जायगा।"

"सो तो है ही" उन्होंने फिर कुछ रुककर पूछा, "सुकुमार कहाँ है ?" सुकुमार नाती का नाम था। अब वह चार वर्ष का हो गया था।

"संतोष ले गयी है पिता जी। बुलाऊँ उसे ?"

"नहीं, वह वहीं ठीक है। यहाँ आकर डरेगा। उसे दो-चार दिन अभी वहीं रहने देना।"

"आप ऐसी बात करेंगे तो मैं चली जाऊँगी, पिता जी।"

दीनबन्धु चुप रहे। थोड़ी देर में उन्होंने ने कहा, "अपनी सास को पुकारो।"

विद्यावती नीचे आ गयी। "क्या बात है ?" उसने पूछा।

"लड़के को बुलाओ।" वे बोले।

अमरनाथ ऊपर बैठा कुछ लिख रहा था। तुरन्त नीचे आ गया। उसने मा और पत्नी की ओर देखा।

विद्यावती की आँखों से कुछ छिपा न रहा। उसने अपने पति से पूछा, "लड़के से कुछ कहना है ?"

"नहीं।"

"मुझसे ?"

"कुछ नहीं।"

पं० दीनन्धु ने किसी की ओर देखा नहीं। लेकिन उनकी आँखें एक दृश्य देख रही थीं—

गाँव के एक कुएँ पर तेरह-चौदह वर्ष की एक लड़की पीतल के कलश में जल भर रही है—लम्बा क़द, गेहुआँ रंग, बड़ी-बड़ी आखें...दीनबन्धु प्यासे है।

वे आगे बढ़कर कहते हैं, "प्यास लगी है।"

लड़की पूछती है, "कौन ज़ात हो ?"

दीनबन्धु हँसकर उत्तर देते हैं, "शूद्र।"

"जा, मैं शूद्र को पानी नहीं पिलाती। मेरा कलश अशुद्ध हो जायगा।"

दीनबन्धु आगे बढ़ जाते है। लड़की आवाज़ देती है, "ओ !"

दीनबन्धु लौट आते हैं। लड़की उन्हें पानी पिलाते हुए पूछती है, "तुमने झूठ क्यों बोला ?"

"कैसा झूठ ?"

"तुम शूद्र नहीं हो सकते ।"

"तो कौन हूँ ?"

"कोई हो, शूद्र नहीं हो सकते ।"

स्वप्न टूट गया। दीनबन्धु मुस्कराये । पत्नी, बहू, बेटे की समझ में कुछ नहीं आया।

"अब हम जायँगे।" दीनबन्धु ने विद्या की ओर देखते हुए कहा ।

उमा ने ससुर के पैरों पर सिर रख दिया और रोने लगी। पं० दीनबंधु ने अपना हाथ बढ़ाकर उसके सिर पर रखा और कंपित वाणी मे बोले···

अचल होउ अहिवात तुम्हारा,
जब लगि गंग-जमुन-जल-धारा ।

उमा और भी फूटकर रोने लगी। विद्या ने उसे हिलाते हुए कहा, "बहू, ये तो गये। तू हट।" लड़के से बोली, "इन्हें, नीचे लो।"

२२

कॉलेज में संस्कृत और हिन्दी का एक सम्मिलित विभाग था और उसके अध्यक्ष थे पं० उदयशंकर पाठक। हिन्दी के अध्यापन के लिए अब तीन लेक्चरर थे—पं० उदयशंकर, त्रिभुवन शास्त्री और अमरनाथ। अमरनाथ को इस बात की प्रसन्नता थी कि उसे एम० ए० में आधुनिक काव्य और गद्य पढ़ाने का काम सौंपा गया था। पाठक जी पुराने ढर्रे के आदमी थे और केशवदास को हिन्दी का सबसे बड़ा कवि समझते थे। शास्त्री जी की आधुनिक साहित्य में कोई गति न थी। अतः जब अमरनाथ ने अपनी ओर से आधुनिक साहित्य में अपनी अभिरुचि प्रदर्शित की तो पाठक जी

और शास्त्री जी दोनों बहुत प्रसन्न हुए। अमरनाथ को जब कामायनी, साकेत, प्रियप्रवास, गोदान, चन्द्रगुप्त और चितामणि पढ़ाने का अवसर मिला तो उसके अन्तःकरण का आनन्द जैसे फूट कर शत-शत धाराओं में उमड़ पड़ा।

दूसरे वर्ष के प्रारम्भ में पाठक जी ने यह निर्णय किया कि हम तीनों में से कोई पूरे पेपर को नहीं पढ़ायेगा। कामायनी दी उन्होंने अमरनाथ को, साकेत शास्त्री जी को और स्वयं लिया प्रियप्रवास। ऐसे ही प्राचीन और मध्यकालीन काव्य में कबीर दिया शास्त्री जी को, जायसी की पद्मावत अमरनाथ को और स्वयं पढ़ाने लगे सूर का भ्रमरगीतसार और तुलसी की विनय-पत्रिका। अमरनाथ को इसमें भी कोई आपत्ति नहीं थी। लेकिन यह बात उसकी समझ में नहीं आयी कि ऐसा हुआ क्यों। शास्त्री जी कुछ सरल स्वाभाव के व्यक्ति थे। एक दिन अमरनाथ ने उन्हें एकांत मे पकड़ा।

"शास्त्री जी आप तो हृदय से भक्त हैं। विद्यापति के शृंगारी पद पढ़ाने में आपको उलझन तो होती होगी ?"

"क्या करें भाई, विभाग के अध्यक्ष की आज्ञा है।"

"यह हेर-फेर आपने कराया क्यों शास्त्री जी ?"

"अरे भाई, आपको शायद पता नहीं है। विद्यार्थियों का जो परीक्षा-फल आया है उसमें आधुनिक साहित्य में सभी को प्रथम श्रेणी के अंक मिले हैं, मध्यकालीन काव्य में द्वितीय श्रेणी के और प्राचीन काव्य में तृतीय श्रेणी के। इससे पाठक जी जो प्राचीन-काव्य पढ़ाते थे विद्यार्थियों की दृष्टि में कुछ गिर गये हैं। यही कारण है कि उन्होंने पूरा पेपर इस वर्ष किसी को दिया ही नहीं। अब यह पता ही नहीं चलेगा कि कौन कैसा पढ़ाता है। मुझे तो न विद्यापति पसन्द है और न बिहारी।"

"यह बात है ?"

"बिल्कुल यही।"

एक दिन पाठक जी कहीं छुट्टी पर गये थे; अतः अमरनाथ के खाली घंटे में लड़कियों ने उसे घेर लिया। कॉलेज में लड़के-लड़कियाँ साथ-

साथ पढ़ते थे; लेकिन अवकाश के समय बैठने के लिए लड़कियों का अपना अलग कमरा था। बहुत आग्रह करने पर अमरनाथ उनके कमरे में चला गया। वहाँ पहुँचते ही चारों ओर से उस पर प्रश्नों की बौछार हो उठी।

"काव्य की उपेक्षिताएँ दो हैं कि तीन ?" सरनप्यारी सेठ ने पूछा।

"प्रियप्रवास को पढ़ने से यह कैसे पता चलता है कि उपाध्याय जी की राधा इस युग की देन है ?" कमला अवस्थी ने प्रश्न किया !

"उर्मिला ने चौदह वर्ष अपने उपवन में ही क्यों बिता दिए ? क्या वह कुछ और नहीं कर सकती थी ?" रजनी शुक्ला पूछ बैठी।

"भई, ये प्रश्न तुम अपने प्रोफेसरों से पूछो।" अमरनाथ ने कहा।

"वे तो कोरे अर्थ बता देते हैं, लिखवाते तो कुछ है ही नहीं।" करुणा गुप्ता बोली।

"अपने अध्यापकों की इस तरह बुराई नहीं करते," अमरनाथ ने टोका।

"हाँ जी, हो सकता है इनमें से कोई पर्चा पाठक जी का हो और उन्हें पता चले तो वे फेल कर दें।" सरनप्यारी बोली।

"अपनी यूनीवर्सिटी का पर्चा नहीं हो सकता उनका। पर्चे सब बाहर के होते हैं।" पुष्पा भटनागर ने कहा।

"मुझे पता चल जाय कि अपने पाठक जी का पर्चा है तो मैं तो पूरे साल कुछ न करूँ। मज़े से पास हो जाऊँ।" सुधा शर्मा कहने लगी।

"क्या करो सुधा ?" कमला ने पूछा।

"पूरी कापी में लिख दूँ—केशवदास...आचार्य केशवदास...महाकवि केशवदास...।"

लड़कियाँ हँस पड़ीं।

"आपको कुछ पूछना-ताँछना नहीं है। अब आप लोग जाइए।" अमरनाथ ने कहा। फिर कुछ सोचकर बोला, "आप लोगों का तो यह कमरा ही है। आप लोग कहाँ जाइयेगा, मुझे ही जाना होगा। लेकिन एक

बात मुझे लगती है कि आप सब मिलकर मुझे निकलवाने पर तुली हुई हैं।"

लड़कियों ने कहा, "आप चले जायँगे, तो फिर हम सब भी कॉलेज छोड़ देंगी।'

"ऐसी बात नही कहते...।" इतना कहकर अमरनाथ कमरे से बाहर चला गया।

इन लड़कियों में से पुष्पा भटनागर पाठक जी के पड़ोस में ही रहती थी। इसने ये बातें कुछ नमक-मिर्च मिलाकर उनसे कह दीं।

दूसरे दिन अमरनाथ अपनी क्लास पढ़ाकर आ रहा था, कि सामने पाठक जी पड़ गए। उसने हाथ जोड़कर नमस्ते की तो पाठक जी ने उसे बीच में ही रोक लिया।

"सुना है आजकल आप लडकियों को बहुत प्रोत्साहन देने लगे हैं।" पाठक जी ने गंभीर होकर कहा।

अमरनाथ का माथा ठनका। वह बोला, "कल आप तो थे नहीं। कॉलेज की कुछ लड़कियाँ मेरे पास आई थीं। पता चला वे सब मिलकर एक महिला-परिषद की स्थापना करना चाहती हैं। आपको उसका अध्यक्ष बनाना चाहती हैं?"

"मुझको?" पाठक जी ने चकित होकर पूछा।

"जी हाँ! वे आपसे बहुत डरती हैं; अतः मुझसे कहने आई थीं कि मैं आपसे उनकी ओर से प्रार्थना कर दूँ।"

"तो मैं उसमे क्या करूँगा?"

"बात यह है पाठक जी कि लड़कियाँ स्वभाव से कुछ शरारतिन होती हैं, अतः उन्हें एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है जिसकी विद्वता पर उन्हें विश्वास हो, जिसका वे आदर करती हों और जिसके अनुशासन में वे कुछ कर सकें।"

"तो आपने क्या कह दिया?"

"मैंने कहा कि ये बातें यहाँ कहने की नहीं हैं। आप सब मिलकर पाठक

जी के घर जाइए और उनसे प्रार्थना कीजिए। परिषद की नियमावली आप उन्हीं से ड्राफ़्ट कराइए।"

"तो वे अब मेरे घर पर हमला करेंगी ?"

"इस रविवार के प्रातःकाल वे आपसे प्रार्थना करने आयेंगी। उनमे से कई लड़कियाँ कह रही थीं कि सुबह की चाय आपके यहाँ ही पियेंगी।"

पाठक जी कुछ कन्जूस स्वभाव के आदमी थे। पहले तो वे किसी से चाय के लिए पूछते नहीं थे। पूछते भी थे तो चाय भीतर से ग्लास में बन कर आती थी—चाय चीनी सब गड्डमगड्ड। बोले, "जी नहीं, आज शाम को ही उन्हें समझाइए कि मेरे घर किसी को आने की आवश्यकता नहीं है। मेरी पत्नी का स्वास्थ्य ख़राब है।"

"लेकिन इसके लिए तो उनसे अलग से मिलना होगा ?"

"इस बार मैं आपको आज्ञा देता हूँ।" फिर धीरे से बोले, "देखिए, विद्यार्थियों को बहुत मुँह लगाना अच्छा नहीं—विशेष रूप से लड़कियों को। अब यही देखिए न, आपसे कुछ और कहती हैं, मुझसे कुछ और।"

"मैं ख़्याल रखूंगा।" इतना कहकर अमरनाथ आगे बढ़ गया।

प्रभातकाल था। अमरनाथ डाक्टर के पास जा रहा था। पिछली रात सुकुमार को ज्वर आ गया था और अभी तक उतरा नहीं था। बाजार में देखा पाठक जी के हाथ में एक लम्बा थैला है और वे तरकारी ख़रीद रहे हैं। आँख बचाकर निकलना असंभव था।

पाठक जी कुँजड़िन से झगड़ रहे थे—अरी दो हरे मिर्च और डाल। थोड़ा हरा धनिया और दे। घास-पात के लिए झगड़ा करती है।

—अये हये! आप भी लाला जी चार पैसे की सब्जी लेंगे और दुनिया भर की चीज़ें माँगेंगे।

पाठक जी ने अमरनाथ की ओर देखा। अमरनाथ प्रायः सूट में रहता था। इस समय धोती-कुर्ते में था। प्रसन्न होकर बोले, "आहा! आप आज हिन्दी-अध्यापक से लगते हैं। धोती-कुर्ते में आप कितने शोभन लगते हैं,

यह आपने कभी सोचा। आज से आप इसी वेष-भूषा में रहा कीजिए। दूर से ही देखकर लगता है कि कोई लेखक चला आ रहा है।"

अमरनाथ को पता था कि पाठक जी को उसका सूट पहनकर कॉलेज आना अच्छा नहीं लगता। उसने सोचा आज स्थिति को स्पष्ट कर दिया जाय। बोला, "पहले मैं धोती-कुर्ते में ही रहा करता था पाठक जी; लेकिन क्या कहूँ एक दिन दुर्घटना हो गई...।"

पाठक जी चौंके। बोले, "कैसी दुर्घटना भाई ? हम भी सुनें।"

थैला काफ़ी भारी था। उसमें सब्जी ही नहीं, कपड़े धोने के साबुन की दो लम्बी छड़ें और सातवें बच्चे के लिए टीन की एक छोटी-सी स्लेट भी थी। पाठक जी ने अमरनाथ की ओर देखकर कई बार आँ-ऊँ कीं; पर उसने थैला पाठक जी के हाथ में ही रहने दिया। पाठक जी दायाँ-बायाँ करते रहे। अमरनाथ ने सुनाया, "कानपुर में मेस्टन रोड पर एक बहुत प्रसिद्ध फोटोग्राफर हैं—मि० सहगल। उनकी दूकान पर मैं प्रायः जाया करता था। वहाँ उनकी एक छोटी बच्ची बैठी रहती थी। नाम था मंजु। उससे मैं कभी-कभी खेलता रहता था। एक दिन उसने मुझे अपने घर खाना खाने बुलाया। खाना नीचे बन रहा था और मैं तथा सहगल साहब ऊपर की मंजिल में एक कमरे में बैठे थे। मिसेज़ सहगल खाना लायीं तो पाँच-छः साल की मंजु रूठकर बैठ गयी।"

मैंने पूछा; "क्या है मंजुटा ?"

मंजु ने कहा, "खाना हम लायेंगे।"

सहगल साहब ने अपनी पत्नी से कहा, "थाल ले जाओ। आज मंजु ही खाना खिलायेगी।"

मंजु अपनी मा के साथ चली गयी। मकान की सीढ़ियाँ बहुत छोटी थीं; अतः मैं डर रहा था कि कहीं वह गिर न जाय। उसने एक-एक चीज़ सामने लाकर रख दी। पिता ने कहा—वह उनके साथ खाना खाय; लेकिन वह मेरे थाल में से उठाकर खाने लगी।

अध्ययन समाप्त करके जब मैं घर लौटने लगा तो सहगल साहब से

मिलने गया। उन्होंने कहा, "मंजु को पता चल गया है कि तुम आज जाने वाले हो; अतः उससे मिलकर जाना होगा।"

मैं स्टेशन चला गया और भूल गया।

भूल इसलिए भी गया कि स्टेशन के पास एक प्रसिद्ध धर्मशाला है। उसमें मेरे एक मित्र ठहरे हुए थे। उनसे मिलना था। सामान मैंने वेटिंग-रूम में रख दिया और उनसे मिलने चला गया। जाड़ों के दिन थे। मैंने एक नया कंबल खरीदा था। धोती-कुर्ते पर मैं उसी को ओढ़े हुए था।

धर्मशाला में पहुँचकर मैंने चौकीदार से कहा, "सात नंबर के कमरे में मि० सारस्वत ठहरे हुए हैं। ज़रा उन्हें तो बुलाओ।"

बुड्ढे चौकीदार ने मुझे देखा और लापरवाही से कहा, "यहाँ कोई सारस्वत-वारस्वत नहीं हैं।"

"हैं भाई। ज़रा देखो तो।"

"दिमाग न खाओ। कह दिया नहीं हैं।"

"मैं देख लूँ ?"

"नहीं।"

चौकीदार किसी से बात कर रहा था,—"आजकल धर्मशाला में बहुत चोरियाँ हो रही हैं। कल रात भी एक चोरी हो गई। चोरों की कोई अलग शकल थोड़े ही होती है। ऐसे ही लोग होते हैं...। मना कर रहे हैं और घुसे चले जा रहे हैं।"

मुझे गहरा आघात लगा। तो इस कम्बल के कारण मुझे चोर समझ लिया गया।

गैलरी में अँधेरा था। चौकीदार ने मुझे सचमुच चोर समझ लिया था। मैं तुरंत स्टेशन लौटा और सूट पहनकर दोबारा धर्मशाला आया।

बुड्ढे को डाटकर मैंने कहा, "चौकीदार !"

"जी हुजूर !" चौकीदार ने सलाम करके कहा।

"यहाँ ऊपर कहीं टूंडले के एक मि० सारस्वत ठहरे हुए हैं। उनसे कहो, एक साहब मिलने आये हैं।"

"अच्छा हुजूर।"

"लेकिन तुम पता कैसे लगाओगे ? मुझे जल्दी है।"

"हुजूर, मैनेजर से पूछता हूँ।"

बुड्ढा चलने लगा, तो मैंने उसे टोका। पूछा, "चौकीदार मुझे पहचानते हो?" चौकीदार मेरी ओर देखने लगा। बोला, "इससे पहले तो हुजूर को कभी देखा नहीं।"

"याद करो।"

"नहीं याद पड़ता हुजूर।"

"आध घंटे पहले की बात है। जिसे तुम 'हुजूर' कह रहे हो, उसी को तुमने 'चोर' कहा था।"

बुड्ढा हँसने लगा, "एक बात का जवाब देंगे हुजूर ?"

मैंने कहा; "हाँ, पूछो।"

"यह तो धर्मशाला है हुजूर। यहाँ चोर भी आते हैं और साहूकार भी। सब थोड़ी देर रुककर चले जाते हैं। मेरे पास इस बात की क्या पहचान है कि कौन चोर है, कौन शाह ? मैं तो आदमी को कपड़े से ही पहचानता हूँ। मैं बुड्ढा हुआ हुजूर। मेरी एक बात जिंदगी भर याद रखें—दुनिया में आदमी आदमी को उसके कपड़ों से पहचानते हैं।"

मुझे उत्तर देने की आवश्यकता नहीं थी। उत्तर बुड्ढे ने स्वयं ही दे दिया था।

मैंने बुड्ढे के हाथ पर एक रुपया रखा और लौट आया। चलते समय मैंने कहा, "मैं थोड़ी देर में लौटूंगा चौकीदार।"

मुझे मंजु की याद आ गई थी।

दूकान सहगल साहब नौ बजे ही बंद कर देते थे। मुझे पूरा विश्वास था मैं व्यर्थ ही जा रहा हूँ; लेकिन दूर से रोशनी देखकर कुछ आशा बँधी।

"आपको बहुत कष्ट हुआ।" मैंने सहगल साहब से क्षमा माँगी।

"मुझसे क्षमा माँगने की आवश्यकता नहीं। पहले अपनी मंजु को मनाइए। वह उधर मेज़ पर बैठी है। उसने दूकान बंद ही नहीं करने

दी। मैंने कहा भी कि बहुत देर हो गयी है, अब नहीं आयेंगे; लेकिन उसको न जाने कैसा विश्वास था कि उठने का नाम नहीं लिया। बोली: ज़रूर आयेंगे। मैंने पूछा—और नहीं आये तो। तो मैं यहीं बैठी रहूँगी, इसने जवाब दिया।"

सुनकर मेरे आँसू निकल आये। बच्चों का भी कैसा स्नेह होता है। ऐसे स्वर्गीय स्नेह के पल मनुष्य के जीवन में बहुत कम आते हैं।

विश्वास और अविश्वास के दो महत्वपूर्ण पल मैंने उस रात अपने छोटे-से जीवन में देखे थे, पाठक जी।

उस दिन से कपड़ों की ओर मैं थोड़ा ध्यान देने लगा हूँ।"

डाक्टर की दूकान आ गयी थी। अमरनाथ ने हाथ जोड़कर पाठक जी को प्रणाम किया और विदा माँगी।

इसी प्रकार एक रात स्थानीय 'हिंदी सभा' में नवयुवकों का एक कवि-सम्मेलन था। लोगों ने पकड़कर अमरनाथ को उसके संचालन का भार सौंप दिया। उसने देखा आगे की पंक्ति में पाठक जी बैठे हैं। कवि-सम्मेलन के अंत में सभा के मंत्री ने कार्यक्रम के संचालक को धन्यवाद देते हुए उसकी थोड़ी प्रशंसा कर दी। अमरनाथ की उड़ती दृष्टि जो पाठक जी पर पड़ी तो उसने देखा कि उनके चेहरे पर एक रंग चढ़ रहा है, दूसरा उतर रहा है। कवि-सम्मेलन के अंत में पाठक जी ने उसे पकड़ लिया।

"आज का कवि-सम्मेलन तो बहुत सफल रहा।" पाठक जी ने कहा।

"जी हाँ। आपके आशीर्वाद से जनता बहुत प्रभावित होकर लौटी है।"

"सबसे आश्चर्य की बात यह थी कि किसी ने शोर नहीं मचाया। यह यहाँ की प्रथा नहीं है। पिछले कवि-सम्मेलनों में कॉलेज के विद्यार्थी इतना शोर मचाते रहे हैं कि सम्मेलन बीच में ही भंग करना पड़ता था। यह सफलता आपके कारण है।"

"मेरे विद्यार्थी मुझे प्यार करते हैं। यह मेरा सौभाग्य है।"

दोनों चौड़ी सड़क पर निकल आये थे। पाठक जी ने पूछा, "मैंने सुना है आपने थ्यौसौफ़ीकल सोसाइटी जौइन कर रखी है ?"

"जी हाँ।"

"वहाँ व्याख्यान होते हैं ?"

"जी हाँ।"

"उसमे स्त्रियाँ भी रहती हैं ?"

अमरनाथ ने हँसकर उत्तर दिया, "जी हाँ, रहती तो हैं। स्त्रियाँ कहाँ नहीं है।"

"वहाँ जाने से कुछ सार आपके हाथ पड़ा ?"

"हिंदू धर्म के तत्वों की वहाँ बहुत ही उदारता के साथ व्याख्या की जाती है। संसार के जितने श्रेष्ठ धर्म हैं उनके व्यापक सिद्धांतों का समावेश किसी न किसी रूप में मुझे थ्यौसौफ़ी में लगा। सबसे बड़ी बात यह है कि वहाँ कुछ शिक्षित और शिष्ट लोगों से भेंट हो जाती है। यही चीज़ मुख्य है, पाठक जी।"

जैसे किसी गूढ़ रहस्य का उद्घाटन कर रहे हों ऐसे स्वर में पाठक जी ने कहा, "आपको शायद मालूम नहीं, आगरे में वाममार्गियों का भी एक अड्डा है।"

"आपको कुछ पता है उसका ?" अमरनाथ ने पूछा।

"शिव शिव।" पाठक जी ने हाथ उठाकर कहा।

"क्यों पाठक जी, आप इन लोगों से इतने घबराते क्यों हैं ?"

"सुना है इनकी एक 'इनर सर्किल' होती है ?"

"होती तो है पाठक जी।"

"सुना है उसमें बड़े मज़े रहते हैं ?"

"फिर चलिए न एक दिन।"

"मैंने इसीलिए कहा" पाठक जी थोड़ी चिन्ता व्यक्त करते हुए बोले, "आप अभी नवयुवक हैं। कहीं कोई आपको फाँस न ले। अश्लीलता की ओर मन वैसे भी बहुत जल्दी दौड़ता है।"

"जिन्हे आप अश्लील संकेत समझते है, वे सब प्रतीक है पाठक जी।"

"होंगे भाई ''"

दोनों ने अपना-अपना रास्ता लिया।

अमरनाथ को धीरे-धीरे स्पष्ट होता चला गया कि पाठक जी और उसके संस्कार नहीं मिलते, विचार नहीं मिलते। अपने विद्यार्थियों से भी अमरनाथ का अधिक मिलना-जुलना पाठक जी को पसन्द नहीं। अमरनाथ लोक-प्रिय हो रहा है, यह बात उन्हे बिल्कुल नहीं सुहाती। वह अच्छा पढ़ाता है, यह भी वे सहन नहीं कर पाते। क्या हो, वह सोचने लगा। ऐसी दशा मे उसकी नौकरी का बना रहना कठिन है, यह उसे लगने लगा।

और हुआ भी ऐसा ही। पत्रों में विज्ञापन निकला कि कॉलेज के लिए एक अनुभवी लेक्चरर की आवश्यकता है जो हिन्दी और संस्कृत दोनों में एम० ए० हो। विज्ञापन पाठक जी के आग्रह से ही निकला था। अमरनाथ ने जब उनका ध्यान उस ओर आकर्षित किया, तो वे कुछ क्रोध और आश्चर्य के साथ बोले, "ये मैनेजिंग कमेटी वाले भी कैसे लोग हैं कि मुझसे बिना पूछे ही, विज्ञापन निकलवा दिया।" फिर उसे ढाढ़स बँधाते हुए समझाने लगे, "आप क्यों चिन्ता करते हैं? जब तक मैं हूँ, तब तक किसी दूसरे व्यक्ति की नियुक्ति इस स्थान पर हो सके, यह सम्भव ही नहीं है।"

इतने में एक प्रौढ़ से व्यक्ति ने आकर पाठक जी के चरण छुए।

पाठक जी ने आशीर्वाद दिया।

"मैं लक्ष्मीकान्त अग्निहोत्री। बलिया से आ रहा हूँ।"

"बैठिए शास्त्री जी, बैठिए। आपका पत्र मुझे मिल गया था।"

"आपका उत्तर भी मुझे प्राप्त हो गया था।"

"ठीक है, ठीक है।"

शास्त्री जी कोई भेद की बात न कह दें; अतः पाठक जी ने अमरनाथ की ओर संकेत करते हुए कहा, "आप मेरे सहायक अमरनाथ जी!"

अमरनाथ ने खड़े होकर हाथ बढ़ाया; उसका हाथ बढ़ा का बढ़ा ही रह गया। अग्निहोत्री जी ने हाथ मिलाया नहीं। "पाश्चात्य सभ्यता है। हम लोग हाथ नहीं मिलाते, हृदय मिलाते हैं।" शास्त्री जी ने कहा।

अमरनाथ को बात बहुत अच्छी लगी। दूसरे दिन उसने आश्चर्य और दुःख के साथ सुना कि उसके स्थान पर बलिया के पं० लक्ष्मीकान्त अग्निहोत्री की नियुक्ति हो गयी है। बात आग की तरह सारे कॉलेज में फैल गयी।

पाठक जी ने क्लास में प्रवेश किया और उदास होकर बैठ गए।

सामने बैठे एक लड़के ने प्रियप्रवास की एक प्रति उनके आगे रख दी। बोला, "आज आप पुस्तक भूल आये हैं शायद ?"

पाठक जी ने पुस्तक फेंक दी—लेकिन इस प्रकार कि मेज़ से नीचे न गिरे। बोले, "आज पढ़ाने को बिलकुल मेरा मन नहीं है।"

"क्यों, क्या हुआ पंडित जी ?" एक दूसरे विद्यार्थी ने पूछा।

"आज मेरा दाहिना हाथ टूट गया। मेरे प्रयत्न करने पर भी मैनेजिंग कमेटी ने अमरनाथ जी के स्थान पर बलिया के एक घोंघाबसन्त की नियुक्ति कर दी। अमरनाथ जी के आने से कैसे-कैसे सपने मैं सजाने लगा था। आज वे सब नष्ट हो गए। आप लोग जाइए। मैं भी अब घर जाकर सोऊँगा।" पाठक जी ने बहुत दुःखी होते हुए कहा।

लड़कों ने अमरनाथ को घेर लिया। वे स्ट्राइक करना चाहते थे। अमरनाथ ने उन्हें समझाया इससे कोई लाभ नहीं है। उसने अनुभव किया —जिस विभाग का अध्यक्ष अयोग्य हो, वहाँ केवल अयोग्य सहायक ही रह सकते हैं।

२३

कॉलेज छोड़ते समय एक उदासी-सी अमरनाथ के मन में आई। वह अपने विद्यार्थियों को और उनके कारण इस कॉलेज को बहुत प्यार करने

लगा था। उसका उचित स्थान शिक्षा के क्षेत्र में ही था। पढ़ाते समय जिस सुख का अनुभव वह करता था, वह अवर्णनीय था। अपने विद्यार्थी-जीवन में उसकी महत्वाकांक्षाएँ थीं—अच्छा वक्ता, अच्छा लेखक, अच्छा व्यक्ति होना। ये इच्छाएँ किसी डिग्री कॉलेज में लेक्चरर होकर एक साथ ही पूरी हो सकती थीं। शिक्षा समाप्त होते ही उसे बहुत अच्छी नौकरी मिल गयी थी। इसे उसका सौभाग्य ही समझना चाहिए। लेकिन संसार का उसे अनुभव नहीं था। विभाग के अध्यक्ष को वह अपने अनुकूल नहीं कर पाया और जीवन में एक अच्छा अवसर खो बैठा। फिर भी वह निराश नहीं हुआ। उसने इधर-उधर प्रार्थना-पत्र भेजने प्रारम्भ किए।

एक महीने के भीतर इन्टरव्यू के लिए उसे दो स्थानों से पत्र मिले। एक डिग्री कॉलेज था, दूसरा विश्वविद्यालय। वह कल्पना करने लगा—विश्वविद्यालय में उसकी नियुक्ति हो जाय तो बहुत अच्छी बात है; यों डिग्री कॉलेज भी बुरा नहीं रहेगा। जिस नगर में विश्वविद्यालय था, वहीं तो मीरा गयी थी। इस बीच मीरा के कई पत्र आये थे। अमरनाथ ने प्रारम्भ में मीरा से कठोरता का व्यवहार किया था; लेकिन जब उसका विवाह हो गया तो वह कुछ पिघला। मीरा के विवाह में उसके पति से उसका परिचय करा दिया गया था। मीरा के पिता के समान उसका पति भी साड़ियों का व्यापारी था—साहित्य और कला से बहुत दूर। मीरा साहित्य-चर्चा के बहाने अमरनाथ को पत्र लिखती रहती थी। पति ने पत्र-व्यवहार में कभी बाधा नहीं डाली। स्वयं संयत रहते हुए भी अमरनाथ ने मीरा को बहुत छूट दे रखी थी। वह जो चाहे लिख सकती थी। अमरनाथ जानता था, एक ओर के प्यार का कोई अर्थ नहीं होता। इधर अपने पत्रों में मीरा ने अमरनाथ के आने पर बहुत ज़ोर दिया था। वह उससे मिलने को बहुत आकुल है और एक बार उसे देखना चाहती है; ऐसी भावना उसने अपने कई पत्रों में व्यक्त की थी। पत्र कोमल से कोमलतर होते जा रहे थे। पत्रों में व्यक्त मधुरता, कोमलता और भावुकता से प्रभावित होकर अमर-

नाथ के मन में कई बार आया कि वह मीरा को एक बार देख आवे। लेकिन बात कहीं बढ़ न जाय, इस आशंका से उसने अपनी इच्छा को कभी कार्य-रूप में परिणत नहीं किया। अब जब उसे इन्टरव्यू का पत्र मिला तो मीरा से भेंट करने की सम्भावना सामने खड़ी हुई। उसने उसे निःसंकोच भाव से लिखा कि वह एक आवश्यक काम से उसके नगर में आ रहा है और एक दिन के लिए उसके यहाँ ठहरेगा। अत्यन्त उमंग से भरा हुआ मीरा का पत्र लौटती डाक से मिला जिसमें लिखा था: आप आइए तो। एक सप्ताह से पहले मैं आपको जाने न दूँगी। मेरा वश चले तो...।

अमरनाथ का पहला इन्टरव्यू 'गुप्ता डिग्री कॉलेज' में था। इन्टरव्यू बोर्ड में वृद्ध संस्थापक महोदय, कालेज के प्रिंसिपल मि० अग्रवाल और मैनेजिंग कमेटी के दो सदस्य थे।

योग्यता और अनुभव के सम्बन्ध में प्रश्न होने के उपरान्त संस्थापक महोदय ने कहा; "आप अपने नाम के आगे कुछ नहीं लगाते?"

"जी नही" अमरनाथ ने अत्यन्त विनम्रता से उत्तर दिया।"

"वैसे आप हैं कौन?"

अमरनाथ के मन में आया कह दे अग्रवाल हूँ; लेकिन उसने अपने को संयत करके कहा, "ब्राह्मण हूँ।"

"अच्छा है। विद्या ब्राह्मणों की शोभा है।"

अमरनाथ चुप रहा। वृद्ध महाशय के सामने उसकी तीनों पुस्तकें रखी थीं। वे उन्हें उलटने-पलटने लगे। बोले, "आपकी पुस्तकें मुझे मेरे लड़के ने पढ़कर सुनाई थीं। आप प्रेम पर कविता लिखते हैं?"

अमरनाथ ने उत्साहित होकर उत्तर दिया, "जी हाँ।"

"क्या आप इस बात के लिए तैयार हैं कि भविष्य में आप प्रेम संबंधी कविताएँ न लिखें?"

"जी···जी···यह तो कठिन मालूम देता है।"

"मुझे स्पष्ट उत्तर दीजिए।"

"क्या मैं जान सकता हूँ कि इसमें हानि क्या है ? वह एक व्यक्तिगत बात है...।"

"जी नहीं, व्यक्तिगत बात नहीं है । अब आप इस संस्था के होंगे । अध्यापक का चरित्र उसके विद्यार्थियों के लिए आदर्श होना चाहिए । आप प्रेम पर लिखेंगे तो आपके विद्यार्थी भी वैसा ही सोचेंगे । नैतिक दृष्टि से आप हमारे लिए अच्छा आदर्श उपस्थित नहीं कर सकेंगे । मैं अपने विद्यार्थियों को चरित्रवान वनाना चाहता हूँ । अभी मैंने इतिहास के एक लेक्चरर की नियुक्ति की हैं । उन्होंने अपनी कुछ अप्रकाशित कहानियाँ भेजी थीं । उनसे भी मैंने यही प्रश्न किया । लड़का समझदार है । उसने लिखकर दे दिया है कि जब तक वह इस संस्था में काम करेगा, प्रेम सम्बन्धी कहानियाँ न तो लिखेगा और न वैसी पुरानी कहानियों को छपने के लिए कहीं भेजेगा । अब आप बताइए ?"

"हमारी हिन्दी के कई श्रेष्ठ कवि विश्वविद्यालयों में पढ़ाते हैं और वे प्रेम पर लिखते हैं और कोई बुरा नहीं मानता । उदाहरण के लिए..."

"भाड़ में जायँ ऐसे प्रोफ़ेसर । हमें उनसे कुछ लेना-देना नहीं। आप अपनी बात बताइए ।" वृद्ध महाशय ने कुछ सोचते हुए कहा ।

"जी नहीं । मैं नौकरी छोड़ने को तैयार हूँ, कविता छोड़ने को नहीं ।"

इतना कहकर अमरनाथ चला आया । परिणाम स्पष्ट ही था; लेकिन मीरा से मिलने की प्रसन्नता में अमरनाथ इस क्षोभ को भूल गया ।

रात की गाड़ी से वह चल दिया ।

नगर में पहुँचने पर मीरा का मकान ढूँढ़ने में उसे कोई कठिनाई नहीं हुई । स्टेशन से सीधी आने वाली चौड़ी सड़क के किनारे एक बँगला था । देखने से लगता था जैसे किसी ईसाई ने कभी बनवाया होगा । सड़क से थोड़े हटकर तीन ओर दीवार थी । एक दीवार के सहारे एक गली । उससे मिला हुआ बँगला । दो लम्बे कमरे । बीच में एक बहुत बड़ा हॉल । छत बहुत ऊँची । सामने दालान । दालान की सीढ़ियाँ उतरकर गार्डन के

लिए दीवारों से घिरा स्थान। इस समय उसमें कुछ उग नहीं रहा था। एक कतार में गुलमेंहदी के कुछ पौधे थे। केवल उन्हीं पर गुलाबी, नीले, लाल फूल आ रहे थे। एक कोने में एक झाड़ी थी जिस पर कत्थई रंग के छोटे निर्गन्ध पुष्प लगे हुए थे।

मीरा के पति बनारस गये हुये थे। वहाँ से वे देहली जाने वाले थे। अमरनाथ को पहला सन्देह तो यह हुआ कि क्या इसने जान-बूझकर उन्हें बाहर भेज दिया है। जो होगा, देखा जायगा—ऐसा मन में सोचकर वह चुप रह गया। लेकिन अमरनाथ स्वागत में जिस उत्साह, मन में जिस उमंग और नयनों में जिस प्रसन्नता को देखना चाहता था, उसका शतांश भी वहाँ न था। उसे ठेस सी लगी और उसे अच्छा भी लगा। हँसी-हँसी में उसने पूछा भी: क्या मिस्टर लड़कर गये हैं? मीरा ने चट से उत्तर दिया! नहीं तो। मीरा से प्राप्त होने वाले कोमल व्यवहार की आवश्यकता से अधिक कल्पना सम्भवतः अमरनाथ ने अपने मन में कर ली थी। फिर भी वह इस बात पर बराबर सोचता रहा कि पत्रों में वर्णित भावनाओं की इस ठंडे व्यवहार से संगति कहाँ है? यह भी हो सकता है कि अमरनाथ को सहसा अकेले में पाकर मीरा घबरा उठी हो और उसने अपने उत्साह को कठोरता से दबा दिया हो, कोमल भावनाओं को निर्दयता से कुचल दिया हो। रात के एकान्त में वह अपने को नहीं छिपा सकेगी। तब तक प्रतीक्षा करनी चाहिए।

खाना खाते समय अमरनाथ ने पूछा, "कहो मीरा, सुखी तो हो?"

"एक तरह से सुखी ही हूँ। इनकी दूकान ख़ूब चल रही है। खाने-पीने-पहनने का कोई अभाव नहीं।"

"स्वभाव तो ठीक है?"

"बहुत अच्छा है। कभी भी कुछ नहीं कहते।"

"सास-ससुर तुम्हारे कहाँ है?"

"ये चार भाई हैं। वे लोग तीन-तीन महीने हर भाई के पास रहते हैं। आजकल इनके सबसे बड़े भाई के पास हैं। अभी तो हमारे यहाँ थे।"

अमरनाथ ने हँसकर पूछा, "एक भाई के यहाँ ठीक तीन महीने रहते हैं ? ज्यादा नहीं रह सकते ?"

"ज्यादा रहते हैं तो उसका हिसाब दूसरे भाई को भेज दिया जाता है।"

"अच्छा।" ऐसा कहकर अमरनाथ हँसने लगा।

"और ?"

"पास-पड़ोस बहुत अच्छा है। जी उकताता है तो कहीं भी जा बैठती हूँ। वे लोग भी यहाँ आती रहती हैं।"

"अब तो एक ही अभाव खटकता होगा ?"

संकेत को समझकर मीरा सकुचाकर कह गयी।

"आगरे तुम इधर नहीं आई। मेरे साथ चलो न। ?" फिर रुककर पूछा, "मेरे साथ जाने की आज्ञा मि० दे देंगे ?"

"दे तो देनी चाहिए।" मीरा ने कुछ सोचकर कहा।

अमरनाथ केवल अपनी ओर से बात कर रहा था। मीरा चुप ही रही। वह इन्टरव्यू के लिए विश्वविद्यालय चला गया।

इन्टरव्यू में विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर, डीन आव फैक्टरी आव आर्ट्स, तथा हिन्दी विभाग के अध्यक्ष तीन ही व्यक्ति थे। लेक्चरर के स्थान के लिए आजतक वहाँ कभी इन्टरव्यू न हुआ था। इस बार विभाग के अध्यक्ष और डीन जो एक बँगाली सज्जन थे, एक व्यक्ति के पक्ष में थे, वाइस चांसलर उसे लेना नहीं चाहते थे; अतः यह निर्णय हुआ कि इन्टरव्यू के लिए कुछ लोगों को बुला लिया जाय। छँटते-छँटते चार व्यक्ति रह गए। उनमें एक अमरनाथ था।

दो प्रार्थियों को बुलाने के उपरांत अमरनाथ की बारी आई। उसकी पुस्तकें डीन के सामने रखी थीं। बँगाली होने के कारण हिन्दी वे बहुत कम समझते थे। उन्होंने अमरनाथ के आलोचना-ग्रन्थ को उलटा-पलटा। उसके निबंधों में ब्रैकेट में कहीं-कहीं अँगरेजी के शब्द लिखे हुये थे जैसे ट्रेजेडी, एपिक, एलौगौरी, सबलाइम आदि। डीन साहब इन्हीं शब्दों को लेकर उससे

प्रश्न करते रहे। हिन्दी के अध्यक्ष ने छायावाद के संबंध में उससे कई प्रश्न किए। वे प्राचीन काव्य के प्रेमी और छायावाद के विरोधी थे। अमरनाथ ने जब छायावाद का समर्थन और उसके अन्तर्गत परिगणित होने वाले काव्य की प्रशंसा की तो वे बीच-बीच में कहते रहे : लेकिन मैं तो ऐसा सोचता हूँ, मैं तो ऐसा मानता हूँ, मैं तो ऐसा समझता हूँ।

यह इन्टरव्यू पैंतालीस मिनट तक चलता रहा। अन्त में हिन्दी के अध्यक्ष और डीन ऑव फैक्टरी ऑव आर्टस ने थककर वाइस चांसलर से कहा, "अब आप कोई प्रश्न करें।"

"आप लोगों को जो उत्तर इन्होंने दिए हैं उनसे मैं संतुष्ट हूँ। मुझे और कुछ नहीं पूछना।"

अमरनाथ हाथ जोड़कर बाहर चला गया।

अन्त में रामभजन श्रीवास्वव एम० ए०, पी० एच० डी० गए। उन्होंने उसी विश्वविद्यालय से दोनों डिग्रियाँ ली थीं। डीन और अध्यक्ष दोनों ही उनके पक्ष में थे। कमरे में उनके प्रवेश करने से पूर्व ही वाइस-चांसलर ने हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष से कहा : आपने तो इन्हें पढ़ाया ही है। इनसे एकाध प्रश्न मैं करूँगा।

"आप मिस्टर श्रीवास्तव है ?" वाइस चांसलर ने पूछा।

"जी हाँ।"

"आपकी थीसिस का विषय क्या था ?"

डा० राजभजन ने भक्तिकालीन एक अप्रसिद्ध कवि का नाम लिया।

"थीसिस के लिए आपने सामग्री कहाँ से जुटायी ?"

डा० श्रीवास्तव ने उन सभी स्थानों का नाम लिया, जहाँ वे गए थे, उन सभी प्राचीन पुस्तकालयों की चर्चा की जहाँ से उन्होंने संदर्भ-ग्रन्थ लेकर पढ़े थे, उन सभी विद्वानों की चर्चा की जिनसे इस विषय के सम्बन्ध में कुछ भी जानकारी प्राप्त हो सकती थी। अन्त में उन्होंने कहा कि कई प्राचीन पांडुलिपियाँ उन्हें महन्तों के मठों में अध्ययन करने को मिलीं।

"तो यह अन्तिम बात सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है ?" वायस चांसलर ने कहा।

"जी हाँ" डा० रामभजन श्रीवास्तव बोले।

"लेकिन महंतों के मठों से जो पांडुलिपियाँ आपको प्राप्त हुईं और जिनके आधार पर आपने थीसिस लिखी, वे प्रामाणिक थीं, इस बात पर विश्वास करने के लिए आपके पास क्या आधार है ?"

"जी ?" कहकर रामभजन श्रीवास्तव कमरे में इधर-उधर ताकने लगे। अन्त में उन्होंने कहा, "वह सामग्री प्रामाणिक है ही श्रीमान।"

वाइस चांसलर ने हँसकर कहा, "अच्छा अब आप जाइए।"

उसके जाते ही हिन्दी के अध्यक्ष ने कहा, "पता नहीं रामभजन को इस समय हो क्या गया। ऐसा बुद्धिमान लड़का और एक सामान्य प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाया। संभवतः आपके व्यक्तित्व से आतंकित होकर घबराहट में कुछ का कुछ कह गया।"

डीन ऑव फैक्टरी ऑव आर्ट्स ने कहा, "प्रश्न विद्वान् और अविद्वान् का नहीं है, यह भी देखना है कि डा० श्रीवास्तव ने हमारे विश्वविद्यालय में शिक्षा पायी है। हमारे विद्यार्थी हमसे कुछ आशा करते हैं। यदि उनकी नियुक्ति हमारे यहाँ ही नहीं होगी, तो फिर दूसरे विश्वविद्यालय वाले उन्हें क्यों लेंगे ? एम० ए० में उसका सैकिंड क्लास अवश्य था; लेकिन डाक्टरेट की डिग्री मिलने से यह बात दब गई। दूसरे व्यक्ति को अध्यापन का थोड़ा अनुभव है; लेकिन थोड़े दिनों में वह अनुभव इन्हें भी हो जायगा। काम करने से ही काम आता है।"

"ऐसी दशा में इन्टरव्यू का कोई महत्त्व नहीं रह जाता।" वाइस चांसलर ने टोका।

"इस बार डा० श्रीवास्तव को हो जाने दें। स्थान तो होते ही रहते हैं। अगली बार अमरनाथ जी को रख लेंगे—यदि उन्होंने फिर प्रार्थना-पत्र भेजा तो।" अध्यक्ष हिन्दी-विभाग बोले।

"एक यह पौइंट भी है। काम तो इन्हीं को लेना है। इनके मन के

विरुद्ध किसी की नियुक्ति करने से..." बंगाली सज्जन अपना वाक्य पूरा किए बिना चुप हो गये ।

थोड़ी देर में लोगों ने सुना विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में डा० रामभजन श्रीवास्तव की नियुक्ति हो गई ।

दो दिन में दो स्थानों पर अमरनाथ को असफलता मिल चुकी थी । नौकरी में घोर पक्षपात चलता है, यह वह देख चुका था । इसमें केवल योग्यता से काम नहीं चलता । जो व्यक्ति समझौता नहीं कर सकता या सिफ़ारिश नहीं ला सकता, उसे नौकरी मिलना बहुत कठिन काम है । यह भ्रष्टाचार समाज में कहाँ से आ फैला है, यह कैसे दूर होगा, इसी पर वह काफ़ी देर सोचता रहा ।

इंटरव्यू के उपरांत वह नगर के दर्शनीय स्थानों को देखने चला गया । वहाँ से लौटकर मीरा के पास आया और खाना खाकर पिक्चर देखने चला गया । वह अपने को भुलाए रखना चाहता था । इंटरव्यू के परिणाम के संबंध में मीरा से उसने कुछ भी नहीं कहा । रात को वह भारी मन लौटना नहीं चाहता था । आज वह रात भर मीरा से बात करेगा । उसके दर्द को समझेगा, उसकी भावना का आदर करेगा । उसके प्रति आभारी रहेगा; लेकिन अपने जीवन और मन की विवशता से भी वह उसे अवगत करायेगा । उसका विश्वास था कि वह उसे अपनी बात समझा सकेगा ।

रात के दस बजे जब वह मीरा के पास लौटा, तो उसका मन एकदम हल्का था। निराशा का बोझ वहाँ से उतर चुका था। वह रास्ते में कल्पना करता हुआ आ रहा था कि आज वह रात भर बात करेगा। इस बात का विश्वास आज वह दिलाकर ही रहेगा कि प्यार में मानसिकता ही प्रधान है, शरीर नहीं। आज वह मीरा से उसके जीवन की एक-एक बात पूछेगा। वह इस बात को जानकर ही मानेगा कि वह उसके प्रति आकर्षित क्यों हुई ? वह उसे प्यार करती है, इसका अनुमान तो उसे है। उसके व्यवहार और पत्रों से यह बात स्पष्ट हो चुकी है। आज वह इसे उसके मुँह से सुनेगा। कोई अपने मुँह

से हमारे प्रति अपने अनुराग को स्वीकृत करे, इसमें और ही सुख है और हो थ्रिल । इन्हीं कल्पनाओं से खेलता हुआ वह घर आ पहुँचा । उसने दूर से ही देख लिया चारपाइयाँ बरामदे में ही पास-पास बिछी हैं । आह ! वह कितना सुखी था । नौकरी न मिलने की निराशा के उपरांत प्यार में विश्वास का यह सुख !

बरामदे में आकर अमरनाथ ने देखा दो के स्थान पर तीन पलंग बिछे हैं । मीरा वहाँ टहल रही थी । अमरनाथ की सारी कल्पना हवा हो गई ।

"यह तीसरा पलंग किसका है ? मिस्टर लौट आये हैं क्या ?" उसने पूछा ।

"नहीं, वे तो अभी एक सप्ताह में लौटेंगे ।" मीरा ने उत्तर दिया ।

"फिर इस पर कौन सोयेगा ?"

"लीला ।"

"लीला कौन ?"

"हमारे पड़ोसी की लड़की है ।"

"उसके घर में जगह नहीं है ?"

"नहीं, मैंने उसे बुला लिया है ।"

इतने में लीला उधर से आती दिखाई दी । शरीर से स्थूल, साँवली, मुंह पर चेचक के गहरे दाग़ । उसने आकर नमस्ते की । अमरनाथ जल-भुन गया ।

"तुम मेरा पलंग मीरा, एक कोने में क्यों न डलवा दो । संभव है मेरे वहाँ सोने से इन्हें किसी प्रकार का संकोच हो ।"

"नहीं जी, आप कैसी बात करते हैं । हमारे लिए तो जैसे भाई साहब, वैसे ही आप । हाँ, एक बात ज़रूर है । भाभी जी कहती हैं कि रात को मैं खुर्राटे बहुत लेती हूँ और कभी-कभी जोर से कराहने लगती हूँ । ऐसी दशा में अगर आप दूर सोना चाहें, तो दूसरी बात है । लेकिन आप मेरी वजह से दूर न सोइए । मुझे सोकर रात को बिल्कुल होश नहीं रहता ।" लीला ने कहा ।

अमरनाथ मन मारकर वहीं लेट गया। लीला के सामने क्या बात हो सकती थी! जो बातें हुईं, वे केवल इसलिए कि कुछ बातें करनी थीं। थोड़ी ही देर में मीरा को नींद आ गई और लीला खुर्राटे लेने लगी। लेकिन अमरनाथ की आँखें नहीं लग पाईं। उसके लिए नौकरी न मिलने के आघात से भी यह बड़ा आघात था।

वह अपने पलंग से उठा और मीरा के सिरहाने आकर खड़ा हो गया। देखा वह सो रही थी—निश्चित। मुख पर कोई विकार नहीं—जैसे कुछ हुआ ही न हो। कमरे की ताली उसके सिरहाने रखी थी। उसने धीरे से अँधेरे में अपना सूटकेस निकाला और दीवाल के सहारे जाकर रख दिया। इस समय उधर से किसी के निकलने की आशंका न थी। मीरा के सौम्य मुख को उसने एक बार फिर देखा और मन में कहा—विदा। बाहर आकर उसने तांगा पकड़ा और तांगेवाले से बिना कुछ तय किए कहा—स्टेशन चलो। वहाँ पहली गाड़ी से वह आगरे के लिए चल पड़ा।

ट्रेन में खिड़की के सहारे बैठकर उसने एक गहरी साँस ली। ओह!

यह क्या वही मीरा है जो मुझे ऐसे भावपूर्ण पत्र लिखती थी? मैं क्या वही व्यक्ति हूँ जिसको वे पत्र लिखे गए थे? अब जब मैं निकट आया—इतने निकट कि पकड़ में आ सकूं, तब यह इतनी मुरझाई-सी, इतनी उदासीन, इतनी ठंडी, इतनी विरक्त क्यों हो गई? क्या जीवन में कामना ही मुख्य है, उसकी पूर्ति कुछ नहीं?

क्या हम दोनों के बीच में अब विवाह आ गया है? लेकिन मीरा को पता था कि मैं विवाहित हूँ और वे पत्र एक विवाहित नवयुवती द्वारा ही मुझे लिखे गए थे। तो क्या लिखने वाली नारी और है, जिस मीरा को मैंने देखा है, वह कोई और। तब क्या हमारे व्यक्तित्व के भीतर एक दूसरा व्यक्तित्व छिपा रहता है, हमारा एक व्यक्तित्व हमारे ही व्यक्तित्व से डरता है, उसका सामना नहीं कर पाता?

क्या मीरा मुझे फिर कभी वैसे पत्र लिखेगी और मैं फिर उसका विश्वास करूँगा?

बिना व्यवहार के भावना का क्या मूल्य है ? जिसके लिए हम मन में इतनी गहराई से अनुभव करते हैं, उसके साथ ठीक व्यवहार क्यों नहीं कर पाते ?

लड़कियाँ क्या इतनी ही अस्थिर चित्त की होती हैं ?

सोचते-सोचते ट्रेन मे वह सो गया।

२४

मधुसूदन मेहता का मन घर में बिल्कुल नहीं लगता। प्रभातकाल में टहलने निकल जाते हैं। वहाँ से लौटकर चाय पीते हैं। पहले चाय वे मोहिनी के साथ पीते थे। अब अपने कमरे में ही मँगवा लेते हैं। मेज़ पर पुस्तकें फैली रहती हैं। मोहिनी वहाँ चाय का प्याला रखकर चली जाती है। इसके उपरान्त वे क्लास के लिये नोट्स तैयार करते हैं। खाना खाकर कॉलेज चले जाते हैं। वहाँ से लौटकर फिर चाय पीते हैं और फिर घूमने निकल जाते हैं। मेहता के मित्रों की सूची लम्बी है। संध्या को वे किसी न किसी मित्र के यहाँ होते हैं। यह बात कुछ अतिरंजित-सी लगेगी; लेकिन लोगों का कहना है कि मेहता अगर अपने मित्रों के यहाँ ही रात का खाना खायँ, तो न तो यह बात उनके मित्रों को अखरे और न उन्हें अपने घर पर कभी खाना खाने की आवश्यकता पड़े। कॉलेज के प्रोफ़ेसरों से भिन्न मेहता के अन्तरंग मित्रों में एक कृष्णप्रसाद कौल हैं। इधर अमरनाथ से भी घनिष्ठता बढ़ती जा रही है।

मेहता देर से घर लौटते हैं और जाकर चुप सो जाते हैं।

मधुसूदन और मोहिनी दोनों इसी बाग़ मुज़फ़्फ़र खाँ के रहने वाले है। बचपन से ही दोनों एक दूसरे को जानते हैं। मोहिनी ने स्थानीय गर्ल्स कॉलेज से बी० ए० किया, मधुसूदन ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से एम० ए०। सौभाग्य की बात है कि मेहता को यहीं के एक कॉलेज में नौकरी मिल

गई और मोहिनी को कहीं बाहर नहीं जाना पड़ा। इससे बड़े सौभाग्य की बात यह है कि दोनों का मिलन हो गया। मधुसूदन और मोहिनी का प्रेम-विवाह हुआ। थोड़े दिनों में इस प्रणय-सम्बन्ध को दृढ़ करने वाला उनके आँगन में एक फूल खिला। इस फूल का नाम है—श्रीकंठ। श्रीकंठ प्रायः नानी के पास रहता है।

लेकिन प्रेम का यह सम्बन्ध कहाँ दृढ़ हुआ! यों मधुसूदन प्रसंग उठने पर अब भी यह कहते फिरते हैं कि वे मोहिनी को बहुत प्यार करते हैं; लेकिन मोहिनी जानती है कि यह प्रणय-भावना अब समाप्त हो गयी है। वह किसी से कुछ कहती नहीं, केवल चुप है। जीवन की ऊपरी मधुरता अभी तक बनी हुई है। दोनों एक दूसरे का बहुत ध्यान रखते हैं—विशेष रूप से बाहर वालों के सामने। बाहर का कोई भी आदमी हफ़्तों इनके घर में रहकर भी इस बात का पता नहीं चला सकता कि दोनों में कहीं भी मनमुटाव है। इससे बाहर का कोई व्यक्ति यदि दोनों के बीच रहे, तो दोनों के लिए अच्छा हो। लेकिन बाहर का आदमी चौबीस घण्टे दोनों के बीच कैसे रह सकता है!

मधुसूदन और मोहिनी दोनों अलग-अलग बहुत ही अच्छे प्राणी हैं—सुन्दर, हँसमुख, सहृदय, शालीन। दोनों को साथ-साथ देखकर ऐसा लगता है जैसे दोनों एक-दूसरे के लिए ही बनाये गये हों। कहीं से कोई कमी नहीं। फिर भी पता नहीं क्या हो गया है कि दोनों मिलकर भी नहीं मिल सके। तब क्या ऊपर का मिलन कुछ नहीं, भीतर का मिलन ही सब कुछ है? लेकिन मधुसूदन और मोहिनी का तो भीतर का भी मिलन हुआ था। बचपन से ही दोनों के हृदय मिले हुए थे। तब यह क्या हुआ?

पहले अमरनाथ को भी किसी बात का पता नहीं चला। मधुसूदन से पूछिये तो मोहिनी की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा कर रहे हैं, मोहिनी से बात कीजिये तो कहती है—मधुसूदन से अच्छा आदमी संसार में दूसरा नहीं। एक बार अमरनाथ ने यह भी सोचा कि हटाओ, क्या करना है किसी का

भेद जानकर; लेकिन फिर मानव-स्वभाव में निहित उत्सुकता को वह दबा नहीं सका।

"मैं आपको क्या कहा करूँ, मिसेज़ मेहता ?" उसने प्रश्न किया।

"ठीक तो कह रहे हैं।"

"ये अँग्रेज़ी ढंग के सम्बोधन मुझे पसन्द नहीं। कुछ और नहीं हो सकता ?"

"और जो आप ठीक समझें।"

"लेकिन मेरे समझने को आपका समर्थन भी तो प्राप्त होना चाहिए।"

"समर्थन भी मिल ही जायगा।"

"मैं आपको भाभी कहना चाहता था।" अमरनाथ ने हिचकते हुए कहा।

मोहिनी मुस्कराने लगी। बोली, "विचित्र बात है !"

"इसमें विचित्र क्या ?"

"मेरी भी बड़ी इच्छा थी कि मेरा एक देवर होता और इधर इनके कोई छोटा भाई नहीं; लेकिन आप तो अवस्था में मुझसे बड़े हैं। यह सम्बोधन कैसा लगेगा, आप सोच लीजिये।"

"तो मैं आपको छोटी भाभी कहा करूँ ?"

मोहिनी हँस पड़ी। वह चाय बनाने चली गयी।

अमरनाथ प्रायः ऐसे समय पहुँचता था, जब मेहता कॉलेज से लौट आते थे। कुछ पहले भी पहुँच जाता तो मोहिनी को चाय बनाने नहीं देता था। मेहता के आने पर ही पानी रखा जाता था। लेकिन आज उसने उसे रोका नहीं। सम्बन्ध की मधुरता को लेकर जो यह प्रसंग उठ खड़ा हुआ था और उसकी जो प्रतिक्रिया मोहिनी पर होनी थी, उसके लिए अमरनाथ चाहता था कि वह थोड़ी देर को एकांत में चली जाय। बात यद्यपि हँसी में ही और एक विशेष उद्देश्य से कही गयी थी; लेकिन मोहिनी के उठ जाने से अमरनाथ को लगा कि बात सम्भवतः कुछ गम्भीरता पकड़ेगी। एक उपेक्षा-भाव से उसने सोचा—देखा जायगा।

अमरनाथ सिर झुकाये मेज़ पर बैठा था। उसे लगा कोई है। मेहता होंगे। तब उसका इस प्रकार सिर झुकाकर बैठना ठीक नहीं हुआ। पता नहीं वे क्या सोचें। लेकिन सिर उठाया तो देखा बाहर के दरवाज़े में अपर्णा खड़ी है।

अमरनाथ उठकर खड़ा हो गया। बोला, "इस तरह क्यों खड़ी है? आइये।"

"यह ठीक हुआ!"

"क्या ठीक हुआ?" अमरनाथ ने पूछा। बायें हाथ को देखा भीतर के दरवाज़े में मोहिनी चाय की ट्रे लिये खड़ी है। शायद अपर्णा और मोहिनी दोनों एक साथ ही आमने-सामने के दरवाज़े में आकर खड़ी हुई थी और दोनों ठिठकर रह गयी थीं।

"कि आप यहाँ मिल गये।" अपर्णा ने बात को बदलते हुए कहा। लेकिन अमरनाथ और मोहिनी दोनों ने यह समझ लिया कि बात उन दोनों को लक्ष्य करके कही गयी है। स्पष्टतया व्यंग्य निराधार था। फिर भी मोहिनी पर उसका असर पड़ा। तो अपर्णा मेरे ऊपर सन्देह करती हैं, उसने मन में सोचा। आगे बढ़कर चाय उसने मेज़ पर रख दी।

"तो क्या यहाँ न मिलकर मुझे जेल में होना चाहिये था?"

"अरे साहब, जेल आप लोगों के लिये क्या चीज़ है! आप वे लोग है जो बड़ी से बड़ी जेल को तोड़कर भाग जायँ!" अपर्णा ने फिर व्यंग्य किया।

"जेल भी कोई रहने की जगह है, मिसेज़ कौल?" मेहता ने सहसा प्रवेश करते हुए कहा।

"जब तक अपराधी रहेंगे, तब तक जेलें रहेगी।" अमरनाथ ने उत्तर दिया। मेहता आकर कुर्सी पर बैठ गये।

"जेलें तो यहाँ निरपराध प्राणियों के लिये बनी हैं।" मोहिनी बोली। उसके व्यथा के स्वर को अमरनाथ ने पहचाना।

"मेरा ऐसा अनुमान है कि जेलें न हों, तो अपराध एकदम मिट तो

नहीं जायँगे, फिर भी कम अवश्य हो जायँगे ।" अपर्णा ने अपनी धारणा व्यक्त की ।

"यदि कुछ दिनों ऐसा हो कि किसी भी अपराधी को किसी प्रकार का दण्ड न दिया जाय, तो अपराध स्वयं बन्द हो जायँगे ।" मेहता बोले ।

"यह क्या अपराध और दण्ड की बात लगा रखी है । कोई अच्छी बात कीजिये ।" अमरनाथ ने उस प्रसंग को समाप्त करते हुये कहा ।

मोहिनी दो प्याले और लेने के लिये भीतर चली गयी । लौटकर आयी तो उसने अमरनाथ से पूछा, "आपका आदमी आपके मन का न हो, तो आप क्या कीजिएगा ?"

यह प्रश्न मोहिनी ने सहसा उससे क्यों किया, यह बात उसकी समझ में नहीं आई । क्या मोहिनी अपर्णा को 'हिट बैक' करना चाहती है ? क्या वह अपने पति के ऊपर व्यंग्य कर रही ? क्या यह एक सामान्य प्रश्न है जो चाय पीते समय यों ही उठा दिया गया है ? उसने आशय टटोलने के लिये कहा, "जहाँ तक मेरा प्रश्न है मैंने इसका समाधान खोज लिया है । लेकिन वह आप सभी के लिये ठीक नहीं भी हो सकता है ?"

"इस समस्या का क्या वास्तव में कोई समाधान है ?" मेहता ने पूछा ।

"मैं तो समाज के दिये हुए सम्बन्धों को नहीं मानता—यहाँ तक कि रक्त के सम्बन्धों को भी नहीं मानता ।"

"फिर क्या मानते हैं ?" अपर्णा ने पूछा ।

"मन के सम्बन्धों को मानता हूँ ।"

"किस सीमा तक ?" मेहता ने पूछा ।

"अति की सीमा तक । जीवन ने मा-बाप, भाई-बहिन, पत्नी-पुत्र जो भी दिये हैं, यदि वे मुझे ऐसे नहीं लगते कि मेरे मा-बाप, भाई-बहिन, पत्नी-पुत्र होने चाहिये थे, तो मैं भीतर से उन्हें नहीं मानता ।"

"जो है वह है, उसे 'नकार' देने का क्या अर्थ है ?" मोहिनी ने प्रश्न किया ।

"मेरे कहने का आशय यह है कि यदि मैं देखता हूँ कि मेरी मा ऐसी नहीं है जैसी वह होनी चाहिये थी तो अपनी मा का आदर कहते हुए भी मैं धीरे-धीरे उससे अपना मन खींचने का प्रयत्न करूँगा और इस भाव की पूर्ति अन्यत्र खोजूँगा। बहुत सम्भव है जीवन मुझे किसी ऐसी महिला के सम्पर्क में लाने का प्रयत्न करे जिसे मैं अपनी मा मान सकूँ। इसी प्रकार भ्रातृ-भाव की पूर्ति मैं कहीं भी कर सकता हूँ। हो सकता है मैं अपने सगे भाई को वह भाव न दे सकूँ और उसी भाव का अधिकारी एक अजनवी व्यक्ति निकल आये—यह बात यहाँ तक सम्भव है कि मैं उसे अपने सगे भाई से भी अधिक मानने लगूं। साथ ही यदि मेरा बच्चा मेरे मन के अनुकूल नहीं है तो ऐसा क्या है जो मुझे किसी ऐसे बच्चे को प्यार करने से रोक सके, जो मुझे सहज-भाव से प्रिय लगता है।"

"बात सुनने में तो बहुत अच्छी लगती है; पर क्या यह सम्भव है?" मेहता ने कहा।

"मैं तो इसी आदर्श पर चलने का प्रयत्न कहता हूँ।" अमरनाथ बोला।

"आपने कोई नया सम्बन्ध खोजा है?"

"हाँ—आज ही मैंने एक नयी भाभी बनायी है।"

"आपकी अपनी भाभी नहीं है?"

"नहीं।"

"तो यह तो अभाव की पूर्ति हुई, नया सम्बन्ध क्या हुआ? इससे तो वह बात सिद्ध नहीं होती। अगर आप बुरा न मानें तो एक प्रश्न मैं आपसे करना चाहता हूँ?"

"नहीं, बिल्कुल बुरा नहीं मानूंगा। बातचीत में बुरा मानने की कोई बात ही नहीं उठती।"

"क्या आप अपनी पत्नी को बदल सकते हैं? यदि बदल सकते हैं तो आपके इस विचार को मैं क्रांतिकारी मान लूँगा।" मेहता बोले।

"यही बात मैं पूछना चाहती थी।" अपर्णा ने कहा।

"मुझे कहाँ तक बात करने की स्वतन्त्रता है ?" अमरनाथ ने पूछा।

तीनों ने एक साथ कहा—पूरी।

कौल ने कमरे में प्रवेश करते हुए, "मेरी ओर से दो सौ परसेंट।"

"आइए।" अमरनाथ ने स्वागत करते हुए कहा।

"मोहिनी, एक प्याला और लाओ।" मेहता धीरे से बोले।

"नहीं, मैं चाय पीकर आया हूँ।" कौल ने टोका।

"जाओ भी मोहिनी।" मधुसूदन ने आग्रह किया, "इस प्रकार तो सभी चाय पीकर आते हैं।"

"आख़िर, आपको चैन नहीं पड़ा।" मोहिनी ने जाते हुए कहा।

"कैसे चैन पड़े भाई ! पत्नी का प्रश्न है।" कृष्णप्रसाद बोले।

"यहाँ एक बहुत दिलचस्प बात उठ खड़ी हुई है" मेहता बोले, "अमरनाथ जी का विचार है कि मन के अनुकूल न होने पर हमें अपनी पत्नियों को बदल लेना चाहिए।"

"किसकी पत्नी से ?" कृष्णप्रसाद ने पूछा।

मोहिनी ने मेज़ पर प्याला रखते हुए कहा, "पत्नी बदलने का ही नहीं, पति बदलने का भी सवाल है, कौल साहब ! कहिये यह प्रस्ताव आपको कैसा लगता है ?"

"पूरी बात सुनें, तो कुछ पता चले।" कौल बोले।

"अब टालिये भी इस बात को।" अमरनाथ ने कहा।

"जी नहीं, बात टाली नहीं जा सकती।" अपर्णा ने ज़िद की।

"मैंने यह नहीं कहा कि मैं और मेहता अपनी पत्नियों से असन्तुष्ट हैं या आप लोग अपने पतियों को बदलना चाहती हैं ! लेकिन यह तो निश्चित है कि हम में से कोई भी पूर्ण पति या पूर्ण पत्नी नहीं है और हम सभी किसी न किसी रूप में अपने पति या अपनी पत्नी में कुछ अभाव पाते हैं।"

"हाँ।" कौल ने कहा।

"और उस अभाव की पूर्ति हम दूसरे स्थान पर ज्ञात या अज्ञात रूप में खोजते हैं ?"

"हाँ !"

"अर्थात् हम आकर्षित होने को विवश हैं ?"

"हाँ, शायद ।"

"यह आकर्षण बढ़ भी सकता है ?"।

"बढ़ता ही है ।"

"इसी को मैं पति या पत्नी बदलना कहता हूँ । कहीं हम उन्हें आंशिक रूप में बदलते हैं, कभी पूरे का पूरा । इस दृष्टि से हम सभी अपराधी हैं ।"

"तो आपका कहना यह है कि पति-पत्नी के सम्बन्ध के भीतर ही कुछ ऐसी कमी है जो जीवन में प्रेम को अनिवार्य बनाती है ?"

"जी नहीं, प्रेम तो एक स्वतन्त्र प्रवृत्ति है । उसका दाम्पत्य-भाव से कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है । लेकिन विवाहित पुरुष जब कहीं आकर्षित होता है तो मैं उसे पत्नी का बदलना कहता हूँ । वह प्रेम नहीं होता ।"

"एक प्रकट और एक-दो गुप्त पत्नियों के रखने से तो यही अच्छा है कि बहु-विवाह की प्रथा फिर प्रचलित हो जाय ।" कौल ने कहा ।

"जी नहीं, दो पत्नियों से लेकर अन्तःपुर या हरम में हजारों पत्नियाँ तक रखकर पुरुष देख चुका है । लेकिन एक तो यह नारी-जाति के प्रति अन्याय है, दूसरे वैवाहिक-जीवन का यह सच्चा समाधान भी नहीं है ।" मेहता बोले ।

"अच्छा यह हो कि पुरुष की एक पत्नी हो, एक प्रेमिका ।" कौल ने कहा ।

"फिर स्त्रियों का क्या होगा ?" अमरनाथ ने पूछा ।

"यही छूट स्त्रियों के लिए भी रहे ।" कौल ने उत्तर दिया ।

"यह समझौता तो बहुत अच्छा है; लेकिन अवैध बच्चों का फिर क्या होगा ? मेहता ने पूछा ।

"यही मुख्य उलझन है जिसका समाधान अभी तक हमारे समाज-शास्त्री नहीं खोज पाये ।" अपर्णा ने धीरे से कहा ।

"ऐसा हो जाय तो मोहिनी तो बहुत खुश हो । क्यों मोहिनी ?" मधुसूदन ने अपनी पत्नी से मज़ाक किया ।

"क्यों बेहूदी बात करते हो !" मोहिनी ने चिढ़कर कहा ।

"मैं कहता हूँ कि यदि स्त्रियों को केवल एक दिन के लिए यह छूट मिल जाय कि वे मुक्त भाव से अपने प्रेमियों से मिल सकें, तब देखिए, कैसे रहस्य खुलते हैं ।" मेहता बोले ।

"मज़ाक की बात नहीं है, यदि स्त्रियों को वर्ष में एक दिन भी ऐसा मिल जाया करे, तो उनका मानसिक स्वास्थ्य तो बहुत सुधर जाय और फिर शायद अपने पतियों का भी वे अधिक ध्यान रखें ।" कौल ने हँसते हुए कहा ।

"मैं अब घर जाऊँगी ।" अपर्णा बोली ।

"इतने जल्दी ?" मोहिनी ने पूछा ।

"हाँ । मेरा सिर दर्द कर रहा है ।" "मैं कार ले जाऊँ ?" उसने अपने पति से पूछा ।

"इसमें पूछने की क्या बात है, अपर्णा ?" कृष्णप्रसाद ने प्यार के स्वर में कहा ।

"चलिए, मैं आपको आपके घर छोड़ दूँ ।" अपर्णा ने अमरनाथ से कहा ।

"चलिए ।"

दोनों चले गये ।

अमरनाथ जब कार का दरवाज़ा खोलकर पीछे बैठने लगा तो अपर्णा ने कहा, "मेरे पास बैठिए ।"

"किसी ने कुछ कहा तो ?"

"आइए भी। कहनेवाला तो भीतर बैठा है।"

"घर के भीतर या मन के भीतर?"

"इस बात का जवाब मैं नहीं दूँगी।"

"तो फिर सब बातों के जवाब की मुझसे भी आशा मत कीजिए।" इतना कहकर अमरनाथ आगे ही बैठ गया। कार चल दी।

"आपको घर पहुँचने की जल्दी तो नहीं?" अपर्णा ने कहा।

"जब ऐसे साथी हों तो घर जाने की चिन्ता कौन करता है।"

"प्रशंसा का असर अब मेरे ऊपर नहीं पड़ता, यह मैं आपको बतलाए देती हूँ।"

"जैसे कभी पड़ता था?"

"कभी नहीं पड़ा, यह बात भी आप ठीक ही कहते हैं।"

"अभी तो न जाने कितनी ठीक बातें आपको मुझसे सुनने को मिलेंगी।"

"अच्छा यह सब छोड़िए और यह समझाइए कि विवाह के उपरान्त प्रत्येक आकर्षण को आप पति बदलना क्यों कहते हैं? वह शुद्ध प्रेम भी तो हो सकता है?"

"प्रेम करने वाला प्राणी बेईमान नहीं होता। पति के साथ रहना और दूसरे व्यक्ति को प्रेम करना, यह स्थिति बेईमानी की है।"

"इसमें बेईमानी क्या है?"

"जब आप किसी व्यक्ति को प्रेम नहीं करतीं, तो आपको कोई अधिकार नहीं है कि उसका पैसा आप अपने ऊपर खर्च करें। यह अनैतिक है।"

अपर्णा सहसा उदास हो गई। बोली, "यह तो आप ठीक कहते हैं।" फिर रुककर पूछने लगी, "क्या आप किसी ऐसी स्त्री को जानते हैं या वैसे ही कह रहे हैं?"

"मेरी एक परिचिता हैं। अपने पति की कोई बात उन्हें बहुत कड़ुवी लगी और उसका परित्याग उन्होंने कर दिया। बनारस के एक स्कूल में आजकल वे अध्यापिका हैं। उनके एक लड़की है जो अब विवाह योग्य हो

रही है। लेकिन मेरा अनुमान है कि वे उस लड़की के बहाने अपने पति से रुपया मँगवाती हैं। मैं समझता हूँ उनका विद्रोह करना व्यर्थ हुआ। ऐसी दशा में पति से अलग होना न होना बराबर है।"

"तो वह किसी की ओर आकर्षित हैं ?"

"संभव है, हो। मैं अधिक नहीं जानता। प्यार जो सबसे पहली बात सिखाता है वह है निर्भयता की। आत्म-निर्भरता इसी से आती है। जिसे मन से छोड़ दिया, फिर छोड़ दिया। फिर उससे लाभ क्या उठाना ?"

"लेकिन पुरुषों के लिए आप क्या कहेंगे—जो विवाहित हैं और दूसरी जगह प्रेम करते फिरते हैं ?"

"अगर केवल पत्नी बदलने वाली बात है, तब तो मैं कुछ नहीं कहूँगा, क्योंकि वह समझौते की स्थिति है। छिपकर सभी पति या पत्नी बदलते हैं। इसमें स्त्री भी उतनी ही दोषी है जितना पुरुष। लेकिन प्रेम करने पर पुरुष का पहला कर्तव्य है कि वह अपनी पत्नी या बच्चों को किसी प्रकार का आर्थिक कष्ट न होने दे। और इससे भी बड़ी एक बात है, जिसे दूसरों के सम्बन्ध में तो नहीं, लेकिन अपने सम्बन्ध में मैं जानता हूँ।"

"आप यदि प्रेम में पड़ जायँ तो क्या करेंगे ?"

"क्या आपसे सभी बातें स्पष्ट रूप से कही जा सकती हैं ?"

"हाँ।"

"उस दिन से मैं अपनी पत्नी का शरीर कभी नहीं छुऊँगा।"

"यही बात स्त्री को भी करनी चाहिए न ?"

"स्त्री के साहस पर निर्भर करता है।"

"अच्छा, क्या आजतक आपने कभी प्रेम नहीं किया ? मुझे ऐसा ही लगता है।"

"इस बात का उत्तर मेरे पास नहीं है।"

"तो आपने यह मेरी बात का मुझसे बदला लिया। लेकिन चलिए मैं अधिक आग्रह नहीं करती। कुछ ऐसा भी रहना चाहिए जो सभी से छिपा रहे—फिर वह चाहे कोई हो।"

२५

संध्या ढल रही थी। उसकी उदासी में ताज और भी उदास लग रहा था। इस उदास सौंदर्य को अमरनाथ ने न जाने कितनी बार देखा है और वह बार-बार उसमें खो गया है। उदास संध्या, उदास ताज और सबसे ऊपर उसका उदास मन। निकट पहुँचकर उसकी इच्छा हुई कि वह ताज को अपनी दोनों बाहों में भर ले और उस फ़र्श पर लोटता फिरे। संभव है इससे उसके मन की उदासी कुछ कम हो। फिर उसे ध्यान आया सरोजिनी उसके साथ है। उसके आग्रह पर वह यहाँ आया है। अपने मन की उदासी पर नियंत्रण रखकर उसे उससे बात करनी चाहिए।

"ताज तुम्हें कैसा लगता है सरोजिनी ?"

"अच्छा नहीं लगता।"

अमरनाथ ने इस स्वर के दर्द को पहचाना। वह चौंक पड़ा। कुछ न समझकर उसने पूछा, "क्यों सरोज ?"

इसे देखकर मेरा मन उदास हो जाता है—मैं जो पक्षी के समान मुक्त रहना चाहती हूँ, फूल के समान मुक्त भाव से खिलना चाहती हूँ, नदी के समान मुक्त मार्ग पर बहना चाहती हूँ, बादलों के समान मुक्त मन से बरसना चाहती हूँ, दीपक के समान..."

"मैं कह तो नहीं सकता क्यों; लेकिन सुंदर के सम्पर्क से कुछ न कुछ उदासी मन में आती ही है।"

"क्या तुम भी उदास हो ?"

"हूँ तो। क्या तुम नहीं हो ?"

"मैं भी हूँ—इतनी कि बता नहीं सकती।"

"मुझे कभी-कभी लगता है जीवन में सब उदास हैं—इतने कि बता नहीं सकते। यह जो प्रसन्नता हम देखते हैं, वह ऊपरी है। हँसना कृत्रिम है। भीतर कहीं गहरी उदासी छिपी हुई है।"

"यह अच्छा मूड नहीं है। इससे हमें मुक्त होना चाहिए।"

"उदासी मेरा मूड नहीं है, वह मेरा स्वभाव है।"

"आप कबसे नहीं हँसे हैं ?" सरोजिनी ने मुस्कराते हुए पूछा।

"बहुत दिन हो गए।"

"आपने जीवन में कभी किसी को प्रेम किया था शायद ?

"ऐसा सीधा प्रश्न नहीं किया करते।"

"मुझे मालूम है किया था। वह प्रेम सफल नहीं हुआ।"

"मुझे नहीं मालूम।"

"मुझे मालूम है। मनुष्य की आत्मा बहुत सबल है। प्रेम की विफलता को छोड़कर और किसी मे शक्ति नहीं है कि उसमें ऐसी गहरी उदासी भर सके। लेकिन तुम प्रेमी तो क्या, एक अच्छे मित्र भी नहीं हो सकते।"

अमरनाथ ने उसे गहराई से देखा और फिर हँसकर पूछा, "क्यों ?"

"दुराव-छिपाव का स्वभाव है तुम्हारा। दूसरों के संबंध में सब कुछ जानना चाहते हो। शायद जान भी लेते हो। लेकिन अपने संबंध में कुछ नहीं बतलाना चाहते। यह क्या है ? दूसरे व्यक्ति पर अविश्वास ?"

"जिस दुःख का कोई समाधान नहीं हो सकता, उसकी चर्चा करने से क्या लाभ है ?"

"लेकिन दूसरा इसी बात को कहे तो कैसा लगेगा ?"

अमरनाथ को आश्चर्य हो रहा था। सरोजिनी कभी इतनी गंभीर न थी। "क्या पूछना है ? पूछो न।"

"पूछना कुछ विशेष नहीं है ! लेकिन अगर हम खुलकर बात नहीं कर सकते, तो हमारे साथ रहने से कोई लाभ नहीं है, यहाँ आने या कहीं जाने का कोई तात्पर्य नहीं है। तुमसे तो वे ही सब अच्छे थे..."

अमरनाथ ने हँसकर पूछा, "वे ही सब कौन ?"

"जिन्हें मैंने छोड़ दिया। उन्हें प्रारंभ से कुछ न कुछ स्पष्ट तो था। मुझे भी स्पष्ट था। तुम्हारे संबंध में तो मैं समझ ही नहीं पाती कि आखिर चाहते क्या हो। शायद केवल उपकार करना चाहते हो। उससे

तो मेरा मन भरने से रहा। मुझे न छोड़ पाते हो, न ग्रहण कर पाते हो। इससे क्या होगा ? जिसका परिणाम निश्चित नहीं है, उसे लेकर चलने में कहाँ की बुद्धिमत्ता सिद्ध होती है ?"

अमरनाथ को लगा बात फिर टल गयी। उसने आग्रह के साथ पूछा, "तुम्हें बहुत शिकायत है सरोजिनी, कि मैं तुम्हे कुछ बताता नहीं। पूछो, क्या बात है ?"

"यही छोटी-छोटी बातें हैं।"

"जैसे ?"

"जैसे तुम्हारा विवाह कब हुआ ?"

"हो गए तीन वर्ष।"

"उनसे संतुष्ट नहीं हो ?"

अमरनाथ ने हिचक के साथ पूछा, "यह क्यों पूछती हो ?'

सरोजिनी झुंझलाकर बोली, "तुम्हें बात करने में भी हिचक होती है, तो चलो लौट चलें।"

"परिस्थिति ऐसी है कि मैं सुखी नहीं हूँ और मैं सुखी होना चाहता हूँ।"

"क्या वे सुन्दर नहीं हैं ?"

"जैसी भी हैं, किसी दिन दिखा दूँगा।"

"नहीं, जवाब दो।"

"तुम्हें संभव है सुंदर न लगें, पर मुझे अच्छी लगती हैं। लेकिन व्यक्ति के सौंदर्य-बोध की पहचान उसकी पत्नी से नहीं, उसकी प्रेमिका से होनी चाहिए। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि मेरा विवाह यदि बहुत सुंदर लड़की से भी हो जाता, तब भी सौंदर्य के प्रति मेरा आकर्षण समाप्त न होता। मैं निरंतर उसके सम्पर्क में रहता। उस समय संभव है अधिक उलझन खड़ी होती।"

"शायद अधिक शिक्षित नहीं हैं ?"

"आधुनिक दृष्टि से एक प्रकार से नहीं हैं; लेकिन वह अभाव भी

मुझे बहुत कम खटकता है। उसकी पूर्ति बाहर हो जाती है और इस बात को लेकर कभी कोई विरोध नहीं खड़ा हुआ और कभी होगा भी नहीं। शुद्ध बौद्धिक धरातल पर यदि कोई कभी किसी से मिलता है तो हमारी प्रियायें उसमें कभी बाधा नहीं डालतीं, यह मैं जानता हूँ।"

"आपने मेरी किसी बात का भी सीधा उतर नहीं दिया; फिर मैं क्या समझूँ? असंतुष्ट तो आप किसी बात पर हैं घर से। बातचीत से लगता है कि रूप या शिक्षा या स्वभाव संबंधी कोई शिकायत आपको अपनी पत्नी से नहीं हैं। फिर यह दु:ख किस बात का है?"

"अच्छा, तुम ऐसी कैसे हो गईं?"

"मेरे साथ तो धोखा हुआ। जीवन में उस धोखे का बदला मैं सारी पुरुष जाति से लूँगी।',

"अब भी?" अमरनाथ ने उसके दोनों हाथ पकड़ कर पूछा।

सरोजिनी ने उसकी आँखों में झाँकते हुए कहा, "नहीं, अब नहीं।" थोड़ी देर चुप होकर बोली, "लेकिन कौन जानता है..."

"तुम्हें पता है सरोजिनी मैं तुम्हारे सम्पर्क में क्यों आया?"

"नहीं। और मैंने इस बात को कभी जानना भी नहीं चाहा।"

"लोगों से मैंने सुना कि तुम..."

"कहो न।"

"चरित्रहीन हो...।"

"यह शब्द अपने संबंध में मैंने अनेक बार सुना है।" फिर हँसकर बोली, "चरित्रहीन तो मैं हूँ।"

"उतनी ही जितना मैं हूँ...।"

"यानी?"

"यानी एक व्यक्ति को छोड़कर तुमने कभी किसी को कुछ नहीं दिया, जैसे मैंने...।"

"मैंने उसे भी कुछ नहीं दिया। वह तो बहुत अभागा था...।"

"जिसे मैं प्रेम समझता था, वह प्रेम ही नहीं था। मन का एक अंध

आवेश मात्र था। लेकिन भाव में वैसी तीव्रता, वैसी गहनता, वैसी मधुरता और वैसी सुन्दरता की अनुभूति फिर मैंने नहीं की। एक इंद्रजाल था जो मिट गया।"

"तुम्हें उसकी याद नहीं आती ?"

"आती है; लेकिन प्यार की याद बनकर नहीं।"

सरोजिनी ने अपना सिर घुटनों में छुपा लिया। अमरनाथ ने उसके कंधे पर हाथ रखकर पूछा, "क्या बात है, सरोज ?"

सरोजिनी ने सिर उठाते हुए कहा, "यदि मुझे अपने में थोड़ी देर और डूबने देते तो मैं अपने संदेह का संभव है उत्तर पा जाती; लेकिन कुछ हैं जो मुझे स्पष्ट हो रहा है। मुझे अपने प्रतिशोध के जीवन से हटाने के लिए तो नहीं; लेकिन इस पल के लिए मैं तुम्हारी आभारी रहूँगी। तुमने मुझे इस समय एक नयी अनुभूति दी है..."

"दोपहर ढलते ही मुझसे घर में नहीं रहा जाता, इससे इधर-उधर भटकते रहने और घूमने का स्वभाव बन गया है। कभी कोई मिल गया तो ठीक है, नहीं मिला तब भी ठीक है। एक दिन शहर के एक कोने में मैं जा निकला। वहाँ छोटा-सा क़ब्रिस्तान था। वहाँ मैं घूमने लगा। कुछ क़ब्रें थीं—बहुत पक्की और मज़बूत। वहाँ तो कुछ नहीं, लेकिन एक कच्ची क़ब्र पर जाकर देखा—घास उग आई है और एक नन्हा-सा पीला फूल सिर उठाये खड़ा है। मैं देखता ही रह गया। उस दिन मेरे मन में भी एक नयी अनुभूति पल भर को झलक मारकर बुझ गई थी।"

सरोजिनी उठकर टहलने लगी। अमरनाथ कुछ हटकर उसके साथ चलने लगा।

"तुम्हारी पत्नी के सम्बन्ध में पूछकर मैंने ठीक नहीं किया ?" सरोजिनी ने चलते-चलते पूछा।

"नहीं, तुमने तो उन्हें देखा नहीं है। जो पूछा है वह सहज भाव से ही पूछा है। अनुचित इसमें कुछ भी नहीं था। लेकिन एक बात याद रखो

सरोज—पत्नियाँ सब एक सी होती है; जैसे प्रेमिकाएँ सब एक-सी। ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य, शूद्र की भाँति इनकी भी एक जाति होती है; बल्कि उनसे भी पक्की। एक पत्नी और दूसरी पत्नी में, एक प्रेमिका और दूसरी प्रेमिका मे उन्नीस-बीस का अन्तर हो तो हो, इससे अधिक नहीं। मूलतः वे एक होती हैं। एक नारी और दूसरी नारी में सुन्दर कुरूप, शिक्षित, अशिक्षित, सभ्य और फूहड़ के आधार पर इतना अन्तर नहीं होता, जितना पत्नी और प्रेमिका के आधार पर।"

"अच्छा, मैं किस कोटि में आती हूँ?" सरोजिनी ने हँसकर पूछा।

"विश्व-प्रियाओं में।" अमरनाथ ने उसी हँसी के साथ उत्तर दिया।

सरोजिनी ने चिढ़कर कहा, "अर्थात् मैं वेश्या हूँ?"

"इसमें अप्रसन्न होने की कोई बात नहीं है। पहले तो कोई स्त्री यदि विवशता से नहीं, मन से वेश्या है, तो इसे मैं बुरा नहीं समझता। सच बात यह कि पत्नी, प्रेमिका और फ़्लर्ट से भी स्त्री के लिए वेश्या होना कठिन काम है। सच्ची वेश्या को मैं बहुत आदर की दृष्टि से देखता हूँ। ऐसी ही एक वेश्या के सम्पर्क में मैं कुछ दिन रह चुका हूँ। लेकिन तुम सच बताओ सरोज, जब तुम कहीं से निकलती हो तो तुम्हें देखकर पुरुषों के मन में कैसी भावना जगती है?"

"शायद सब वासना की दृष्टि से ही देखते होंगे?"

"यद्यपि यह भाव तुम उनके मन में जगाना नहीं चाहतीं?"

"नहीं।"

"और तुम्हारे मन में सभी पुरुषों को देखकर वैसी प्रतिक्रिया उत्पन्न नहीं होती—किसी व्यक्ति विशेष को देखकर होती हो, तो होती हो?"

"नहीं, अब किसी को देखकर वैसी भावना उत्पन्न नहीं होती। कोई किसी दिन इस भावना को जगा दे, तो जगा दे। लेकिन मैं जानती हूँ, यह काम इतना आसान नहीं है। मुझे लोग इतना ग़लत क्यों समझते हैं?"

"किसी के सम्बन्ध में जब यह प्रसिद्ध हो जाता है कि वह चरित्रहीन

है तो लोग समझने लगते हैं कि वह सभी के भोग की वस्तु है। उससे मज़ाक करना हर व्यक्ति अपना अधिकार समझता है। और फिर वह उसी दृष्टि से उसे देखता है। तुम्हारी जो ख्याति है उसके कारण लोगों ने तुम्हारा आदर करना छोड़ दिया है और इसी से..."

"तुम वैसा क्यों नहीं सोचते ?"

"क्योंकि मैं तुम्हें जानता हूँ और मैं अपने को भी जानता हूँ।"

"तो कम से कम तुम तो मेरा आदर करते हो ?"

"बहुत।"

"एक बात पूछूँ ?"

"हाँ।"

"क्या तुम मेरे साथ विवाह कर सकते हो ?"

अमरनाथ सरोजिनी के बिल्कुल पास आ गया। उसके कंधों को झकझोरकर उसने पूछा, "यह कैसा प्रश्न है ?" फिर थोड़ा रुक कर बोला, "नहीं।"

"क्यों नहीं ?"

"तुम्हें तो मालूम है मैं विवाहित हूँ ?"

"हाँ।"

"और मेरे एक बच्चा है ?"

"यह मुझे मालूम नहीं था। लेकिन इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। मैंने उन्हें कभी देखा नहीं, कभी देखूँगी भी नहीं। मैं उनसे दूर ही रहूँगी—किसी भी शहर में जहाँ तुम मुझे रखना चाहोगे। मुझे विधिवत् विवाह की भी आवश्यकता नहीं। केवल इस ताजमहल की छाया में मुझसे कहो कि तुम मुझे अपनी पत्नी मानते हो। मैं आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र होने का प्रयत्न करूँगी—बहुत शीघ्र; जिससे मैं तुम्हारे उत्तरदायित्व को न बढ़ाऊँ। मेरे लिए कभी कुछ लाने को मन हो, ले आना; न चाहो मत लाना। मैं कभी कोई शिकायत नहीं करूँगी। केवल अपनी बिखरी इनर्जी को केन्द्रित करके अब मैं जीना चाहती हूँ। इसके लिये मैं

यहाँ तक मानने को तैयार हूँ कि जिस दिन मैं तुम्हें बोझ लगूँ या तुम्हारे वैवाहिक जीवन में कलह उत्पन्न कराने का प्रयत्न करूँ या मुझसे तुम्हारा जी भर जाय, उसी दिन मुझसे कहकर तुम मेरा परित्याग कर देना। मैं तुमसे उसकी कोई व्याख्या न माँगकर तुम्हें सच्चे हृदय से मुक्त कर दूँगी।"

अमरनाथ की इच्छा हुई कि सरोज को खींचकर हृदय से लगा ले। लेकिन वह बहुत संयत होकर बोला, "इस समय न जाने कैसे तुम्हारे मन की नारी जग उठी है और मैं अत्यन्त विनम्र भाव से उसके सामने सिर झुकाता हूँ। इस समय मैं और तुम दोनों ही अपने सारे आवरणों को हटा कर एक दूसरे के सामने खड़े हो गये हैं और बात कर रहे हैं; अतः मेरा जो उत्तर पहले था, वह अब भी है अर्थात्—नहीं। मैंने स्वयं तुमसे कहा है कि जितनी चरित्रहीन तुम हो, उतना ही चरित्रहीन मैं भी रह चुका हूँ। यदि मेरा विवाह न हुआ होता और मैंने तुम्हारे इस स्वरूप को देखा होता तो मैं तुम्हें एकदम स्वीकार कर लेता। परिणाम जो भी होता। लेकिन जीवन में जिस पथ से मैं गया हूँ और जो अनुभव मुझे हुआ है, उससे तो एक विवाह भी भूल लगता है..."

"विवाह भूल है?"

"विशिष्ट व्यक्ति के जीवन की तो यह भूल है—कलाकार के जीवन की तो विशेष रूप से, और जो प्राणी प्रेम का प्यासा है उसके लिए तो और भी, लेकिन मैं इस भूल का निर्वाह पूरे उत्तरदायित्व और समझदारी से करूँगा। फिर भी अपने छोटे-से जीवन में जो मुझे अनुभव हुये हैं, उन्होंने मुझे विचलित कर दिया हैं। जीवन की पहली भूल जब मुझसे हुई थी, तब मैंने जाना था कि प्रेम के पवित्र क्षेत्र को सैक्स की भावना से दूर रखना चाहिए। भोग के उपरान्त पुरुष के हृदय में प्रेम समाप्त हो जाता है। उस अभाव को भरने के लिये मैंने विवाह किया। विवाह मैंने इसलिये किया कि शायद भावना सम्बन्धी सारे अभावों को यह भर सके। लेकिन पहले सेजै पुरुष का वैसे अब नारी के स्वभाव का मुझे पता चल गया है। कैसी

हो प्यार करनेवाली नारी हो, संतान होने के उपरान्त पति में उसका प्रेम कम हो जाता है—कम से कम वह बात नहीं रहती।"

"तुम तो बड़े ईर्ष्यालु हो?"

"यह ईर्ष्या की बात नहीं है। क्या पिता अपनी संतति को प्यार नहीं करता?"

"संतान की चिन्ता में कुछ तो पहली बात में कमी आयेगी ही।"

"नहीं, यह भोग की बात भी नहीं है। रात-दिन पास बैठने की बात भी नहीं है। एक दूसरे की सुख-सुविधा की बात भी नहीं है। मैं केवल यह कह रहा था कि वह बात नहीं रहती। क्यों नहीं रहती? क्या कोई नारी या तुम मुझे इस बात का उत्तर दे सकती हो?"

"मैं इस स्थिति में होती तो देती।"

"पत्नी होकर तुम भी ऐसी ही हो जाओगी सरोज; इसीलिये मैंने कहा था—नहीं।"

इसके उपरान्त कोई कुछ नहीं बोला।

२६

अमरनाथ का विवाह हुआ। यह सच है कि वह प्रेम-विवाह न था। विवाह के पूर्व अमरनाथ ने उमा को या उमा ने अमरनाथ को देखा न था—एक ने दूसरे को चुना न था। लेकिन उमा में कुछ ऐसे गुण थे कि वह उसे असाधारण लगती थी और इसलिये वह अपने को बहुत सौभाग्य-शाली समझता था।

फिर भी कोई अभाव उसे निरन्तर खलता था।

उसके विवाह को अब पाँचवाँ वर्ष लग रहा था। इस समय वह दो बच्चों का पिता था। सुकुमार का जन्म आगरे में हुआ था और नीरजा का मुरादाबाद में। उसकी अवस्था तीस के आस-पास थी। यह उसके

जीवन की दोपहरी थी। जीवन के इस मध्याह्न में अंधकार ने चारों ओर से सिमट कर उसे घेर लिया था। वह घबरा उठा।

इस सूनेपन और अंधकार के स्वरूप को वह समझना चाहता था।

एक दिन वह एक प्रसिद्ध योरोपीय नर्तकी के आत्म-चरित्र को पढ़ रहा था। उमा दूर अपने पलंग पर बैठी नीरजा के लिए स्वैटर बुन रही थी। अमरनाथ ने उमा की ओर देखा। पुस्तक उसने बन्द कर दी।

"उमा!"

"हाँ।"

"नारी के जीवन को तुम क्या समझती हो?"

उमा फन्दा डालते हुए बोली, "नारी का जीवन मेरी दृष्टि में तो व्यर्थ है। मैं तो चाहती हूँ कि नारी का जीवन मुझे फिर न धारण करना पड़े।"

"अर्थात् दरिद्र पति की पत्नी न बनना पड़े?"

उमा ने हँसकर उत्तर दिया, "नहीं, कुछ तो बातें ऐसी हैं जिनमें दरिद्रता या सम्पन्नता से कोई अन्तर नहीं पड़ता। पहली तो यह कि नारी होने से ही उसे बहुत पीड़ा सहन करनी पड़ती है।"

"जैसे?"

"जैसे बच्चों का जन्म ही है। इसमें जैसी पीड़ा होती है, उसे नारी ही जानती है। फिर बच्चों को बड़ा करने में कष्ट उठाना पड़ता है। बच्चे अयोग्य निकलें तो फिर जीवन भर कष्ट ही कष्ट है।"

"और?"

"और क्या आप नहीं जानते कि नारी का जीवन ही पराधीनता का जीवन है। जन्म से लेकर मृत्यु तक पराधीनता ही पराधीनता है। अब कुछ स्त्रियाँ शिक्षित होकर नौकरी करने लगी हैं; लेकिन उनकी भी अपनी समस्याएँ हैं।"

"और?"

"और स्त्री पर सबसे अधिक अत्याचार स्त्री ही करती है—सास के रूप में, जिठानी के रूप में, ननद के रूप में, सौत के रूप में।"

अमरनाथ हँस पड़ा।

"हँसे क्यों?"

"सौत शब्द पर हँसा। शीघ्र ही वह समय आने वाला है उमा, जब पुरुष एक से अधिक विवाह नहीं कर सकेगा।"

"अरे, सौतें नहीं रहेंगी, तो प्रेमिकाएँ तो रहेंगी। वे सौतों से भी अधिक दुःखदायी होती हैं।"

"अच्छा, सौत की बात छोड़ो। वैसे जीवन का जो दुःख है उसे पति की उपस्थिति क्या दूर नहीं कर सकती?"

"जीवन में पति का तो फिर सहारा है ही। जो स्त्री पराधीन है, यदि उसे सहारा देने वाला पुरुष किसी समय न रहे तो उसकी स्थिति की कल्पना आप कर ही नहीं सकते।"

"तुम क्या पति-पत्नी के सम्बन्ध को केवल इसी दृष्टिकोण से देखती हो?"

"तुमने किसी आशय से प्रश्न किया था क्या?"

"नहीं तो।" अमरनाथ ने उदास होकर उत्तर दिया और फिर वह 'इसाडोरा डंकन' की आत्म-कथा पढ़ने लगा। लेकिन पढ़ने में उसका मन लगा नहीं।

"तुम्हें उमा, ऐसा नहीं लगता कि सन्तान होने के उपरान्त पत्नी का प्रेम पति में कम होने लगता है?"

"नहीं तो।" उमा ने बिना सोचे हुए उत्तर दिया। "लेकिन ऐसा होगा क्यों?"

"इसलिए होगा उमा कि स्त्री और पुरुष दोनों ही प्रकृति के तत्व हैं। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं; अतः दोनों एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते आकर्षित होने में वे स्वतन्त्र नहीं हैं। यदि वे पूर्ण स्वस्थ है तो ऐसा नहीं हो सकता कि वे आकर्षित न हों। आकर्षण सम्पूर्ण प्रकृति की

और विशेष रूप से प्राणी के जीवन की विवशता है। सभ्यता के नाम पर, समाज-व्यवस्था के नाम पर, इस आकर्षण के रूप हमने बदल दिए हैं; पर अपने मूल रूप में उसका उद्देश्य आज भी नहीं बदला है। यह हो सकता है कि उस उद्देश्य को हम कभी-कभी विफल कर दें।"

"लेकिन क्या है वह उद्देश्य ?"

"सृष्टि का विकास।"

"यह तो ठीक है।"

"इस उद्देश्य को मैं और तुम अपना कहकर प्रस्तुत करते हैं; लेकिन यह है प्रकृति का उद्देश्य। वही ऐसा करने के लिए हमें प्रेरित करती है। उसकी यह प्रेरणा दुर्निवार है।"

"ऐसा ही तो लगता हैं ?"

"इसी से प्रकृति के इस उद्देश्य को जब उसकी प्रतिनिधि नारी पूरा कर देती है, तो यह प्रेरणा उसके मन में शिथिल होने लगती है और फिर पुरुष के प्रति, जो इस उद्देश्य की पूर्ति में उसका सहायक मात्र है, उसका आकर्षण कम होने लगता है।"

"यह बात सच हो, तब भी पत्नियों के विरुद्ध तुम्हारा आरोप संगत ढंग का है, यह सिद्ध नहीं होता। होता यह है कि पहले नारी एक की चिंता करती थी, सन्तान होने के उपरान्त, वह दो या तीन या दस की करती दिखाई देती है; अतः व्यवहार में प्रेम बँटता-सा लगता है। लेकिन पति और सन्तान दोनों का स्थान अलग है।"

"फिर वह तीव्रता क्यों नहीं रहती ?"

"वह तो सन्तान न होने पर भी नहीं रहेगी।"

"क्यों ?"

"एक अतृप्त और सन्तुष्ट व्यक्ति का जो अन्तर है, वह क्या तुम नहीं जानते ?"

"यानी ?"

"यानी एक बाढ़ है बरसात की जो उतर जाती है। उसे तो कभी न

कभी कम होना है ही। अधिक निकट रहने के कारण, अति परिचय के कारण भी ललक हमेशा एक-सी नहीं रह सकती। लेकिन पति के लिए पत्नी के अन्तःकरण में अनुराग की जड़ें कितनी गहरी और दृढ़ होती हैं, यह तुम नहीं जान सकते।"

"वह तो एक संस्कार है, उमा। भारतीय नारी पति को सुहाग का एक प्रतीक समझती हैं; इसी से उसे भय लगा रहता है। वैधव्य की कल्पना मात्र से वह जैसे काँप उठती है।"

"अच्छा, इस तरह की बात अब नहीं करना।" ऐसा कह कर उमा चुप हो गई। नीरजा सोते में सुबकने लगी थी। उसने उसे थपथपाया और कलेजे से लगाकर सुला दिया।

अमरनाथ फिर अपनी पुस्तक पढ़ने लगा। आज उसे नींद ही नहीं आ रही थी। वह न जाने क्या सोच रहा था ?

२७

हमारे देश में नारी अभी पुरुष से बहुत भयभीत है। वह उस पर विश्वास नहीं करती। वह उससे दूर बनी रहना चाहती है, उसे दूर रखना चाहती है। वह उससे घुलना-मिलना नहीं चाहती। शताब्दियों से एक दूसरे को एक दूसरे का सम्पर्क नहीं मिला, इसी से यह भय, यह दूरी, यह अविश्वास है। गाँवों में अब भी बहुत-सी ऐसी स्त्रियाँ हैं जिन्होंने अपने घर वालों को छोड़कर कभी किसी बाहर के व्यक्ति से बात नहीं की, किसी बाहर के आदमी के सामने वे पड़ी ही नहीं, यहाँ तक कि उन्होंने घर की देहरी भी नहीं नाघी। उन्हें इसकी आवश्यकता ही नहीं पड़ी, ऐसी स्थिति ही उनके सामने नहीं खड़ी हुई। वे जीवन भर क्या सोचती रही हैं, कभी कुछ सोचा भी है या नहीं, लेकिन इस स्थिति की कल्पना करके जी जैसे बहुत घबराता है। यह भी क्या जीवन है !

क़सबों और नगरों में स्थिति इससे कुछ भिन्न है। वहाँ सामाजिक परिस्थितियाँ स्त्री-पुरुष को एक दूसरे के सम्पर्क में लाने में सहायक होती हैं। लेकिन शिक्षित महिलाओं को छोड़कर सामान्य भारतीय नारी में झिझक वहाँ भी बनी हुई है। यह झिझक बहुत कुछ ऊपरी है। किसी समय भी इस झिझक को दूर किया जा सकता है। सम्पर्क के कम अवसर मिलने के कारण ही स्त्री और पुरुष के बीच ये पर्दे पड़े हुए हैं। सम्पर्क जैसे-जैसे बढ़ता चला जाता है, वैसे-वैसे ये पर्दे उठते या गिरते चले जाते हैं।

फिर भी पुरुष नारी से जिस आत्मीयता की माँग करता है, वह उसे नहीं मिलती।

हमारे देश मे नारी से आत्मीयता प्राप्त करने का एक उपाय है।

यदि मध्यवर्ग के किसी घर में आप आते-जाते है और वहाँ कोई वृद्धा आपको पसन्द नहीं करती, तो आप उसे दादी कह दीजिये। फिर देखिए उसकी ममता आपके प्रति कैसी उमड़ती है। यदि कोई प्रौढ़ा आपका विरोध करती है, तो उसे ताई या चाची कहकर देखिये। मा कह दें, तो बिगड़ा हुआ काम ही बन जाय। फिर देखिये आपकी कैसी आव-भगत उस घर मे होती है। आदर-सम्मान, स्नेह-ममता, चाय-नाश्ता सब लीजिए। अच्छा यह हो कि उस घर वाले उसकी मालकिन को जो कहते हों, वही आप भी कहे; जैसे जिया, जिज्जी, अम्मा, ताई आदि। आप एकदम उसके हो जायँगे। अपने बेटे-पोतों से भी अधिक वह आप पर विश्वास करने लगेगी। लेकिन इन सम्बोधनों मे थोड़ी सचाई भी होनी ही चाहिए। सम्बोधन एकदम सारहीन हुआ, तो आप किसी दिन संकट मे पड़ सकते हैं।

कोई युवती यदि आपसे उदासीन है, आप उसे हँसाने का प्रयत्न करते है और वह नहीं हँसती, आप चाहते है कि वह आपके दुःख-दर्द की बात सुने और वह अपने घर के काम-काज में लगी रहती है तो एक दिन उससे धीरे-से कहिये—दीदी और फिर आप उदासीन हो जाइए और इसका प्रभाव देखिए। देखिये कि दीदी कैसे आपके पीछे दौड़ती-फिरती है। लेकिन यह दीदी शब्द कुछ ढलती अवस्था की और कम सुन्दर स्त्रियों पर ही अपना

असर करता है। दीदी का अर्थ ही यह है कि वे अवस्था में आपसे कुछ बड़ी हैं। मान लीजिये कोई युवती है और बहुत सुन्दर है और वह प्रत्येक व्यक्ति को सन्देह की दृष्टि से देखती है और आप उसके सम्पर्क में आना चाहते हैं, केवल उससे बात करना चाहते हैं, या विश्वासपात्र भी होना चाहते हैं, तो कभी भूले से उसे बहिन कह दीजिये। अगर वह अपने मन की सारी व्यथा किसी दिन आपके सामने खोलकर न रख दे, तो आप हमें दुनिया भर का झूठा समझिये। और तब आप इस स्थिति के लिये तैयार रहिये कि वह किसी दिन आपके सामने एकांत में रो भी सकती है। लेकिन भारतीय नारी के साथ एक झंझट है। वह आप समझ लीजिये। यदि उसने एक बार आपको भाई समझ लिया, तो फिर हमेंशा के लिए छुट्टी हुई। यदि आप एक बार गम्भीरतापूर्वक उसे बहिन कहकर उससे प्रेम करना चाहें, तो यह सम्भव नहीं है। उसके हाथ से राखी बँधवाकर उससे रोमांस की भी बात करना चाहें, तो आप भूल में हैं। यहाँ आपका छल काम नहीं करेगा। भारतीय नारी के संस्कार बहुत प्रवल होते हैं। उन संस्कारों के ऊपर उठना उसके वश की बात नहीं है। उसके मन में सम्बन्ध बहुत स्पष्ट और दृढ़ होते हैं। वहाँ पति-पति है, भाई-भाई।

अच्छी बात यह है कि आप किसी से कुछ न कहे। किसी को किसी संबोधन से न पुकारें। किसी को कुछ कहने की आवश्यकता भी नहीं है। लेकिन यदि आप आत्मीयता चाहते हैं तो भारतीय नारी से कोई सम्बन्ध बनाकर चलना होगा। अपनी ओर से आप स्पष्ट नहीं करेंगे, तो थोड़े दिनों में वह स्वयं पूछेगी कि आप उसे क्या समझते हैं। इस प्रश्न का आपके पास कोई उत्तर होना चाहिए।

और यह भी सच है कि कुछ लड़कियाँ वहिन कहने से चिढ़ती भी है—विशेष रूप से शिक्षित लड़कियाँ। इन्हें आप पहचान सकते हैं—पहली दृष्टि में।

तो अमरनाथ ने मोहिनी को भाभी क्या कह दिया; दोनों के बीच की सारी दूरी सहसा विलीन हो गयी। दोनों ने एक दूसरे को देखा तो लगा

वे नये सिरे से एक दूसरे को पहचान रहे हैं; दोनों पर एक दूसरे का कुछ अधिकार हैं और उस अधिकार का प्रयोग किया जा सकता है और दोनों का कुछ कर्तव्य है—उस कर्तव्य का निर्वाह करना होगा, इच्छा या अनिच्छा से। जिस आत्मीयता की खोज अमरनाथ को थी, वह थोड़ी बहुत यहाँ मिलेगी।

लेकिन स्नेह कोमल ही नहीं, कठोर भी होता है। अपने नियम वह स्वयं निर्धारित करता है।

और स्नेह में कुछ भी निश्चित नहीं कि किस समय क्या हो जाय।

अर्थ ही जीवन की गति है। जिस व्यक्ति की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं होती, उसका मनोविज्ञान ही बदल जाता है। अमरनाथ पिछले दो वर्ष से बेकार था। जितना भी मनोबल उसमें था, वह उसके सहारे जी रहा था; फिर भी प्रत्येक व्यक्ति के साहस की एक सीमा होती है। वह साहस अब धीरे-धीरे टूट रहा था। इसी अवधि में आशा के विवाह की समस्या उठ खड़ी हुई—आशा जो उसकी बेटी नहीं थी, लेकिन जिसके विवाह की चिंता उसे अपनी बेटी के विवाह से भी अधिक थी। वह क्या कर पायेगा! बेकारी की स्थिति में उसे चारों ओर अन्याय ही अन्याय दिखाई देने लगा। सब सम्पन्न व्यक्ति उसे शोषक दृष्टिगोचर होने लगे। किसी को भी अच्छे पद पर देखता तो सोचता—या तो यह आदमी ख़ुशामद से बड़ा हुआ है या बेईमानी से। यह विकृति यहाँ तक बढ़ गयी कि यदि किसी व्यक्ति को अपनी पत्नी या बड़ी लड़की के साथ उसके किसी अफ़सर के यहाँ बैठे देखता तो सोचता—ज़रूर इसने इसे अपनी पत्नी या पुत्री के साथ छूट दे रखी है। किसी के भी मुक्त हास्य से उसे ईर्ष्या उत्पन्न होती। संसार में जब इतना दुःख है, तो ये लोग इस प्रकार कैसे हँस पाते हैं! पहले वह ग़रीब लोगों की बस्ती की ओर बहुत कम जाता था। अब रास्ता छोड़कर उधर से निकलने लगा। टूटे-फूटे घरों, फटे-मैले कपड़ों, रोग-शोक से जर्जर आदमियों और चारों ओर की गन्दगी को देख उसे दया के स्थान पर क्रोध उत्पन्न होता। ये लोग क्यों नहीं विद्रोह कर बैठते, इस पर उसे खीभ उत्पन्न होती। बहुत

परीशान होकर उसने एक बार सोचा—मैं भी कम्यूनिस्ट हो जाऊँ। लेकिन किसी भी राजनीतिक या साहित्यिक वाद से अपने को सम्बद्ध करने का उसका स्वभाव नहीं था; अतः यह विचार उसने स्थगित कर दिया। संसार जो एक दिन उसे इतना सुन्दर लगता था, एकदम भयंकर दिखाई देने लगा। जीवन में कुछ सार नहीं है, यह स्वर उसके अन्तःकरण को परिव्याप्त करके गूँजने लगा।

मोहिनी ने चाय लाकर सामने रख दी; लेकिन आज चाय पीने को अमरनाथ का मन नहीं था। उसका 'मूड' बहुत ही ख़राब था। यह उसका अपना घर नहीं है; अतः उसे नॉर्मल रहकर बात करनी चाहिये, एक बार उसने सोचा भी। लेकिन मन को नियन्त्रित करते-करते उसका व्यवहार कुछ 'ऐबनॉर्मल' हो ही उठा। यह बात मोहिनी की दृष्टि से छिपी न रह सकी।

"आज मैं चाय नहीं पीऊँगा।"

"अच्छा! चाय के लिए यह बात पहली बार सुनी जा रही है। ज़रूर कोई ख़ास बात है।" इतना कहकर मोहिनी ने विस्कुट की प्लेट उसके आगे बढ़ायी और प्याले में चाय बनाने लगी।

"इस संसार में कहीं भी सुन्दर भावों का मूल्य नहीं है। सभी कहीं असुन्दर फल-फूल रहा, मोहिनी।" अमरनाथ ने खिन्न होते हुए कहा।

मोहिनी कुछ चौंकी। बोली, "यह मैं जानती हूँ; लेकिन संसार के सम्बन्ध में ऐसी ख़राब धारणा बनाकर तुम अपने मन को क्यों खराब करते हो? बुरी बातों पर सोचना भी बुरी बात है।"

"आज चारों ओर भ्रष्टाचार के अतिरिक्त कहीं कुछ दिखाई नहीं देता। लोग बातें करते हैं बहुत ऊँचे आदर्शों की; लेकिन यदि तुम उनके व्यक्तिगत जीवन को देखो तो तुम्हें उनसे घृणा हो जाय।"

मोहिनी ने शांत भाव से कहा, "संसार में भले-बुरे सभी प्रकार के व्यक्ति होते हैं। हमें उनकी बुराई से क्या लेना-देना है? इन लोगों से जितना आवश्यक है, उतना ही सम्बन्ध तुम रखो।"

"लेकिन उन्नति के सभी महत्वपूर्ण दरवाज़ों पर ये लोग क्रूर प्रहरियों के समान खड़े हैं। जीवन के विकास के लिए भला आदमी कहीं से भी प्रवेश नहीं कर पा रहा है।"

"तब क्यों नहीं तुम इतने बड़े बनते कि लोग तुम्हारे दरवाज़े पर खड़े रहें। बुराई ने विकास के सभी मार्ग अवरुद्ध कर दिए हैं, यह मैं नहीं मानती।"

"वही करूँगा, वही।" अमरनाथ ने आवेश में भर कर कहा, "इस कॉलेज से मुझे इसलिए पृथक कर दिया गया कि विभाग का अध्यक्ष मुझे सहन नहीं कर पाया। कई स्थानों पर मैं इंटरव्यू के लिए गया—बड़ी-बडी आशाएँ लेकर। मैंने सोचा : मेरे पास अच्छी डिग्री है, अध्यापन का मेरा अपना अनुभव है, मैंने कुछ लिखा है; अतः मैं ले लिया जाऊँगा; लेकिन तुम जानती हो, हुआ क्या? मुझसे पूछा गया कि मैं कौन हूँ? यह कि मै अपने नाम के आगे शर्मा लगाता हूँ कि वर्मा कि गुप्ता? दूसरे स्थान पर इंटरव्यू एक धोखा था। उन्हें अपना विद्यार्थी कैसे ही लेना था—वह उन्होंने ले लिया।"

"तुम्हारे प्रति अन्याय हुआ है, यह ठीक है; लेकिन हताश होने की कोई बात नहीं है।" मोहिनी ने कहा।

"आज मुझे दो वर्ष हो गये, मोहिनी। न जाने कितने प्रार्थना-पत्र मैंने इधर-उधर भेजे हैं, कहीं से भी कोई उत्तर नहीं आता। मेरे इतने मित्र हैं। धीरे-धीरे उन्होंने मेरा साथ छोड़ना प्रारम्भ कर दिया है। मेरे इतने परिचित हैं। आज तक किसी ने नहीं पूछा कि मेरा क्या दुःख-दर्द है। मेरी मा है, मेरी पत्नी है, बच्चे हैं। उनके प्रति मेरा कर्तव्य है। मैं उन्हे दुखी नहीं देख सकता। मैं अच्छे ढंग से रहा हूँ और अच्छे ढंग से रहूँगा।"

"तो उसके लिए क्या करोगे?" मोहिनी ने तंग आकर पूछा।

"जो सब करते हैं।"

"वही पूछती हूँ।" मोहिनी ने कड़े पड़ कर कहा।

"बुरा आदमी बनूंगा।"

"क्या कहा ?"

"तुमने सुना नहीं—बुरा आदमी बनूँगा।"

"फिर कहना।" मोहिनी ने उत्तेजित होते हुए निश्चयात्मक रूप से जानना चाहा।

"आई विल बिकम ए बैड मैन।"

मोहिनी खड़ी हो गई। बोली : मेरे साथ आओ। अमरनाथ की कुछ समझ में नहीं आया कि वह क्या कहना चाहती है। दरवाज़ा खोलकर उसने उससे कहा : जाओ, जो तुम्हारे मन में आये करो और अब यहाँ कभी मत आना।

२८

दो दिन से जब से अमरनाथ को मोहिनी ने घर से निकाल दिया है, वह बहुत क्षुब्ध है और दो दिन से जब से अमरनाथ मोहिनी के घर से चला आया है, मोहिनी बहुत बेचैन है।

घर से निकलते ही अमरनाथ ने सोचा : मुझे संसार में किसी की सहानुभूति की आवश्यकता नही है। यह मोहिनी अपने को समझती क्या है ? मेरा घर ! तुम क्या अपने घर का अभिमान करती हो, अब मैं ही तुम्हारे घर कभी नहीं जाऊँगा। उँह, मेरा घर !

अमरनाथ को दरवाज़े से बाहर करके मोहिनी ने सोचा : अच्छा हुआ, इस आदमी से प्राण छूटे। 'फ्री थिंकर' कहीं का ! यह आदमी जहाँ जाएगा, वहीं 'कैओस' क्रिएट करेगा। ऐसे आदमियों की मेरे घर में कोई ज़रूरत नहीं है। ऐसे आस्थाहीन व्यक्तियों से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है।

मोहिनी से आघात पाकर अमरनाथ दयालबाग़ के इधर-उधर, रेलवे-लाइन के पार, किले के आस-पास और यमुना के किनारे निरुद्देश्य घूमता

रहा। अमरनाथ से अप्रसन्न होकर मोहिनी घर के कभी इस, कभी उस कोने में गुमसुम बैठी रही।

अमरनाथ को रास्ते में टोककर उसके एक मित्र ने पूछा, "आप कुछ बीमार थे क्या ?"

"नहीं तो।"

"कुछ थके-से तो हैं।'

"नहीं तो।"

"चिन्तित हैं ?"

"नहीं तो।"

"कुछ गड़गड़ जरूर है आपके साथ।"

"कुछ नहीं है। आपका दिमाग़ खराब हो गया है।"

"ऐसा ही होगा; लेकिन मेरे यार, मुझे खाने को क्यों दौड़ता है ?"

मोहिनी को मधुसूदन ने अकारण इधर से उधर टहलते पाया तो बोले, "आजकल तुम्हें क्या हो गया है मोहिनी ?"

"मुझे क्या हो जाता ?"

"कुछ खोयी-खोयी-सी लगती हो।"

"आपका दृष्टि-भ्रम है।"

"कुछ डूबी-डूबी-सी, कुछ चिन्तित-सी।"

"चिन्तित मैं क्यों होती ? मुझे किस बात का अभाव है ?"

"कुछ अनमनी-सी तो हो।"

"मेरा किसी ने क्या बिगाड़ा है जो अनमनी रहूँगी ?"

"अरे तो, इतना बिगड़ती क्यों हो ? समझने में मुझसे ही कुछ भूल हो गई होगी।"

अमरनाथ के मन का क्षोभ कुछ कम हुआ तो उसने अपने से प्रश्न किया : लेकिन मुझे मोहिनी पर क्रोध करने का अधिकार क्या है ? क्यों मैंने उससे इस तरह की बात की ? संसार भर की समस्याएँ मैं उसके घर में जाकर क्यों 'डिसकस' करता हूँ ? चुप भी तो बैठ सकता हूँ। ये

कोई शिष्ट व्यक्तियों के लक्षण हैं कि मन में जो आया कह बैठे। उसने मुझे अपना स्नेह दिया था, मुझसे कुछ लिया नहीं था। मैं कितना अभागा हूँ कि उस निश्छल पवित्र स्नेह-बंधन को इस प्रकार तोड़ कर चला आया।

मोहिनी के हृदय का आवेश कुछ थमा तो उसने अपने को धिक्कारा: तुम्हें हो क्या गया है मोहिनी? स्नेह के भूखे एक व्यक्ति ने तुम्हें भाभी कह दिया तो तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो गया। तुम्हारा उसने कोई अपमान नहीं किया था। उसने कुछ भी ऐसा नहीं किया जो मर्यादा के प्रतिकूल हो। अधिकार का प्रयोग कहीं इस तरह करते हैं? इससे वह क्या समझेगा? यह तुम्हारी भूल है, मोहिनी। तुम अपने पति को नहीं सुधार पायीं। बाहर के आदमी को क्या सुधारोगी! तुम किसी को सुधारने वाली होती कौन हो?

अमरनाथ सोच रहा था—उससे भूल हो गई।

मोहिनी सोच रही थी—सारी भूल उसी की है।

अमरनाथ सोच रहा था—मोहिनी बाज़ार में कहीं आती जाती दिखाई दे जाती, तो मन को कुछ सान्त्वना मिलती!

मोहिनी सोच रही थी—अमरनाथ मेहता या कौल किसी के संग ही आ जाता, तो कितना अच्छा होता!

अमरनाथ सोच रहा था—मोहिनो से भेंट हो गई तो अब वह उसके मन को कभी नहीं दुखायेगा।

मोहिनी सोच रही थी—अमरनाथ लौट आया तो अब वह उससे कभी अप्रसन्न न होगी।

तीसरे दिन दो बजे के आसपास किसी ने मोहिनी की किवाड़ों पर धीरे से कई बार थाप दी। मोहिनी आँगन में थी। सहसा दुवारी में आ गई। अमरनाथ सिर झुकाए भीतर आकर खड़ा हो गया। मोहिनी ने साँकल बंद कर दी। दोनों ने एक दूसरे को देखा और एक साथ बिना

कुछ सोचे एक दूसरे के कन्धे से लगकर खड़े हो गए। आँखों से आँसू बहने लगे।

इस स्थिति की दोनों ने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी; लेकिन प्रयत्न करने पर भी दोनों से बोला नहीं गया।

मोहिनी ने कोमलता से अमरनाथ का हाथ अपने हाथ में ले लिया। अमरनाथ ने वह हाथ धीरे से छुड़ाया और सहसा दरवाज़े से बाहर हो गया।

लेकिन इस बार दोनों भिन्न ही मनोदशा में थे। मोहिनी जानती थी—अमरनाथ फिर लौटकर आयेगा। अमरनाथ जानता था—मोहिनी के पास उसे फिर लौटकर जाना होगा।

२६

कृष्णप्रसाद कौल जिस मकान में रहते थे, उसकी बनावट देखकर लगता था कि वह जैसे एक स्थान पर दो छोटे परिवारों के रहने के लिए बनवाया गया हो। सड़क के किनारे फाटक में प्रवेश करने के उपराँत फूल-पौधों के लिए थोड़ी ज़मीन। तीन सीढ़ियाँ चढ़कर एक लंबा चबूतरा। आगे बीच में एक हॉल। उसके दोनों ओर ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ। फिर दोनों ओर तीन-तीन कमरे, किचन, बाथरूम आदि। बीच में नीचे के हॉल पर एक कमरा। कमरे में तीन दरवाज़े—एक सामने की ओर, दो इधर-उधर। दोनों-भाग सम्मिलित भी, अलग-अलग भी। पीछे की ओर गार्डन के लिए काफ़ी खुली ज़मीन। वहीं एक कोने पर दो छोटे कमरे—शायद नौकरों के लिए। दूसरे कोने पर गैराज। इतने बड़े मकान में रहने वाले ढाई प्राणी—कृष्णप्रसाद, अपर्णा और उनका या कंचन और कौल का बच्चा पंकज।

आज टहलते-टहलते अमरनाथ आगे बढ़ गया था। बँगले में जाकर

उसने आवाज़ दी—कौल साहब। कृष्णप्रसाद ने उसे ऊपर बुला लिया। पिछली बार जब वह अपर्णा के साथ आया था तो बाईं ओर के ज़ीने से ऊपर गया था, इस बार उसे दाहिनी ओर के ज़ीने से जाना पड़ा।

ऊपर पहुँचकर उसने पूछा, "मिसेज़ कौल कहाँ हैं ?"

"अपने हिस्से में।" कृष्णप्रसाद ने कहा।

"इसका मतलब ?"

"मकान मालिक ने यह मकान अपने दो लड़कों और उनकी बहुओं के रहने के लिए बनवाया था; इसी से ये दोनों हिस्से अलग हैं। एक हिस्से में मैंने अधिकार कर रखा है, दूसरे में अपर्णा ने। व्यापार के संबंध मे लोग मुझसे मिलने आते रहते हैं। इससे अपर्णा को उलझन होती है। उधर उसकी सहेलियाँ उससे भी मिलने आती ही हैं। इससे मेरे काम मे बाधा पड़ती है। ड्राइंग-रूम अलग-अलग हैं। इससे इतने बड़े मकान का उपयोग भी हो जाता है। जब किसी ऐसे व्यक्ति से मिलना होता है, जो दोनों का परिचित होता है तो हम नीचे के हॉल में मिल लेते हैं।"

इतने में नौकरानी दरवाजे पर खड़ी दिखाई दी।

"क्या है जगरानी ?" कृष्णप्रसाद ने पूछा।

"चाय लगा दी है बाबू जी।" जगरानी ने कहा।

"अपर्णा कहाँ है ?"

"नहा कर कपड़े पहन रही है। उन्हीं ने कहा है—साहब से कहो।"

"अच्छा चलो, हम आते हैं।"

कौल और अमरनाथ बीच के कमरे में पहुँचे। कमरे का उपयोग डाइनिंगरूम के रूप में होता था। दोनों लम्बी मेज़ के एक ओर बैठ गए। उसी समय दरवाजे से अपर्णा ने प्रवेश किया। अमरनाथ उठकर खड़ा हो गया।

"ओह! अमरनाथ जी है।"

"जी हाँ। आज सुबह ही सुबह आप दोनों को कष्ट दिया।"

"किसी कॉमन फ्रेन्ड के प्रभात-काल में दर्शन हों, इससे बड़ी प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है !" अपर्णा ने मुस्कराकर कहा।

"मेहमान कहाँ हैं अपर्णा ?" कौल ने पूछा।

"कमरे में होंगे शायद। टहलकर तो आ गए हैं।"

"चाय उनके लिए वहीं जायगी न ?".

"नहीं, यहीं बुलाए लेते हैं !"

इतना कहकर अपर्णा ने जगरानी को आवाज़ दी। जगरानी ने मेहमान को जाकर सूचना दी। जिस व्यक्ति ने प्रवेश किया उसकी अवस्था होगी पैंतीस के आसपास। श्वेत खद्दर के वस्त्र। मझोला कद। रम्य-दर्शन। हाथ में लम्बा सिगार। आते ही 'लाइटर' से उसे उन्होंने जलाया। दृष्टि मिलते ही अमरनाथ ने नमस्ते की। उन्होंने भी मुस्कराकर हाथ जोड़ दिए और वैसे ही मुस्कराकर कौल के पास बैठ गए। अमरनाथ ने इधर-उधर देखा और मेज़ के दूसरे कोने से उठकर ऐश-ट्रे उनके सामने रख दी। उन्होंने धीरे से कहा—थैंक्यू। अमरनाथ मेज़ की चौड़ाई की ओर अपर्णा के पास बैठ गया।

"आप दोनों को इंट्रोड्यूस करा दूँ" अपर्णा ने चाय बनाते हुए कहा, "आप अमरनाथ—कवि और आलोचक एक साथ—पहले यहाँ के एक डिग्री कालेज में हिन्दी-लेक्चरर थे। आजकल साहित्य की साधना में लीन हैं।

"बेकार कहिए" अमरनाथ ने कहा। कौल साहब मुस्कराये।

"ये हमारे मेहमान देव जी। बम्बई से आये हैं। देश-सेवा का काम करते हैं।"

"मेरा पूरा नाम देवदत्त है।" मेहमान ने बुझी हुई सिगार को दोबारा जलाने का प्रयत्न करते हुए कहा।

"विचारों से 'कम्यूनिस्ट' हैं शायद ?" अमरनाथ ने पूछा।

कृष्णप्रसाद और अपर्णा दोनों ही चौंक पड़े। अपने प्रश्न से अमरनाथ चौंक उठा। ऐसा कहने की उसकी इच्छा नहीं थी; फिर भी उसके

मुँह से इतना निकल ही गया। देवदत्त के प्रवेश करते ही न जाने कैसे उसे सन्देह हो गया था कि हो न हो, यह वह व्यक्ति है जिसे अपर्णा प्रेम करती हैं। अपर्णा के प्रति झुँझलाहट उसके मन में थी ही। कृष्णप्रसाद के संबंध मे भी उसकी धारणा कुछ अच्छी न थी! कंचन के प्रति क्रूर व्यवहार और उसके ऊपर वेश्या के यहाँ उसका आना-जाना! अपर्णा को वह 'फॉरवर्ड' ही समझता था। यह नहीं सोचता था कि वह अपने पति की आँखों के सामने किसी को खुलकर प्यार कर सकती है। यहीं तक नहीं, अपने प्रेमी को उसने अपने हिस्से में ठहरा रखा है। यह कैसी आधुनिकता हैं, कैसी फॉरवर्डनैस? और चाय उसे अपने कमरे में ही मिलती है। यह भी नहीं कि कौल के साथ बैठकर वह चाय भी पी ले।

लेकिन अमरनाथ कौन होता है इन दोनों के बीच न्याय करने वाला?

यह क्या ईर्ष्या है? नारी की दृष्टि में ऊँचे उठने का प्रयत्न है? कौल के प्रति सहानुभूति है?

देवदत्त पर इस प्रश्न का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

उसने सिगार ऐश-ट्रे में टिकाकर रख दिया और चाय का प्याला उठाते हुए कहा, "जी हाँ, हूँ तो। आपको कम्युनिस्ट पसन्द नहीं हैं क्या?"

"उनकी कुछ बातें बेहद पसन्द हैं।" अमरनाथ ने कहा।

अपर्णा के मुख पर मुस्कराहट दिखाई दी। पूछा "जैसे?"

"जैसे भौतिकवाद का उनका मूल सिद्धान्त ही। यह जगत सत्य है—उनकी यह बात मुझे बहुत अच्छी लगती है। इससे हमारे साहित्य को नयी प्रेरणा मिली है। सूक्ष्म कल्पना की अति समाप्त हो गई है। अपनी धरती की ओर हमारा ध्यान गया है। उसको हम महत्व देने लगे हैं। उसे सच्चे अर्थों में अब हम प्यार करते हैं। शोषक और शोषित वाली बात मे भी तथ्य हैं ही। इससे धनी और निर्धन के अन्तर को हम समझने लगे हैं। श्रम करने वालों का अपना महत्व है, अब सभी इस बात को मानते हैं।

साम्यवादी सिद्धान्तों का जहाँ स्वस्थ रूप में प्रयोग हुआ है, वहाँ हमारे साहित्य को नया बल मिला है।"

"तब आपका मतभेद कहाँ है?" देव जी ने पूछा।

"राजनीति और साहित्य का जहाँ मतभेद है वहीं।" अमरनाथ ने तीखेपन को बचाते हुए कहा।

"मैं न तो राजनीति को समझता हूँ और न साहित्य को, केवल व्यापार को समझता हूँ" कृष्णप्रसाद बोले, "लेकिन यह राजनीति और साहित्य का झगड़ा क्या है? इसमें मेरी भी दिलचस्पी है।"

"कम्यूनिस्ट लोग साहित्य को अपने प्रचार का अस्त्र मात्र समझते हैं, ऐसा अमरनाथ जी का विचार है।" देव जी ने कहा।

"इससे क्या हानि है?" अपर्णा ने पूछा।

"इससे साहित्यकार की स्वतन्त्रता का अपहरण होता है।" अमरनाथ ने उत्तर दिया।

"सूर और तुलसी का काव्य क्या है?" अपर्णा बोली, "क्या उन पर रामानन्द और बल्लभाचार्य का प्रभाव नहीं है? धर्म का प्रभाव भी उतना ही हानिकारक है जितना राजनीति का।"

"वह प्रेरणा की बात थी। प्रेरणा और प्रचार में बहुत अन्तर होता है। प्रेरणा व्यक्ति कहीं से भी ग्रहण कर सकता है—राजनीति से, धर्म से, दर्शन से, समाज से, प्रकृति से, यहाँ तक कि व्यक्ति से—लेकिन इतना होते हुए भी उसको स्वतन्त्र होना चाहिये। राजनीति का अनुशासन साहित्य नहीं सहन कर सकता। जहाँ से जो अच्छा लगे, साहित्यकार उसे ले सकता है। उस पर कोई बन्धन नहीं है। उसके ऊपर किसी प्रकार का बन्धन नहीं होना चाहिये। केवल ऐसी दशा में ही साहित्य का विकास सम्भव है, नहीं तो वह अवरुद्ध हो जायगा। यह बात मैं भीतर से अनुभव करके, पूरी ईमानदारी के साथ कह रहा हूँ। किसी पर भी किसी प्रकार का आक्षेप करना मेरा लक्ष्य नहीं है।"

"आप शायद व्यक्तिवादी हैं?" देव जी ने प्रश्न किया।

"नहीं, मैं व्यक्ति की स्वतन्त्रता का पक्षपाती हूँ।" अमरनाथ ने उत्तर दिया।

"यह तो एक ही बात हुई?"

"नहीं एक बात नहीं है। मैं व्यक्तिवाद के उस अति के पक्ष में नहीं हूँ जो समाज-विरोधी तत्वों को जन्म देती है।"

"तब आप समाज को मानते हैं?"

"जी हाँ, मानता हूँ।"

"राष्ट्र को?"

"राष्ट्र को सबके ऊपर।"

"उसके आगे?"

"उसके आगे मैं संसार का कल्याण चाहता हूँ; लेकिन राष्ट्र के नागरिक के रूप में ही।"

"अर्थात्?"

"अर्थात् मेरे देश पर यदि कोई अन्य देश आक्रमण करे, तो मैं आँख मींच कर अपने देश का साथ दूँगा—चाहे मेरा देश उस देश की तुलना में आर्थिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से कितना ही पिछड़ा क्यों न हो। इसमें मेरे लिये द्विविधा की कोई बात ही नहीं है।"

"मैं आपकी भावना को समझ सकता हूँ।" देव जी ने कहा, "फिर भी व्यक्ति-स्वातंत्र्य वाली आपकी धारणा से मैं बहुत अधिक सहमत नहीं हूँ।"

"व्यक्ति के कुछ अपने मौलिक अधिकार होते हैं, उनकी रक्षा होनी चाहिए। आत्मा को शायद आप लोग नहीं मानते···।"

"आप कहिए। मै केवल बात समझना चाहता हूँ।"

"व्यक्ति की आत्मा की आवाज़ को किसी को भी नहीं दबाना चाहिए, इतना ही मैं चाहता हूँ।"

"थोड़ा स्पष्ट कीजिए।"

"मान लीजिए, एक लड़की किसी लड़के को प्यार करती है···।'

अपर्णा ज़ोर से हँसी। कृष्णप्रसाद भी मुस्करा दिए।

"आप लोग हँसे क्यों ? मैं बात ही नहीं कहता।" अमरनाथ बोला।

"नहीं, वैसे ही हँसी आ गई। आप बात कीजिए। चाय से राजनीति, राजनीति से प्यार !"

"तो धर्म को इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। उन्हें यह अधिकार होना चाहिए कि लड़की मस्जिद में जा सके और लड़का मन्दिर में। धर्म के हस्तक्षेप करने की बात ही नहीं है यह। इस बात पर उन दोनों में भी कभी मतभेद नहीं होना चाहिए। दोनों में से किसी को भी ज्ञात या अज्ञात रूप से दूसरे को अपने धर्म की ओर नहीं खींचना चाहिए। प्रेम धर्म की परिधि से बाहर है—मैं कहूँगा उससे कहीं ऊँचा है।"

"आपके विचार तो प्रगतिशील लगते है; फिर यह···" देवजी ने बात पूरी नहीं की।

"मैं पूरी बात कह लूँ। हो सकता है कि मेरे ये ही विचार आपको प्रतिक्रियावादी भी लगने लगें।····इसी प्रकार राजनीति में यदि दोनो की दो सिद्धान्तों में आस्था है, तो यहाँ भी दोनों को एक दूसरे की आस्था पर आक्षेप नहीं करना चाहिए।"

"यहाँ मेरा आपसे मतभेद है।" देव जी ने टोकते हुए कहा।

"मैं जानता था।" अमरनाथ बोला।

"आपको क्या आपत्ति है, हम भी सुनें।" अपर्णा ने देव जी से प्रश्न किया।

"जो लड़की मुझे प्यार करेगी, वह मेरे व्यक्तित्व का सम्मान करेगी—करेगी न ?"

"निश्चित रूप से।"

"मेरे विचार मेरे व्यक्तित्व का एक अंग हैं ?"

"निस्संदेह।"

"तो वह मेरे विचारों का भी आदर करेगी ?"

"यह तो ठीक है।"

"वह उन्हें समझने का प्रयत्न करेगी ?"

"हाँ।"

"यानी उनमें उसे आस्था होगी ?"

"यह तर्क आपका ठीक नहीं। विचारों का आदर करना और उनमें आस्था होना दो बातें हैं। यह कोई आवश्यक नहीं है कि जो आपके विचारों का आदर करे, उसकी उनमें आस्था भी हो।" अमरनाथ ने कहा।

"तो यदि मेरे विचारों में उसकी आस्था नहीं, तो वह मुझे क्या समझेगी ? जो मुझे समझती नहीं, वह मुझे क्या प्यार करेगी ?"

"यह बात तो तुम्हारी ग़लत है देव।" अपर्णा बोली।

"यह तुम कहती हो अपर्णा ?" देव जी ने निर्विकार भाव से अपर्णा से पूछा।

"हाँ देव, तुम्हारे तर्क में कहीं भूल अवश्य है—चाहे मैं उस भूल की ओर इंगित न कर पाऊँ। इतना तो मैं भी मानती हूँ कि प्यार—यदि वह कुछ है—धर्म और राजनीति दोनों से ऊपर है। अच्छा यही है कि दोनों के राजनीतिक और धार्मिक विश्वास भी एक-से हों; लेकिन यह कोई आवश्यक शर्त नहीं है। अमरनाथ जी की तरह मैं भी प्यार को इन सब बंधनों से ऊपर मानती हूँ।"

देव जी ने 'लाइटर' से फिर अपना लम्बा सिगार सुलगाया। मुस्कराते हुए अत्यंत शान्त भाव से उन्होंने कहा, "यह बात मैं तुम्हे फिर विस्तार से समझाऊँगा अपर्णा।"

कहीं बात बढ़ न जाय, यह सोचकर अमरनाथ उठ खड़ा हुआ। बोला, "मैं तो टहलने आया था। सौभाग्य की बात है कि आप लोगों के दर्शन हो गये। अब मैं चलूं।"

उसके उठते ही वे तीनों भी उठ पड़े।

३०

परनिंदा में जो रस है वह शायद ही और किसी विषय में हो। इसके

सामने राजनीति की चर्चा, साहित्य पर तर्क-वितर्क और क्रिकेट मैच की कमेंट्री भी फीकी पड़ जाती हैं। कहीं कोई गोष्ठी न जम रही हो तो धीरे-से किसी की निंदा प्रारम्भ कर दीजिए और फिर चुप बैठकर रस लीजिए। न जाने कितनी रसमयी बातें सुनने को मिलेंगी—ऐसी बातें जिनकी आप स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकते। थोड़ी देर में एक व्यक्ति में से दूसरे की, दूसरे में से तीसरे की निंदा का इतिहास प्रारम्भ हो जायगा—इतिहास जो कभी समाप्त होना ही नहीं जानता। प्रत्येक शहर में कुछ स्थान ऐसे होते हैं जहाँ बैठकर यह काम व्यवस्थित रूप से होता है और प्रत्येक शहर में ऐसे व्यक्ति होते हैं जो यह काम कलात्मक ढंग से करते हैं। परनिंदा भी एक कला है।

आगरा एक रूढ़िवादी नगर है। उसमें आधुनिकता का प्रवेश अब भी बहुत नहीं हो पाया है। वहाँ दो प्राणियों का मिलना-जुलना लोगों की आँखों में इतना खटकता है कि न पूछिए।

अमरनाथ आजकल बहुत परेशान हैं। परेशानी सच्ची है। उसका नाम मोहिनी के साथ जोड़ दिया गया है।

एक दिन वह राजामंडी के एक छोटे-से रैस्ट्रां में घुसा। एक कोने में बैठे तीन-चार सज्जन चाय पी रहे थे—सज्जन ही कहना चाहिए उन्हें। जो दूसरों के हित का ध्यान रखते हैं, उन्हें सज्जन न कहें तो और क्या कहें। मोहिनी की चर्चा चल रही थी। एक सज्जन कर रहे थे : भई, हमें क्या मतलब ? उसके पति की क्या आँखें फूट गई हैं जो यह नहीं देख पाता कि उसके घर में यह हो क्या रहा है। दूसरा बोला : बस आजकल दोस्ती का मतलब ही यह है। दोस्त बनाओ और दोस्त की पत्नी को प्यार करो। तीसरे ने समझाया : अरे यार, वह कोई बच्चा नहीं है जिसे कोई आदमी बहका लेगा। ज़रूर दोनों की मिली-जुली साँठ-गाँठ है। मेहता तो सीधा है। दोनों मिलकर उसको उल्लू बना रहे हैं।

अमरनाथ से वहाँ बैठा नहीं गया। वह उल्टे पैर लौट आया।

रास्ते में एक दिन रस्तोगी मिल गया। बोला, "कहो भई, मिलना-

जुलना अब तुमने बिल्कुल बन्द कर दिया। हाँ, ठीक ही है। अब हमसे मिलने-जुलने से क्या मतलब। डाक्टर हुआ या वकील, सब उससे मुसीबत के वक्त मिलते हैं। अब वैसा ही कोई केस खड़ा होगा, तो दौड़े आओगे रस्तोगी से पास। पर यार आगरे में आकर मजे तुमने ही किए हैं!"

रस्तोगी से अप्रसन्न नहीं हुआ जा सकता था। वह मित्र था! अमरनाथ ने पूछा, "एक तो नौकरी नहीं रही और तुम इस तरह से छेड़ते हो रस्तोगी! क्या मजे कर लिए मैंने?"

"सुना है आजकल तुम्हारा मिसेज़ मेहता से 'एफ़ेयर' चल रहा है।"

"तुम बहुत नीच हो रस्तोगी।" इतना कहकर अमरनाथ आगे बढ़ गया।

घर पहुँचा तो उमा ने कहा, "अभी आपके वकील दोस्त आये थे।"

"रस्तोगी?"

"हाँ।"

"वह मुझे रास्ते में मिल गया था। कुछ कह रहा था क्या?"

"पूछ रहा था—कहाँ है हज़रत? मैंने कहा—पता नहीं। कहीं गए हैं। हँसकर कहने लगा—और कहाँ गया होगा, वहीं मोहिनी के यहाँ होगा। कौन है यह मोहिनी?"

"कवि-सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए जो मिस्टर मेहता आए थे, उन्हीं की पत्नी है।"

"लोग उल्टे-सीधे नाम धरते हैं, तो न जाया करो वहाँ इतना। वहाँ जाना क्या बहुत ज़रूरी है?"

"बिल्कुल ज़रूरी नहीं है। अब नहीं जाऊँगा।"

लेकिन उमा को आश्वासन देने पर भी अमरनाथ का मोहिनी के यहाँ आना-जाना बन्द नहीं हुआ। इस अपवाद की बात मधुसूदन के कानों में भी पड़ रही थी। मोहल्ले के वयोवृद्ध लोगों ने संकेत से उसे समझाया था कि किसी भी घर में जवान आदमी का ऐसे आना-जाना ठीक नहीं। मधुसूदन वहाँ तो उन लोगों को कड़ा उत्तर देकर चला आया; लेकिन

उसकी समझ काम नहीं कर रही थी। घर आकर उसने मोहिनी से बात की तो मोहिनी बिगड़ पड़ी। मेहता चुप हो गया। मधुसूदन ने जब शहर में फैली हुई सारी बातें उसे सुनाईं, तो वह रोने लगी।

मेहता तेज़ी से घर से बाहर निकला और कार लेकर अमरनाथ के यहाँ पहुँचा। उसका चेहरा देखकर अमरनाथ का हृदय धड़कने लगा।

"आपसे मुझे कुछ बातें करनी है।" मेहता ने कहा।

अमरनाथ समझ गया। बोला, "कहिए।"

"कार में बैठिए। घर पर बातें होंगी।"

रास्ते में कोई किसी से कुछ नहीं बोला। मोहिनी ने अमरनाथ को अपने पति के साथ देखा तो सन्न रह गयी। अपने पति को तो वह पहचानती ही थी; लेकिन अमरनाथ को भी इस बीच कुछ जान गयी थी। पता नहीं आज क्या होगा, वह सोचने लगी।

मोहिनी भीतर जाने लगी तो मेहता ने क्रोध में भर कर कहा—इधर आओ मोहिनी। यहाँ बैठो कुर्सी पर। मोहिनी सहमी-सी बैठ गई। आप भी तशरीफ़ रखिये—उसने अमरनाथ से कहा। अमरनाथ खड़ा रहा।

"आज मैं आप दोनों से कुछ स्पष्ट बातें करना चाहता हूँ।"

"कहिये।" अमरनाथ ने भीतर के क्रोध को दबाते हुए शांत स्वर में कहा।

"आपको मालूम है आपके सम्बन्ध में शहर में क्या फैल रहा है?"

"मालूम हैं।"

"और तुम्हें भी मालूम है मोहिनी?"

"कुछ-कुछ पता है।"

"तुमने यह बात एक दूसरे से कही?" मेहता ने पूछा।

"इसकी कोई ज़रूरत नहीं थी। यह सब झूठ है। झूठ को और फैलाने से क्या फायदा?"

"तुमने इनसे जानना चाहा मोहिनी कि यह सब कुछ जो तुम दोनों को लेकर कहा जा रहा है, वह कैसे समाप्त होगा?"

"नहीं तो।" मोहिनी दबी ज़ुबान से बोली।

"यह बात तुम दोनों नें आज तक मुझसे कही ?"

अमरनाथ चुप।

"क्यों नहीं कही ?" मेहता ने दोनों से पूछा।

"क्या फ़ायदा था आपसे कहने से ?" अमरनाथ ने उत्तर दिया।

"अब भी तो मुझे पता चला। तुम मेरे मित्र बनते हो..."

"क्या मैंने उस सम्बन्ध का कभी दुरुपयोग किया है ?"

"अगर तुम मुझसे दुराव-छिपाव रखते हो तो तुम मेरे कैसे मित्र हो ? मै पूछता हूँ कि अगर तुम मेरी पत्नी को प्यार भी करते हो, तो यह बात तुम मुझसे क्यों नहीं कह सकते ?"

"मुझे आपने यही सब ऊटपटांग बातें कहने के लिए बुलाया है।... मैं आपकी कोई बात नहीं सुनना चाहता। मैं केवल यहाँ से जाना चाहता हूँ।"

"आप जा सकते हैं; लेकिन मेरी आख़िरीं बात सुन कर।" मेहता ने कहा। "आप मेरे मित्र है और मोहिनी मेरी पत्नी है। मैं नहीं जानता कि मैं दोनों में से किसको अधिक प्यार करता हूँ। दोनों मेरी दो भुजाएँ हैं, दो आँखें। मुझे दोनों की आवश्यकता है। मैं नहीं चाहता कि दोनों में से कभी कोई ऐसा प्रयत्न करे जिससे मैं एक के विरुद्ध हो जाऊँ। जो ऐसा प्रयत्न करेगा, मैं उसी के विरुद्ध हो जाऊँगा..."

अमरनाथ ने बाहें फैलाकर मेहता को कलेजे से लगा लिया।

मेहता ने हँसते हुए मोहिनी से कहा, "मैडम चाय।"

मोहिनी रोती हुई भीतर चली गयी।

३१

'अपर्णा ने ज़हर खा लिया' यह बात 'मोती कटरा' से आस-पास के मोहल्लों में भयंकर आग लगने के समान फैल गई। जितने मुँह उतनी

बातें। अपर्णा ने विष खाने से पहिले एक पत्र डिस्ट्रिक्ट मैजेस्ट्रेट को लिख दिया था, दूसरा अपने पति के नाम छोड़ गई थी। एक पत्र उसने मोहिनी को भी लिखा था। मोहिनी उसकी अन्तरंग सखी थी। अपर्णा ने विष अपनी इच्छा से खाया था। कारण उसका कोई नहीं जानता था—मोहिनी जानती हो तो जानती हो। अमरनाथ कृष्णप्रसाद के यहाँ हो आया था। उसकी समझ में नहीं आया कि सहानुभूति कैसे प्रकट करे। कौल के चारों ओर मित्रों की भीड़-सी थी। अमरनाथ की उससे दृष्टि मिली—आशय था— जो होना था, वह हो गया। अमरनाथ बिना एक शब्द कहे लौट आया। मोहिनी वहाँ शाम तक बनी रही। रात को मेहता दम्पति से अमरनाथ की भेंट हुई। अपर्णा का पत्र मोहिनी ने अमरनाथ को दिखाया। पत्र अत्यधिक भावपूर्ण था और कुछ लम्बा भी। स्पष्ट उसमें कुछ भी नहीं लिखा था; लेकिन इतना अवश्य पता चलता था कि अपर्णा के जीवन का उद्देश्य समाप्त हो गया था और वह अब एक पल अधिक जीवित नही रहना चाहती थी। स्पष्ट था कि उसे कहीं गहरा आघात लगा था।

अमरनाथ ने मोहिनी से बार-बार जानना चाहा कि वास्तविक बात क्या थी; लेकिन मोहिनी ने बार-बार यही कहा कि वह कुछ नहीं जानती। मोहिनी झूठ बोल रही है, अमरनाथ को लगा; लेकिन उसके दु:ख का कारण तुरन्त उसकी समझ में आ गया और फिर उसने आग्रह नहीं किया। मेहता वहाँ बैठे हुए थे—एकदम बुझे-से। मोहिनी शायद उनके सामने कुछ नहीं कहना चाहती थी।

अपर्णा कल तक उसके सामने हँस-बोल रही थी और अब नहीं रही, यह कल्पना उसे बड़ी बिलक्षण लगी। अपने चारों ओर एक रहस्य की रेखा खींचकर वह न जाने किस लोक को चली गयी। अमरनाथ कई दिन बहुत परेशान रहा। क्या जीवन के समाप्त होने से पहिले ही किसी व्यक्ति के जीवन का उद्देश्य समाप्त हो जाता है? अपर्णा के जीवन का उद्देश्य क्या था? उसने मृत्यु को अपने निकट बुलाकर उसका आलिंगन किया। मृत्यु का आलिंगन! अमरनाथ सिहर उठा। कोई प्राणी कैसे जान सकता

है कि उसके जीवन की सारी सम्भावनाएँ अब समाप्त हो चुकी है, कि उसके जीवन की सारी प्रसन्नता मिट चुकी है, कि उसके जीवन में अब कुछ नहीं रहा है ? अपर्णा क्या चाहती थी ? क्या अब जहाँ वह है, वहाँ सुखी है ? कहाँ है वह ? क्या वह कहीं है ?

अमरनाथ इस समय तिमंज़िले की छत पर था। छत बहुत ऊँची थी। वहाँ कोई आता-जाता न था। अमरनाथ भी कभी-कभी जाता था—जाता था, जब बहुत उद्विग्न होता था। आज ऐसी ही रात थी। घर के सब लोग सो गए थे और वह चुप-से उठ आया था।

अमरनाथ को लगा धीरे-धीरे कोई आवाज़ कहीं पास से ही आ रही है, जैसे उसका नाम लेकर कोई उसे पुकार रहा हो। पहले यह ध्वनि उसे बाहर से आती सुनाई दी। फिर लगा भीतर से कोई बोल रहा है। लेकिन उससे भिन्न कोई अस्तित्व है, यह उसे स्पष्ट लगा। इस प्रकार के रहस्यों के लिए वह सदैव तैयार रहता था।

उसने शून्य में प्रश्न किया, "कौन है ?"

"मैं हूँ अपर्णा।"

"आपकी आवाज मुझे ठीक नहीं सुनाई देती।"

"पहले धीरे-धीरे सुनाई देगी। लेकिन यह है मेरी ही आवाज़। विश्वास कीजिए।"

"आप तो अब नहीं रहीं।"

"हाँ, नहीं रही। नहीं रही, तभी तो बोल रही हूँ।"

"क्या आप मेरे सामने आ सकती है ?"

"आ सकती हूँ; लेकिन आऊँगी नहीं।"

"क्यों ?"

"आवश्यकता नहीं। इसलिए लेकिन मेरी परीक्षा न लीजिए। विश्वास कीजिए।"

"और किस-किस से आपकी भेंट हुई ?"

"सभी से। मृत्यु के उपरांत कुछ दिनों तक आत्माएँ एक बार उन

सभी व्यक्तियों के पास जाती हैं जिनसे उनका कभी कोई सम्बन्ध रहा है।"

"क्यों जाती हैं ?"

"मोह के कारण।"

"मरकर भी मोह नहीं छूटता ?"

"मरकर केवल स्थूल शरीर छूट जाता है। भावनाएँ सूक्ष्म शरीर के साथ ही चली जाती हैं। वे नहीं मिटतीं।"

"मुझसे तो आपका मोह का सम्बन्ध नहीं था।"

"कुछ ऐसे व्यक्तियों को भी वे 'विज़िट' करती हैं, जिन्हें वे केवल जानती है। मृत्यु के उपरांत मरने वाले के सम्बन्ध में प्रायः सभी कुछ न कुछ सोचते हैं। हमारे सम्बन्ध में कौन क्या सोचता है, यह उत्सुकता तो मरकर भी बनी ही रहती है।"

"कौल साहब से आपकी बातचीत हुई ? वे तो बहुत दुःखी होंगे।"

"बातचीत केवल आपसे हुई है। और किसी से नहीं होगी। कौल साहब मेरे लिए बिल्कुल दुःखी नहीं है।"

"यह आप क्या कहती हैं ?"

"उनसे मेरा कभी कोई सम्बन्ध नहीं रहा।"

"और आप चाहती हैं कि इस पर मैं विश्वास कर लूं ?"

"यही बात स्पष्ट करने मैं आई हूँ। इस रहस्य को कोई नहीं जानता—आपकी मोहिनी भी नहीं। मोहिनी केवल इतना जानती है कि मैं अपने पति को प्यार नहीं करती थी। जैसा आपको मालूम है, मैं बनारस की रहने वाली हूँ। पिता मेरे बहुत सम्पन्न थे। मेरी एक सहेली थी। नाम था—शीला। वह कैसे ही क्रान्तिकारियों के दल में सम्मिलित हो गई थी। एक बार जब वह 'अंडरग्राउंड' थी, तो हमारे यहाँ कुछ दिन छिपकर रही। एक संध्या को मेरी नौकरानी ने आकर कहा कि फाटक पर एक गँवार आदमी खड़ा है और कहतो है कि उसे नौकरी चाहिए। मैंने बहुत समझाया कि घर में अब नौकरों की जरूरत नहीं है और बाबू जी हैं नहीं, जो जवाब दे सकते; लेकिन वह मानता ही नहीं। कहता है कोई तो होगा।

मैंने उसे भीतर बुलाया। नौकरानी के हटने पर उसने कहा: मेरा नाम देवदत्त है। मैं शीला का भाई हूँ। यहाँ उसके लिए अब खतरा खड़ा हो गया है; इसलिए मैं उसे लेने आया हूँ। मैंने तर्क नहीं किया और शीला को बुला दिया। शीला से मैं उसके क्रान्तिकारी भाई के सम्बन्ध में पहले ही बहुत कुछ सुन चुकी थी। मैंने कहा—यह आपने वेश क्या बना रखा है? नहा-धोकर कुछ खा-पी लीजिए; तब मैं शीला को आपके साथ जाने दूँगी। उसी रात क़रीब तीन बजे के वे दोनों चले गये। इस बीच देवदत्त ने मेरी ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। लेकिन मैं उसकी ओर एकदम आकर्षित हो गई थी। ऐसा मेरे जीवन में कभी नहीं हुआ था और इसकी कोई संभावना भी नहीं थी।"

"यह घटना विवाह से पहले की है?"

"हाँ।"

"फिर आपने विवाह क्यों किया?"

"हो गया कैसे ही।"

"फिर?"

"मेरा आत्म-समर्पण पूर्ण ही था। उसमें कहीं कोई कमी न थी। सोहागरात को मैंने अपने पति से कहा—मैं आपसे कुछ बात करना चाहती हूँ। उन्होंने हँसकर पूछा—ऐसी क्या बात है? मैंने बिना झिझक के कहा—मैं एक और व्यक्ति को प्यार करती हूँ और सच बात यह है कि मैं आपको कभी भी प्यार नहीं कर सकती। आप शिक्षित है; अतः मेरा विश्वास है कि आप इस बात को समझ सकेंगे। आपसे विवाह हुआ है; इसलिये मैं यह तो नहीं चाहती कि सारी दुनिया इस बात को जाने। मेरी इच्छा है कि हम लोग साथ-साथ रहें; पर एक दूसरे के व्यक्तिगत जीवन में कभी किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें। आप कुछ भी करें, मुझे न कभी किसी प्रकार की ईर्ष्या होगी, न शिकायत।"

कौल साहब, इस बात पर राज़ी हो गये?"

हाँ।"

"बड़ी बात है।"

"क्या अब भी आपके मन में मेरे सम्बन्ध में वही धारणा है, जो पहले थी ?"

"नहीं। मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ।"

"इसमें क्षमा की कोई बात नहीं है। बहुत से लोग मुझे वैसा ही समझते थे। केवल मोहिनी ने मेरे ऊपर कभी अविश्वास नहीं किया...।"

"उसके पति भी तो आपके प्रति आकर्षित थे ?"

"उस बात को छोड़िए। यह सब तो चलता ही रहता है।"

"आपके 'देवता' अब कहाँ हैं ?"

"कौन देवता ?"

"अरे वही देवदा।"

"ओह ! तो आप भी मेरा मज़ाक उड़ा रहे हैं ?"

"अब भी आप ऐसी बात कह सकती हैं ?"

"तो देवदत्त का मैंने बहुत साथ दिया। एक नारी जो बड़े से बड़ा त्याग अपने जीवन में कर सकती है, वह मैंने उसके लिए किया। वह व्यक्ति सचमुच देवदत्त से देवता और देवता से मेरा देवता बन गया था। और मैं समझने लगी थी कि मेरा प्यार अमिट है..."

"प्यार तो आपका अमिट ही रहा। यह दूसरी बात है कि आप उसके लिये मिट गईं।"

"तो उस दिन जो आपसे बातचीत हुई, उससे मुझे लगा कि राजनीतिक सिद्धान्तों को लेकर इनसे मेरा मतभेद हो सकता है। उसके उपरांत दो-तीन दिन वे और रहे और मैं बराबर तर्क करती रही। परिणाम यह हुआ कि झगड़ा बहुत बढ़ गया। मैंने समझा झगड़ा ऊपरी है। उस दिन तक मैं यह समझती आई थी कि प्यार से बड़ा संसार में और कुछ नहीं होता। मेरे ही कारण ये क्रान्तिकारी से कम्यूनिस्ट हो गये थे। आदमी का कम्यूनिस्ट होना मैं बुरा नहीं समझती। पर एक कम्यूनिस्ट को प्यार करते हुए भी मैं गांधीवादी विचारधारा की थी। लेकिन किसी भी कारण से

ये मुझसे दूर चले जायँगे—और उस स्थिति में जब जीवन-नैया को हम इतना खे लाए थे—मैं स्वप्न में भी कल्पना नहीं करती थी। बम्बई पहुँच कर इन्होंने मुझे पत्र लिखा कि इनका विवाह हो रहा है। इसे मैंने हँसी समझा। फिर इन्होंने अन्ना का फोटो मेरे पास भिजवाया।"

"विदेशी लड़की है अन्ना ?"

"नहीं बंगाली है। नाम है अन्नपूर्णा।"

"ओह ! तो यह विवाह हो गया।"

"हाँ, हो गया।"

"अन्ना भी कम्यूनिस्ट है ?"

"कम्यूनिज़्म से उसे सहानुभूति है।···अब बताइये, क्या रह गया था जिसके लिए मैं जीवित रहती ?"

"आपने एकदम ठीक किया, यह तो मैं नहीं कह सकता; लेकिन जो होना था, वह हो गया। उस पर तर्क करने से कुछ लाभ नहीं। अभी आप कितने दिन इस लोक में और रहेंगी ?"

"कह नहीं सकती। शायद लम्बा रहना पड़े। मैंने आत्म-हत्या जो की है।"

"आपका यह लोक कैसा है ?"

"बहुत सुन्दर है—कल्पना से परे। लेकिन आत्माएँ इसमें सभी तरह की रहती हैं। आख़िर यहाँ आने वाले हम ही लोगों में से तो हैं।"

"हाँ। आत्म-हत्या करनेवाले क्या सब उस लोक में जाते हैं ?"

"हाँ, अकाल-मृत्यु वाले सब—गोली से मारे जानेवाले, आत्म-हत्या करनेवाले, नदी में डूबकर मरनेवाले, आग में जल मिटनेवाले, साँप के काटे हुए—सब।"

"लेकिन यह लोक है कहाँ ?"

"इसका उत्तर मैं नहीं दे सकती।"

"क्या इतना नहीं जानतीं कि आप कहाँ रहती हैं।"

"जानती हूँ; लेकिन सभी बातों के उत्तर देने की आज्ञा नहीं है।"

अमरनाथ ने चकित होकर पूछा, "क्या आपके साथ कोई और भी है ?"

"जिस शक्तिशाली आत्मा के मैं अधीन हूँ, उन्होंने एक आत्मा मेरे साथ कर दी है।"

"वह इस समय यहाँ हैं ?"

"जी, हाँ।"

"क्या मैं उससे बात कर सकता हूँ ?"

"वह कह रही है—जी नहीं।"

"क्या आपके ऊपर नियन्त्रण बहुत कड़ा है ?"

"प्रारम्भ में तो नियन्त्रण कुछ कड़ा रहता ही है; लेकिन जैसे-जैसे हमारे ऊपर विश्वास होने लगता है; वैसे-वैसे इसे उठा दिया जाता है—यहाँ तक कि फिर हम अकेले घूम-फिर सकते हैं।"

"अब आपकी इच्छा क्या है ?"

"अपनी धरती की गोद में जन्म लेने की।"

"आश्चर्य की बात है।"

"खेद है कि मैं इस रहस्य को खोल नहीं सकती...अच्छा, मेरे चलने का अब समय हुआ। नमस्कार।"

"थोड़ी देर और नहीं रुक सकतीं ?"

"जी नहीं। नमस्कार।"

३२

जीवन में सपने हमें एक ओर ले चलते हैं, सत्य दूसरी ओर। स्वप्न और सत्य के इस संघर्ष से जो पथ बनता है, विवश होकर हमें उसी पर चलना पड़ता है। कैसा ही व्यक्ति क्यों न हो, जीवन के अनुभव उसे कुछ

न कुछ सिखा ही जाते हैं। जो इन अनुभवों से लाभ उठाता है, वह सुखी रहता है; लेकिन कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो सत्य पर स्वप्न का सुनहला पानी बार-बार चढ़ाते हैं, झीना आवरण बार-बार डालते रहते हैं, रम्य इंद्रधनु बार-बार उगाते रहते हैं। पर सत्य है कि स्वप्न के इस आवरण को चीर देता है, इंद्रधनु को मिटा देता है, पानी को उतार देता है। इसी से जीवन में कभी आनन्द के पल आते हैं, कभी निराशा के; कभी सुख के क्षण आते हैं, कभी पीड़ा के; कभी जीवन हमें प्रिय लगता है, कभी भार-स्वरूप। स्वप्न और सत्य का यह खेल यों ही चलता रहता है और एक दिन आता है कि यह जीवन ही समाप्त हो जाता है।

आगरे में रहकर उसका जीवन बीत रहा है, यह अमरनाथ ने अनुभव किया। उस शहर का वातावरण ऐसा नहीं है जिसमें रहकर उस जैसे व्यक्ति का विकास हो सके। लेकिन बार-बार प्रयत्न करने पर भी वह वहाँ से निकल नहीं पाता। इसमें कुछ दोष तो परिस्थितियों का था, कुछ उसका भी। अभी वह बाहर गया था। हाथ में आयी नौकरी उसने छोड़ दी। पिछले दिनों मोहिनी ने उसे समझाया था कि जब तुम जानते हो कि सभी कहीं भ्रष्टाचार फैला हुआ है, तब बुद्धि से उसे विफल क्यों नहीं करते। जब तुम्हें मालूम है कि केवल योग्यता के आधार पर कहीं भी नियुक्ति नहीं हो पाती तो क्यों नहीं तुम भी कुछ प्रभावशाली व्यक्यिों की सिफ़ारिशें जुटा लेते। मोहिनी की यह बात उसकी समझ मे आ गई थी। अभी एक बड़े नगर के डी० ए० वी० कॉलेज में एक स्थान रिक्त हुआ था। उसके श्वसुर प्रसिद्ध आर्यसमाजी थे और कॉलेज के सेक्रेट्री और प्रेसीडेंट दोनों उनके मित्र थे। दोनों के लिए उन्होंने पत्र दे दिए थे। अमरनाथ वहीं से लौटा था।

मोहिनी ने उसे देखते ही किलकते हुए कहा,—"क्यों; हो गया काम ?"

"कहाँ हुआ भाभी।"

"झूठ क्यों बोलते हो ?"

"मैं इंटरव्यू में सम्मिलित ही नहीं हुआ, भाभी। होता तो ले लिया जाता।"

"क्यों, ऐसा क्यों किया ?"

"जिस ट्रेन से मैं यात्रा कर रहा था, उसी में थोड़ी देर के उपरांत मेरा एक विद्यार्थी आ गया। उसे मैंने पढ़ाया था। एम० ए० करने के उपरांत वह छोटे-बड़े हाई-स्कूलों में छोटे-मोटे वेतन पर अध्यापकी करता रहा। प्रारंभ में एकाध स्थान पर उसे मुफ़्त भी पढ़ाना पड़ा। इसके उपरांत उसने एक कमरा ले लिया और हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओं के लिए वह विद्यार्थी तैयार करने लगा। विवाह उसका विद्यार्थी-जीवन में हो गया था। घर में उसके मा-बाप हैं, विवाह योग्य दो छोटी बहिनें हैं, पत्नी है, पाँच बच्चे हैं। पूछने पर पता चला कि वह भी उसी स्थान के इंटरव्यू के लिए जा रहा है। अतः मैं उस शहर तक जाकर लौट आया। अपने विद्यार्थी के विरोध मे खड़े होते हुए मैं क्या अच्छा लगता, भाभी। एक ही स्थान के लिए शिष्य और गुरु आमने-सामने खड़े हों, यह कल्पना ही न जाने कैसी लगती है।"

मोहिनी ने व्यंग्य किया, "यह भी तो हो सकता था कि गुरु जी हार जाते।"

"ऐसी संभावना नहीं थी, भाभी। मैं कॉलेज के प्रसीडेंट के घर पर ही ठहरा था।"

"और यह भी तो हो सकता था कि उसके स्थान पर कोई दूसरा व्यक्ति ले लिया जाता। वैसी दशा में न तुम हो पाते न वह।"

"नहीं भाभी। वह बहुत योग्य लड़का है। वह भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ था। अध्यापन का अनुभव उसका अपना कुछ न कुछ था ही और सबसे बड़ी बात उसके पक्ष में यह थी कि वह विचारों से आर्यसमाजी है। तुम्हें जानकर प्रसन्नता होगी कि वह ले लिया गया।"

"तुम्हे प्रसन्नता हुई ?"

"हाँ भाभी, हुई तो।"

"लेकिन क्या यह नहीं हो सकता था कि यह त्याग वह विद्यार्थी अपने गुरु के लिए करता ?"

"उसे मालूम ही नहीं भाभी कि मैं उस स्थान के लिए प्रयत्न करने गया था।"

"माता जी से तुमने क्या कहा ?"

"कह दिया नौकरी नहीं मिली। सेक्रेट्री का दामाद ले लिया गया।"

"उन्होंने क्या कहा ?"

"गाली दे रही थीं सेक्रेट्री को।" अमरनाथ हँसने लगा। उसने कुछ रुककर कहा, "मैं बहुत मूर्ख हूँ न भाभी ?"

मोहिनी उसके पास आकर खड़ी हो गयी और उसके सिर पर हाथ फेरने लगी। बोली, "नहीं, तुमने ठीक किया। लेकिन यह 'भाभी' 'भाभी' की क्या रट लगा रखी है ? मेरा नाम भूल गए क्या ?"

"मोहिनी !"

"हाँ।"

"जानता नहीं, पहले जन्म की तुम मेरी कौन हो; पर जीवन में जो आत्मीयता मुझे तुमसे मिली है, वह फिर कहीं मिल पायेगी या नहीं, मैं नहीं जानता। जीवन में धन, वैभव, सम्मान, यश सब कुछ मिल जाता है। नहीं मिलती है तो यह आत्मीयता ही..."

मोहिनी ने संयत भाव से पूछा, "देवर-भाभी के बीच हिसाब-किताब का दिन आ गया है क्या ?"

"ऐसा ही लगता है।"

"क्यों, फिर कहीं जाने की इच्छा है ?"

"इस बार भाभी मैं बंबई जाना चाहता हूँ—फ़िल्म जौइन करने।"

"सिनेमा में जाओगे ?"

"हाँ भाभी। पैसे की बड़ी भारी आवश्यकता है—अपने लिए भी और दूसरों के के लिए भी। इस बीच मैंने दो कहानियाँ लिखी हैं और बहुत

पहिले के मेरे पास कुछ गीत हैं। मैं एक बार प्रयत्न करना चाहता हूँ। संभव है सफल हो जाऊँ। सफल हो गया तो मैं फिर यहाँ नहीं लौटूंगा।"

मोहिनी थोड़ी देर चुप रही। फिर बोली, "हाँ, पैसा तो वहाँ बहुत है; लेकिन सफल होना उतना सरल नहीं, जितना तुम समझते हो।"

"जिस कहानी के, भाभी, यहाँ पच्चीस-तीस रुपये मिलते है, उसी को थोड़ा बदल कर लिख दो तो चार-पाँच हज़ार तक मिल सकते हैं। इसका कारण यह है कि चित्र के सफल होने पर प्रोड्यूसर लाखों रुपये कमाता है; अतः चार-छह हज़ार देने में वह हिचक का अनुभव नहीं करता। जीवन में केवल परिश्रम करने से ही कुछ नहीं होता, हमें यह भी देखना चाहिए भाभी, कि उसके बदले में हमें पारिश्रमिक क्या मिलता है।"

"यह बात तो तुम्हारी ठीक है; लेकिन मुझे नहीं लगता कि तुम फ़िल्म के लिए बने हो···"

"हो सकता है भाभी; लेकिन प्रयत्न करने में क्या हानि है?"

"इसके लिए मा और पत्नी आज्ञा दे देंगी?"

"उन्हें मैं कैसे ही मना लूँगा, केवल तुम 'हाँ' कर दो।"

"मेरी 'हाँ' इतनी महत्वपूर्ण है?"

"है तो, भाभी।"

"हाँ, मैं कर दूँगी, लेकिन एक आश्वासन चाहती हूँ।"

अमरनाथ ने उत्साहित होकर कहा, "हाँ-हाँ, भाभी, जो तुम कहो सो।"

"तुम शराब पीने को बुरा समझते हो?"

"बुरा तो नहीं समझता भाभी" अमरनाथ ने झिझकते हुए कहा, "मैं किसी भी नशे को बुरा नहीं समझता, अगर ढंग से किया जाय तो···"

"हो सकता है तुम फ़िल्म में सफल हो जाओ। यह भी हो सकता है कि तुम्हारे पास बहुत पैसा हो जाय। और यह भी संभव है कि तुम अपनी भाभी को भूल जाओ।"

"तुम मुझे ऐसा समझती हो, भाभी ? नशे वाली बात मैंने दूसरों के के लिए कही थी, अपने लिए नहीं। मुझे तो चाय का नशा ही बहुत है।"

"तो बंबई जाने के लिए मेरी ओर से आज्ञा है; लेकिन मुझे छूकर कहना होगा कि जीवन में चाहे कैसी ही स्थिति खड़ी हो, शराब को तुम कभी हाथ नहीं लगाओगे।" और मोहिनी ने अपना हाथ बढ़ा दिया।

अमरनाथ ने मोहिनी का हाथ छूकर शपथ खायी। वह बोला, "यह इस बात का प्रमाण रहेगा कि मैंने सबको भुलाकर भी अपनी भाभी को हृदय से कभी नहीं भुलाया।"

"जीवन में किसी को भी भुलाने की आवश्यकता नहीं हैं, देवर। सब का अपना-अपना स्थान होता है।"

अमरनाथ ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। आगे बढ़कर चुप-से मोहिनी के कंधे पर अपना सिर रख दिया।

थोड़ी देर दोनों चुप बैठे रहे।

अमरनाथ ने सिर उठाया तो मोहिनी ने कहा, "बुरे देवर।"

"बहुत-बहुत बुरी भाभी।" अमरनाथ ने उदास स्वर में उत्तर दिया।

मोहिनी को इतना उदास अमरनाथ ने कभी भी देखा न था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि विदा कैसे ले। उसने पूछा, "भाभी, तुम उदास हो ?"

"नहीं तो।" मोहिनी ने गहरे उदास स्वर में उत्तर दिया।

"मै तुम्हारे इतने निकट आ कैसे गया, भाभी ?"

मोहिनी ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया।

"मैं वहाँ जाकर तुम्हें पत्र लिखूंगा। तुम मेरा विश्वास करो।"

"यह अविश्वास की बात नहीं है।"

"फिर भाभी ?"

"मुझे लगता है अब तुम लौटकर यहाँ कभी नही आओगे।"

"क्यों लगता है ऐसा ?"

"जीवन की गति ऐसी ही है। उसमें पीछे लौटना नहीं होता।"

"यह बात तुम्हारी ठीक नहीं है, भाभी।"

"ऐसा ही हो।"

"मैं अब जाऊँगा, भाभी। उठो और मुझे हँसकर विदा दो।"

"उठने की शक्ति इस समय मुझमें नहीं है। मुझे दुःख है कि मैं दरवाज़े तक नही जा सकूँगी" मोहिनी ने कहा। फिर रुककर बोली, "लेकिन मैंने तुम्हें विदा ही कहाँ किया है, जो मैं वहाँ तक जाऊँ?"

इतना कहकर उसने सिर मेज़ पर रख दिया और अवश-सी हो गयी।

अमरनाथ उसे थोड़ी देर तक चुप खड़ा देखता रहा। फिर चला गया।

यह कैसी विदा है?

३३

ताजमहल वाली भेंट मे अमरनाथ ने सरोजिनी को अपनी ओर से विदा दे दी थी; लेकिन वह भी उसे विदा देना चाहती थी। इसी से आज उसने दोपहर के समय उसे 'ऐवरग्रीन' में बुलाया था। यों उसे अमरनाथ के आने की बहुत कम आशा थी; लेकिन जब ठीक समय पर वह सामने से आता दिखाई दिया, तो उसे बहुत प्रसन्नता हुई।

अमरनाथ ने हाथ की घड़ी को देखते हुए कहा, "आ तो मैं समय से ही गया न?"

"हाँ" सरोजिनी ने मुस्कराते हुए कहा।

"आप कितनी देर से बैठी हैं?"

"युग बीत गये।"

सुनकर अमरनाथ को कष्ट हुआ। बॉय चाय रखकर चला गया। दोनों चुप बैठे रहे।

"इन पलों को भारी बनाने से क्या लाभ है, सरोज ?"

"भारी तो वे हैं ही।" सरोजिनी ने उत्तर दिया।

"अच्छा, जीवन ऐसा क्यों है सरोज कि हम अपने प्रियजनों से थोड़ी देर को मिलते हैं और बिना मन की पूरी बात कहे सदैव के लिए बिछुड़ जाते हैं ?"

"मुझे नहीं मालूम।"

"तुम मुझसे इस बात पर अप्रसन्न हो कि मैंने तुम्हारी बात को पूरी तरह से समझा नहीं ?"

"नहीं मालूम मुझे।"

"एक दिन तुम्हे देखकर मैं सहसा आकर्षित हो गया था और तुम्हारे निकट आने के लिए मैंने न जाने कितना प्रयत्न किया था और वह निकटता मुझे प्राप्त हुई और उससे मेरा सूनापन कुछ कम भी हुआ; लेकिन जो मैं सोचता था वह मुझे देखने को नहीं मिला; इसी से मेरी आशा विफल हुई। ऐसा ही हुआ न सरोज ?"

"मुझे नहीं मालूम।"

"अच्छा सरोज, ऐसा क्यों है कि इस संसार में कोई किसी को नहीं समझता ? कोई किसी से अपनत्व का अनुभव नहीं करता, जहाँ वह अपने हृदय की बात खुलकर उससे कह सके। मतभेद हो तो हो, अप्रसन्नता का डर हो तो हो, एक दूसरे से दूर हो जाने की आशंका हो तो हो; फिर भी वे अपने-पन के साथ छोटी से छोटी बात को स्पष्ट करें; उस पर तर्क-वितर्क करें; लड़ें-झगड़ें, दूर हों, मिलें, फिर झगड़ें, फिर दूर हों; फिर मिलें; लेकिन किसी भी स्थिति में अपनत्व की भावना को न मिटने दें। सभी परिस्थितियों में एक दूसरे के बने रहें। समझदारी से काम लें। जीवन को समझें, व्यक्ति को समझें..."

"मुझे नहीं मालूम—मुझे कुछ भी नहीं मालूम। मैं जैसा अनुभव करती थी, वैसा मैंने कह दिया। मेरे उस आत्म-दान में कहीं कोई छल नहीं

था; लेकिन तुम न जाने क्या चाहते हो। शायद ऐसा ऐसा चाहते हो जो संसार में सम्भव नहीं है···।"

"जब मैंने तुम्हें देखा और तुम्हारे सम्बन्ध में सुना तो सोचा···"

"क्या सोचा ?"

"बताता हूँ। तुम तो वहुत जल्दी अप्रसन्न हो जाती हो। सोचा कि तुम तो कम से कम संस्कारों से मुक्त होगी।"

"संस्कारों से मुक्त कौन हो सकता है ?"

"कुछ ऐसे संस्कार हैं जिनसे हमें मुक्त होना ही चाहिए। लेकिन तुम भी अपने प्रेमी को—यद्यपि वह मैं नहीं हो सकता—पति के रूप में ही देखना चाहती हो और अपनी कल्पना उसकी पत्नी के रूप में ही करती हो। पत्नी कभी प्रेमिका नहीं हो सकती, सरोज। अर्थात् तुम प्रेमिका नहीं रहना चाहतीं। सच पूछो तो इससे मुझे प्रसन्नता के स्थान पर आघात लगा और तुम मेरे मन से एकदम जैसे मिट गयीं। ऐसी दशा में तुम में और एक सामान्य पत्नी में कोई अन्तर नहीं रह जायगा—सिवाय इसके कि तुम शिक्षित हो, सुन्दर हो, आधुनिका हो। बड़े नगरों में—कलकत्ता और बम्बई में और किसी सीमा तक लखनऊ में ऐसी पत्नियों की कोई कमी नहीं है।"

"यह बात तुमने पहले क्यों नहीं कही मुझसे ?"

"पहले या पीछे कहने से कुछ अन्तर पड़ जाता है क्या ?"

"यदि मैं इस संस्कार से ऊपर उठने की कोशिश करूँ तो···तो तुम क्या लौट आओगे ?"

"लेकिन अभी तो तुम पाराशर के साथ इंग्लैंड जा रही हो।"

"यह बात भी तुम्हें मालूम है ? किसने कही ? स्वयं पाराशर ने ?"

"हाँ।"

"मुझे तो उन्होंने कभी नहीं बतलाया कि वे तुम्हें जानते हैं।"

"और हो सकता कि तुम दोनों का विवाह हो जाय। वह सचमुच

तुम्हें बहुत प्यार करता है। इसी से तुम्हें यहाँ से दूर ले जाना चाहता है—इतनी दूर जहाँ किसी की छाया तुम पर न पड़ सके।"

"मुझे भी कोई सच्चे हृदय से प्यार कर सकता है—वह सब कुछ जानकर जो मेरे बारे में फैला हुआ है।"

"पाराशर तो करता ही हैं।"

"तुम सोचते हो, मुझे पाराशर से विवाह कर लेना चाहिए?"

"क्या करना चाहिए; यह तो मैं नहीं कह सकता; लेकिन क्या नहीं करना चाहिए, यह बतला सकता हूँ।"

"वही बतलाओ।"

"लेकिन तुम मेरी बात मानोगी क्या?"

"शायद मैं इतनी बुरी नहीं हूँ, जितने तुम।"

अमरनाथ हँसने लगा। बोला, "बतला तो दूँ; लेकिन उसमें पाराशर का नुक़सान हैं।"

"अच्छा होने दो नुकसान।"

"विवाह से पहले आत्म-समर्पण मत करना।"

"क्यों?"

"वह भी पुरुष है। सम्भव है, इसके उपरान्त वह तुम्हें समुद्र में उठा कर फेंक दे।"

सरोजिनी ने अमरनाथ की ओर देखा। बोली, "फिर क्या होगा?"

"समुद्र के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि वह फेंकी हुई किसी चीज़ को अपने मे रखता नहीं। उसे उठाकर किनारे पर डाल देता है।"

"यदि ऐसा हुआ तो···"

"तो मैं तुम्हें ढूँढ़ता फिरूँगा और क्या···"

"तुम्हें अपनी आज की यह बात याद रहेगी?"

"हाँ।"

३४

आशा बड़ी हो गयी थी। उसने इन्टर कर लिया था। सन्तोष को चिन्ता थी कि कैसे ही उसके हाथ अब पीले हो जाने चाहिए। दो एक स्थानों पर उसने उसके विवाह की बात चलायी भी; लेकिन आशा ने इतना कड़ा विरोध किया कि वह उसका मुँह ताकती रह गयी। इस लड़की को हो क्या गया है, वह सोचने लगी; उसे सन्देह हुआ कि हो न हो, उसकी लड़की कहीं किसी के प्रेम में पड़ गयी है। यह बात उसने उससे स्पष्ट पूछी भी; लेकिन आशा ने कुछ बताया नहीं। आशा शांत पर दृढ़ स्वभाव की लड़की थी। सारे दिन घर में काम करती रहती या पढ़ती रहती। घर की स्थिति उसे विदित थी; अतः आगे पढ़ने के लिए भी उसने मा से आग्रह नहीं किया। वह किसी से छिपकर मिलती हो या किसी को पत्र लिखती हो, ऐसा भी उसके आचरण से नहीं लगता था। उसका बहुत जी उकताता तो वह अपनी सहेली सुमित्रा के यहाँ चली जाती। सुमित्रा पड़ोस में ही रहती थी। सन्तोष को क्षीण-सी आशा हुई। एक दिन वह आशा को घर पर छोड़कर सुमित्रा के घर गई और बहुत देर तक बात करती रही। सुमित्रा न जाने किस डर के कारण कुछ खुलती न थी।

सन्तोष ने कहा, "सुमित्रा मुझे बिना बताये तो काम चलेगा नहीं। मैं उसकी मा हूँ, कोई शत्रु नहीं हूँ। सम्भव है, मैं उसकी इच्छा पूरी कर सकूँ। क्या कोई अनुचित बात है ?"

"अनुचित कुछ भी नहीं है चाची, लेकिन आशा ने मुझे सौगन्ध दे रखी है। वह मेरी सहेली है। सोचती हूँ सौगन्ध को तोड़ना चाहिए या नहीं। लेकिन अगर तुम वचन दो कि उस बात को जानकर तुम आशा पर सख्ती नहीं करोगी, तो मैं उस भेद को खोलती हूँ..."

सन्तोष ने सुमित्रा के सिर पर हाथ रखकर कहा, "तू मेरी दूसरी बेटी है, अब बता क्या बात है ?"

सुमित्रा ने इधर-उधर देखकर कहा, "यहाँ विश्वविद्यालय में एक लड़का पढ़ता है। नाम है लाजपत।"

"यहीं का रहने वाला है?"

"नहीं, मुरादाबाद का।"

"कौन जात है?"

"ब्राह्मण है।"

"आशा को कैसे जानता है?"

"मेरे भाई का मित्र है। हमारे घर आता-जाता है। यहीं उसने आशा को देखा। वह भी दूसरे स्थान पर विवाह नहीं करेगा; इतना पक्का हो गया है···।"

"यह सम्बन्ध पक्का हो जाय तो तुझे खुशी होगी सुमित्रा? तू तो····" सुमित्रा की आँखों में झाँकते हुए सन्तोष ने पूछा।

"ईश्वर कसम चाची, तुम्हारे सिर की सौगन्ध, तुम कैसी बात सोचती हो? मेरे मन में कोई बात नहीं।"

"अच्छी बात है।" उसे क्षीण-सी आशा हुई। फिर रुककर पूछा, "तुझे लड़के के पिता का नाम मालूम है?"

"हाँ, ब्रह्मदत्त शर्मा। वकील हैं।"

सन्तोष चली आयी। आकर उसने अमरनाथ को पत्र लिखा। अमरनाथ ने कुछ देर से उत्तर दिया: मैं मुरादाबाद जाकर वकील साहब से मिल आया हूँ। उमा आजकल वहीं है। बहुत दिन से मैं मुरादाबाद नहीं गया था। तुम्हारा पत्र आने से वहाँ जाने का एक बहाना मिल गया। ब्रह्मदत्त जी किसी ऊँचे घर विवाह करने की बात सोच रहे हैं जो बहुत स्वाभाविक है। यह भी सच है कि लड़के के सम्बन्ध की बात चल रही है; लेकिन वह टालमटोल कर रहा है। आशा की चर्चा चलाने पर वे बहुत उत्साहित नहीं हुए। लेकिन मैं उनसे कई बार मिला; उसका परिणाम यह हुआ कि वे कुछ तैयार से प्रतीत होते हैं। लेकिन दहेज़ माँगते हैं और अंतिम बात पाँच हज़ार पर आकर रुक गयी है। इससे कम पर विवाह असम्भव है। लाजपत

भी इसमें आपकी कोई मदद नहीं कर सकता। सन्तोष ने अमरनाथ को उत्तर में लिखा; मुझे लगता है लड़की के भाग्य में यह विवाह नहीं बदा। दहेज़ देने लायक रुपया मेरे पास नहीं है। जो कुछ है उससे केवल विवाह ही सम्मानपूर्वक किया जा सकता हैं। कहीं से इतना रुपया उधार मिल सकता है, ऐसी आशा भी नहीं है। पत्र पाकर अमरनाथ चिन्ता में पड़ गया। उसने सन्तोष को फिर लिखा: खेद की बात है कि इस स्थिति की मैं कभी कल्पना नहीं कर सका और इससे बड़े दु:ख की बात यह है कि इस समय मेरी नौकरी छूट गयी है; लेकिन विवाह तो यह होगा। दहेज़ के रुपयों का प्रबन्ध मैं आगामी तीन-चार महीनों के भीतर कहीं से करूँगा।

बचन देना जितना सरल होता है, उसका निर्वाह करना उतना सरल नहीं होता; लेकिन यह भी देखा गया है कि मनुष्य यदि किसी उद्देश्य के लिए अपने को संकट में डाल देता है, तो रास्ता भी फिर कहीं न कहीं से निकल ही आता है। इस पत्र को लिखने से पहले ही अमरनाथ की इच्छा फ़िल्म जौइन करने की हो रही थी। इसके लिए उसने कई कहानियों की रूपरेखा तैयार कर ली थी। कुछ गीत भी विभिन्न परिस्थितियों को लेकर लिखे थे। सहसा एक नये प्रोड्यूसर की ओर से देहली के 'हिंदुस्तान टाइम्स' में एक फ़िल्म कहानी के लिए विज्ञापन प्रकाशित हुआ। इसके साथ ही उसे ऑल इन्डिया रेडियो देहली की ओर से नए ग्रन्थों की समीक्षा के लिए एक अनुबन्ध-पत्र मिला। और इसके तीसरे ही दिन रेडियो के एक कर्मचारी 'राज़ मुरादाबादी' का उसे पत्र मिला। उसमें लिखा था: देहली आकर बम्बई जाने के लिए तैयार रहना। भोपाल के रहनेवाले मेरे एक दोस्त हैं—फ़ज़लुद्दीन साहब। उन्होंने एक फिल्म कम्पनी खोली है। भला आदमी मुझे अपने साथ ले जाना चाहता था। मैंने समझाया—भाई मेरी सरकारी नौकरी क्यों छुड़ाना चाहते हो। दूसरे तुम्हे मालूम है मैं उन्हें सिर्फ़ ग़ज़लें दे सकता हूँ। तुम हिन्दी उर्दू दोनों में लिख सकते हो। कहानी, डायलौग, गीत सभी कुछ उन्हे दे सकते हो; इसलिये तुमसे बिना पूछे मैंने उन्हें लिख दिया है कि मैं अपने एक दोस्त को अपनी जगह भेज रहा हूँ। इसलिए

जब तुम देहली आओ, तो बम्बई जाने के लिए तैयार रहना।

अमरनाथ ने रेडियो पर नई पुस्तकों की समीक्षा प्रसारित की और वह क्वींसवे, नई देहली में स्थापित फिल्म कंपनी के कार्यालय गया। थोड़ी देर में फ़िल्म के प्रोड्यूसर, निर्देशक और कैमरामैन तीनों ने मिलकर उसकी कहानी सुनी। कहानी का शीर्षक था—'आँधी के बीच।' थोड़े से परिवर्तनों के साथ कहानी उसकी स्वीकार कर ली गई। अमरनाथ ने उसके लिए पाँच हज़ार रुपये उनसे माँगें; लेकिन निर्देशक ने कहा कि इस क्षेत्र में वे एकदम नये हैं और कहा नहीं जा सकता कि वे सफल होंगे भी या नहीं। अमरनाथ भी नया ही लेखक था, लेकिन कहानी उसे पसन्द है, अतः वह रिस्क लेने को तैयार है। इसके लिए वह एक हज़ार से अधिक नहीं दे पायेंगे। अन्त में सौदा डेढ़ हज़ार पर तय हुआ। अमरनाथ ने कहा कि वह कैश चाहता है। इसका प्रबन्ध दूसरे दिन उन लोगों ने कर दिया। दोनों ओर से एक कन्ट्रेक्ट पर हस्ताक्षर हो गये। 'राज़' को जब यह सूचना उसने दी, तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। दूसरे दिन वह बम्बई के लिए चल पड़ा।

फ़ज़लुद्दीन साहब उससे बहुत अच्छी तरह मिले और समुद्र के किनारे एक होटल में उसके ठहरने का प्रबन्ध उन्होंने कर दिया। वे स्वयं एक छोटी-सी यूनिट के साथ महीम की एक बिल्डिंग में रहते थे। अमरनाथ ने जब-जब उन्हें कहानी सुनाने का प्रयत्न किया, तभी उन्होंने कहा : तुम मेरे दोस्त के दोस्त हो, इसलिये मेरे दोस्त हो। मुझे तुम्हारे ऊपर पूरा इतमीनान है; फिर भी मैं कहानीं सुन लूंगा। अच्छा यह हो कि मेरे काम को अपना काम समझकर अच्छी से अच्छी कहानी और गीत तुम तैयार रखो। मैं अपनी यूनिट बना रहा हूँ। एक शिक्षित हीरोइन और कहीं से मिल जाय, तो दस-पाँच साल हम लोग मिल कर काम करें। अमरनाथ को फ़जलुद्दीन का इस प्रकार बात करना बहुत अच्छा लगा। यह जानकर उसे प्रसन्नता हुई कि यह व्यक्ति सभ्य और शिक्षित है, शिष्ट और शिक्षित व्यक्तियों को अपने

चारों ओर एकत्र करना चाहता है तथा फ़िल्म के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये प्रयत्नवान् है।

समुद्र के किनारे होटल में रहते हुए अमरनाथ ने एकाकीपन का अनुभव किया। उसका मन बहुत उदास हो गया। एक दिन एक पीला पत्ता कहीं से उड़कर उसकी खिड़की में आ गिरा। वह उसे बहुत प्यारा, बहुत उदास लगा। बचपन से ही वह हर वस्तु जिससे उदासी टपकती है, अमरनाथ को न जाने क्यों प्यारी लगती है! मुरझाते फूल, नीड़ तक न पहुँचने वाले पक्षी, सिंधु का तिरस्कृत खारा जल, कभी उसे अपने से भिन्न नहीं प्रतीत हुए। बहुत संभव है किसी जन्म में वह फूल रहा हो और बिना खिले, बिना गंध दिए कुचल दिया गया हो। हो सकता है वह कभी पक्षी रहा हो और आँधी में उसके पंख टूट गए हों। यह भी संभव है कि वह कभी समुद्र का जल रहा हो और खारा समझकर सभी ने उसका तिरस्कार कर दिया हो।

बम्बई में ही उन दिनों उसके कॉलेज-जीवन का एक मित्र कृष्णवीर नगाइच रहता था। कृष्णवीर के हास्य से उन दिनों सारा होस्टिल गूँजता रहता था। कृष्णवीर बाहर से जितना प्रसन्न दिखाई देता था, भीतर से उतना ही न जाने क्यों उदास था। अमरनाथ इस रहस्य को कभी जान नहीं पाया। संभवतः सभी हास्यप्रिय व्यक्ति भीतर से बहुत उदास होते हैं। पढ़ने-लिखने में कृष्णवीर का मन नहीं लगता था और वह जीवन में कुछ कर पायेगा, इसकी आशा औरों को तो क्या; स्वयं उसे भी बहुत कम थी। घर का वह सम्पन्न था; अतः नौकरी करने की कल्पना दूर-दूर तक उसके मस्तिष्क में नहीं थी। और विवाह के नाम से तो वह कोसों दूर भागता था। लेकिन बम्बई में जब अमरनाथ उससे मिला तो वह वहाँ की 'कॉटन टैक्सटाइल डाइरैक्टरेट' में असिस्टेंट कंट्रोलर के पद पर काम कर रहा था, एक सुंदर सुशील लड़की से उसका विवाह हो गया था और कली सी सुंदर एक बच्ची उसके आँगन में खेल रही थी। अमरनाथ को देखते ही कृष्णवीर ने उसे गले से लगा लिया।

फ़ज़लुद्दीन नई हीरोइन की खोज में अपने कैमरामैन को लेकर बाहर चले गए थे।

वर्षा के दिन थे और मौसम बहुत ही सुहावना था। होटल और समुद्र के बीच वाली सड़क पर उड़ती फुहारों को देखकर ऐसा लगता था जैसे निदाघ में धरती ने जो असह्य ताप सहा है, उस पर आकाश पिघल उठा है और बूंदों के रूप मे अपना रोमांचकारी शीतल स्पर्श उसे दे रहा है। इस स्पर्श को पाकर उसके हृदय का ताप उच्छ्वास के रूप में उड़ा जा रहा है। इस सृष्टि में ऐसा कोई नहीं है जो व्यथा से बचकर निकल सके। यहाँ धरती ही नहीं विकल है, आकाश भी किसी के लिए रोता रहता है। समुद्र में आकाश के ही आँसू तो भरे हुए हैं। फिर भी जैसे रोने का अंत नहीं है। प्रकृति का यह रुदन न जाने कब रुकेगा ?

फ़ज़लुद्दीन शिक्षित और सुंदर हीरोइन को लेकर अभी बाहर से नहीं लौटे थे।

कभी-कभी जब वर्षा रुक जाती तो लम्बी दीवाल पर बैठकर अमरनाथ लहरों और चट्टानों का खेल देखता रहता। लहरें उमड़ती हैं और चट्टानों को डुबाकर चली जाती हैं। पर चट्टानें हैं कि उनके हृदय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। तब क्या प्रकृति मे ऐसी भी वस्तुएँ हैं जिन्हें भावुकता किसी रूप में छू नहीं पाती, वह सोचता। फिर भी लहरों का आवेश में उमड़ कर तट तक आना और कभी-कभी दीवाल को पार कर पथ को भिगो जाना, उसे बहुत ही विलक्षण लगता। उसने देखा—जल उन काली चट्टानी को धीरे-धीरे रिस रहा है। हो सकता है, एक दिन वह उनका अस्तित्व ही मिटा दे; पर काली चट्टानों का भी कहीं कोई अन्त है ?

और जब धूप निकल आती तो लहरियों को यहाँ-वहाँ उठते देखकर लगता जैसे चाँदी की मछलियाँ तल पर आ गई हों या उल्टे होकर साँप लुढ़क रहे हों।

एक दिन संध्या समय कृष्णवीर उसे 'रेडियो क्लब' ले गया। वहाँ फ़िल्म के कई व्यक्तियों से उसका परिचय हुआ। "इनसे मिल लो" कृष्णवीर

ने धीरे से कहा, "हो सकता है, ये किसी दिन काम आयें।" समुद्र से घिरा यह स्थान अमरनाथ को अत्यन्त रमणीक लगा। टेबुल पर नगाइच के और दो मित्र थे। वे दोनों शराब पीते रहे और ये दोनों पानी। थोड़ी देर में अँग्रेजी संगीत के साथ कुछ लोग डांस करने लगे। मदिरा और नृत्य के इस विलासी आयोजन के साथ संध्या का घिरना, आकाश का रंग बदलना, तारों का झलकना, शीतल पवन के झोंकों का चलना, समुद्र में दूर पर खड़े जहाजों से प्रकाश का फूटना और साथ ही लहरों का कराहना, एक विचित्र वातावरण उपस्थित कर रहा था।

अमरनाथ होटल लौट आया।

महीम से फ़ज़लुद्दीन का फ़ोन था। अमरनाथ बहुत प्रसन्न हुआ। उधर से आवाज़ आई, "भाई, जिस हीरोइन की तलाश में मैं मारा-मारा फिरा, वह नहीं मिल पायी। एक ख्वाब था, जो टूट गया। फिर भी एक दोस्त के नाते जब तक तुम बम्बई में हो, मेरे मेहमान होकर रहोगे।"

अमरनाथ को सोचने में देर नहीं लगी। वह बोला, "आज से मैं समुद्र का मेहमान हूँ।"

फ़ज़लुद्दीन ने पूछा, "इसका मतलब ?"

"इसका मतलब साफ़ हैं।" अमरनाथ ने कहा और फ़ोन रख दिया।

रात को समुद्र की लहरों में वह बल नहीं रहता। लगता है जैसे दिन भर कर्म में लीन रहने के उपरांत समुद्र का शरीर भी शांत हो गया है और उसकी उमंगें ढीली पड़ गई हैं। जब अंधकार घिर आता है तब आकाश और समुद्र में विशेष अन्तर नहीं दिखाई पड़ता। लगता है जैसे एक काली चादर पृथ्वी पर दूर तक फैला दी गई है। केवल कहीं-कहीं हा-हा-कार की ध्वनि सुनकर या दौड़ती लहरों को देखकर ही समुद्र के जीवन का भान होता हैं।

अमरनाथ को भीतर से बड़ी घबराहट हुई। उस रात वह सो नहीं पाया। जिस शाखा पर घोंसला बनाने की बात वह सोच रहा था, वह तो

बहुत दुर्बल निकली। दूसरे दिन आठ बजे के आस-पास उसने कृष्णवीर को फ़ोन किया। नगाइच ने कहा: तुम जिस पर निर्भर करते हो, उस पर आवश्यकता से अधिक भरोसा करने लगते हो। मैं तो पहले ही समझ रहा था कि यहाँ कुछ होने का नहीं। मेरे एक मित्र आजकल देहली गए है। 'क्लींस रोड' पर सुदराबाई हॉल के सामने उनका फ़्लेट है। जब तक वे न लौटें, तुम वहाँ रह सकते हो। फ़्लेट की ताली उनके गोआनी नौकर के पास है। वह तुम्हारे जूते पर पालिश करने से लेकर खाना बनाने तक का सब काम कर देगा। तुम अपना सामान ठीक रखो। मैं ऑफ़िस जाने से पहले टैक्सी लेकर उधर से निकलूँगा।

क्वीस रोड के फ़्लेट में पहुँचकर अमरनाथ को नयी चिंता ने घेर लिया। संतोष को दिया हुआ वचन कैसे पूरा होगा? क्या आशा का विवाह नहीं हो पायेगा?

नहीं ऐसा नहीं हो सकता।

और फिर अमरनाथ ने दिन को दिन और रात को रात नहीं समझा। उसने दादर, महीम, महालक्ष्मी, मलाड, अँधेरी, तारदेव, चेम्बूर, शिवाजी पार्क, और लेमिंग्टन रोड के चक्कर लगाने प्रारम्भ किए। सफलता के लिए उसने एक दूसरा ही ढंग अपनाया। वह बिना झिझक के फ़िल्म के प्रोड्यूसरों, निर्देशकों, संगीतज्ञों, अभिनेताओं, अभिनेत्रियों, गीतकारों तथा प्लेबैक गायक-गायिकाओं से मिलने लगा। उसने कहा—हिंदी की कई पत्र-पत्रिकाओं में वह फ़िल्म के स्तंभ का लेखक है और बम्बई केवल घूमने आया है। बहुत से लोगों से उसने गंभीर प्रश्न किए और उन प्रश्नों के उत्तर उसे मिले। इसमें उसके पन्द्रह दिन तो नष्ट हो गए, लेकिन कुछ काम भी हो गया। बहुत से लोग इंटरव्यू के बहाने उससे बात करने लगे, अपने हृदय के भेद खोलने लगे, अपने संघर्ष और कठिनाइयों की चर्चा करने लगे। इस बातचीत से उसे बहुत-सी नयी बातों का पता चला—ऐसी बातों का जिनका पता उसे इन लोगों के निकट सम्पर्क में आये बिना चल ही नहीं सकता था। इन लोगों में से कुछ से उसकी भेंट कृष्णवीर

नगाइच के साथ 'रेडियो क्लब' या 'क्रिकेट क्लब ऑफ इंडिया' में भी होने लगी। फ़िल्म के कुछ लोगों को उसने क्रिकेट क्लब में शतरंज या ब्रिज खेलते पाया। वहीं 'स्विमिंग फूल' के पास फ़िल्म में ली जाने वाली कहानियों को लेकर एक प्रसिद्ध निर्देशक से उसकी बहस हो गई। निर्देशक ने दूसरे दिन उसे अपने कार्यालय मे बुलाया और 'आँसू' शीर्षक एक कहानी सुनी। लेकिन अमरनाथ को यह जानकर बहुत दुःख हुआ कि वह उसके लिए डेढ़ हज़ार से ऊपर एक पैसा भी देने को तैयार न था। कॉन्ट्रेक्ट मे उसने यह अवश्य लिख दिया कि शूटिंग के समय यदि लेखक के उपस्थित रहने की आवश्यकता होगी तो कम्पनी अमरनाथ को वह जहाँ भी होगा वहाँ से रेल के प्रथम श्रेणी के किराये के अतिरिक्त ३०) रोज़ देगी। अमरनाथ चैक लेकर लौट आया।

अपने विद्यार्थी जीवन में अमरनाथ ने कुछ गीत लिखे थे। ये गीत रेडियो पर बहुत सफल हुए थे। इन गीतों की प्रतिलिपि उसके पास थी। समय मिलने पर उसने कुछ गीत बम्बई में भी लिखे थे। कुछ गीत यहाँ आने से पहले आगरे में लिखे गए थे। इस प्रकार एक बहुत बड़ी संख्या में गात उसके पास हो गये थे। बम्बई में यह गीतकारों का युग था और ऐसा सुना गया था कि कुछ गीतकार एक गीत के एक हज़ार रुपये तक लेते हैं। लेकिन अमरनाथ बंबई के लिये अपरिचित व्यक्ति था; अतः वह यह आशा तो नहीं करता था कि उसके गीतों के उसे बहुत अधिक पैसे मिलेंगे; फिर भी उन्हें बेचा जा सकता था। गीतों में साहित्यिकता बिल्कुल थी नहीं और बिना आयास के उसने उन्हें लिखा था। समय पड़ने पर एक दिन में वह ऐसे तीन-चार गीत तक लिख सकता था। अतः अब जब वह किसी से मिलता तो गीतों की चर्चा करता और किसी न किसी बहाने अपना एकाध गीत सुना देता। इतना करने पर भी उसके गीतों की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

एक दिन वह अपने क्वींस रोड वाले फ्लैट में बैठा एक गीत लिख रहा था कि फ़ोन आया। फ़ोन एक फ़िल्म-प्रोड्यूसर का था। उसे बहुत

प्रसन्नता हुई। उधर से फोन! उसके लिए यह एक असाधरण घटना थी।

"कौन साहब हैं?" एक स्वर ने पूछा।

"नमस्कार। मैं अमरनाथ बोल रहा हूँ।"

"आपसे एक बात पूछनी थी।

"आज्ञा करें।"

"रात देहली से कुछ गीत आ रहे थे;—मेरे प्राणों मे प्यासा-सा चातक बसे—क्या यह गीत आपका है।

"जी हाँ, है तो।"

"प्रेम का घर है दूर?"

"वह भी मेरा है।"

"—मत पूछ कि क्या होगा अंजाम मुहब्बत का?"

"इस ग़ज़ल को भी ख़ाकसार ने ही लिखा है।"

"तब क्या आप नीलिमा गांगुली को जानते है?"

अमरनाथ चौंका। उसने स्वर को संयत करते हुए कहा, "आज से बहुत पहले जानता था। क्यों, उन्हें आपने कैसे याद किया?"

"हमारे म्यूजिक डाइरैक्टर पास ही बैठे हैं। हैं तो पंजाबी; लेकिन फ़िदा हैं बंगाली लड़कियों पर। नीलिमा गांगुली से बहुत प्रभावित हैं। एक बार 'इंडियन लिसनर' में उसका फ़ोटो देख लिया था। बस, फिर न पूछिये। रात उसने देहली से आपके गीत ब्रॉडकास्ट किए। हज़रत मेरे घर पर ही थे।आपके नाम से भी थोड़े परिचित हैं। सोचते हैं, शायद आप उन्हे जानते हों।"

ओह! यह बात है अमर ने अपने मन में सोचा। नीलिमा की छाया से भी उसका परिचय न था, लेकिन निर्देशक का स्वार्थ उसे बुरा लगा। हँसते हुये बोला, "तो आपने नीलिमा के लिये मुझे याद किया?"

"बात एकदम ऐसी नहीं है। अपने आगामी चित्र के लिये गीत हम आपसे चाहते हैं। कहानी एक संगीत-प्रेमी के जीवन पर आधारित होगी। संगीत-प्रधान होने से गीत इसमें कुछ अधिक रहेंगे। क्या कल आप किसी

समय आकर हम लोगों से मिल सकते हैं ? और हाँ, क्या आप नीलिमा को जानते हैं ?''

अमरनाथ के फिर हँसकर कहा, ''बहुत अच्छी तरह ।''

''कहाँ की रहने वाली हैं ?''

''आगरा की ।''

''पिता इनके क्या करते है ?''

''स्वर्ग में आनन्द ।''

''तो फिर ये रहती किससे साथ हैं ?''

''अपनी वृद्धा मा के । एक छोटा भाई है ।''

''इसका तात्पर्य है कि विवाह अभी नहीं हुआ ?''

''मुझे तो कठिन ही लगता है ।''

''क्यों, ऐसी क्या अड़चन हैं ?

''उनकी हठ है कि विवाह किसी संगीत-प्रेमी से करेंगी—चाहे वह उनकी जाति का न भी हो। लेकिन उस पर भी एक कठिनाई है । वर कुछ बड़ा चाहती हैं, बराबर की अवस्था का नहीं । कहती हैं बराबर की अवस्था वाला तो साधना मे कुछ कच्चा होगा । उसकी कोई ख्याति भी नहीं होगी । बुद्धि अपरिपक्व होने से वह उनके हृदय को समझ भी नहीं पायेगा । अब, ये सब बातें एक स्थान पर कहाँ मिलेंगी ?''

''वाह ! विचार तो उत्तम हैं ।''

''मैं तो ऐसा नहीं समझता ।''

''आप समझते हैं, अगर हम उन्हें यहाँ बुलाना चाहें तो वे आ सकेंगी ?''

''अकेली तो नहीं आयेंगी । हाँ, मा और भाई के साथ आ सकती हैं । साथ ही उन्हें इस बात का विश्वास होना चाहिये कि यहाँ उन्हें अपनी कला के विकास का अवसर मिलेगा और उनके सम्मान का पूरा ध्यान रखा जायगा । हो सकता है वे मुझे भी साथ रखने पर जोर दें । अब पता नहीं आप इतना खर्च बरदाश्त कर पायेंगे या नहीं ।

"जी नहीं, हम पूरा खर्च बरदाश्त करेंगे। तो कल आप आ रहे हैं।"

"जी, हाँ।"

दूसरे दिन उन दोनों ने उसके गीत सुने। संगीत-निर्देशक ने बड़ी आत्मीयता से बातें की। पचास-साठ गानों में से दस गीत चुन लिए गये। उनका मूल्य—केवल एक हजार रुपये—सौ रुपये प्रति गीत। अमरनाथ ने अपने गीत समेट लिए और वह निराश होकर वापिस चला आया।

इस बीच अमरनाथ का परिचय एक ऐसे व्यक्ति से हो गया था जो फ़िल्म-जगत में बड़े पौयूलर थे। वे कहानी, संवाद, गीत सब कुछ लिख सकते थे। दो-एक चित्रों का उन्होंने सफल निर्देशन भी किया था; लेकिन जब अपनी पिक्चर बनायी तो वह असफल हो गई। इतने पर भी वे हताश नहीं हुए और एक दूसरे चित्र का विज्ञापन उन्होंने फिल्म से सम्बन्धित पत्रों में दे दिया। अपने सपनों की चर्चा वे अमरनाथ से प्रायः करते रहते थे। आदमी थोड़े चालाक क़िस्म के थे और उनके अपने कोई सिद्धान्त नहीं थे; इसलिये अमरनाथ जानता था कि वे किसी दिन अवश्य सफल होंगे। इस समय वह उन्हीं के पास बैठा हुआ था। एक हज़ार में अपने दस गीतों की चर्चा उसने उनसे की।

"आप इन गीतों के लिए क्या चाहते है ?"

"चाहता तो बहुत कुछ हूँ; लेकिन इस समय दो हज़ार की ज़रूरत है।"

फिल्मी मित्र ने अमरनाथ की ओर देखा, सिर नीचा किया, फिर सोच कर कहा, "यह बात मेरे और तुम्हारे बीच की है; लेकिन अगर तुम ५००) खर्च कर सको तो मैं तुम्हे २०००) दिलवा सकता हूँ।"

"किसके ऊपर ?"

"ये ५००) मेरे होंगे।"

"अर्थात् आपको ५००) की रिश्वत दूँ ? नहीं, यह नहीं हो सकता !"

"इसे आप रिश्वत क्यों समझते हैं। आपके ये गीत मैं २०००) में ख़रीदता हूँ। इन्हे मैं २५००) में बेचता हूँ। मित्र के नाते आपको मेरा थोड़ा-सा काम करना होगा।" उसने सचमुच २०००) का चैक अमरनाथ के नाम काट दिया।

यह एक नाटकीय घटना थी। अमरनाथ ने पूछा, "मुझे अब क्या करना होगा?"

उस व्यक्ति ने फ़ोन उठाया। प्रोड्यूसर और संगीत-निर्देशक दोनों एक ही जगह मिल गये। 'हलो' 'हलो' के उपरान्त थोड़ी देर व्यर्थ की बातें होने लगीं।

इधर से कहा गया, "अमाँ यार, और भी कुछ सुना है! बंबई में फिल्म जॉइन करने अमरनाथ नाम का एक आदमी आया हुआ है। वह थोड़े दिन भी रह गया तो मुझे लगता है, भविष्य में केवल उसकी कहानियाँ और गीत ही चलेंगे।"

उधर से उत्तर मिला, "कहानी का तो मुझे पता नहीं; लेकिन गीत बहुत अच्छे हैं।"

"फ़ोन मैंने इसलिये किया था प्यारे भाई, कि अपने नये चित्र के लिये मुझे कुछ गीतों की आवश्यकता है। उसने मुझे कुछ गीत सुनाये। सच यह है कि वे मुझे भी पसन्द आये। लेकिन वह कमबख़्त कुछ इस किस्म का आदमी है कि गीत देता ही नहीं। कहता है पहले तुमसे बात हुई है। जब तुम मना कर दोगे, तब किसी और से बात करेगा। तुम्हें तो गीत नहीं चाहिये न?"

"नहीं, मुझे तो ऐसी ख़ास ज़रूरत नहीं है। मैंने और दो आदमियों से लिखने को कह दिया है। लेकिन मैं तुम्हें चौकन्ना करना चाहता था। तुमने किस रेट से तय किया है?"

"मैं तो ३५०) गीत के हिसाब से देना चाहता हूँ।"

"तुमने ग़ज़ब कर दिया। क्या मार्केट बिगाड़ने पर तुले हुए हो? मैं तो इतना नहीं दे सकता।"

"मार्केट का उस आदमी को सब पता है। वह यहाँ की ग्रामोफ़ोन कम्पनियों में भी हो आया है। ३००) के हिसाब से तो वे ही लेने को तैयार हैं। पता नहीं बात कहाँ तक ठीक है; पर एक कम्पनी ने सेल पर ५ प्रतिशत देने का आश्वासन भी उसे दिया है। अब बताओ हम क्या करें?"

"नहीं भई, अपनी तो हिम्मत नहीं है। अमर के गीतों में कोई ख़ास बात नहीं है। ऐसे गीत यहाँ कोई भी लिख सकता है।"

फ़ोन रख दिया गया।

फ़िल्मी मित्र ने कहा, "जाओ दोस्त, तुम्हारा काम हो गया।"

अमरनाथ फ़्लैट में पहुँचा तो गोआनी नौकर ने बतलाया—दो बार एक जगह से फ़ोन आ चुका है। फ़ोन मिस गांगुली के प्रेमियों का था। अमरनाथ जानबूझ कर एक दिन बाद गया। दूसरे दिन उसने अपने फ़िल्मी मित्र का चैक भुनाया। कौन जाने ऑनर हो, न हो। यह बम्बई है। इसमें सब कुछ संभव है। गीतों का सौदा २५००) पर तय हुआ। ५००) अमरनाथ अपने मित्र को दे आया।

इसके उपरांत उसने बम्बई से विदा ली।

देहली और बम्बई में अपनी दो कहानियों और दस गीतों से उसने पाँच हजार रुपये कमा लिए थे। इनमें से कुछ खर्च हो गए थे। जो शेष बचे, उन्हें संतोष को देकर वह आगरा लौट आया।

घर लौटा तो उमा बड़ी आशा कर रही थी। उसने उत्साहित होकर पूछा, "कहो, क्या, कमाकर लाए?"

"कुछ नहीं उमा। बम्बई तो डकैतों का शहर है। वह जगह ऐसी नहीं जहाँ मैं काम कर सकूँ। पैसा नहीं रहा तो मैं लौट आया। कृष्णवीर स्टेशन पर छोड़ने आया था। वह नीरजा के लिए एक सुन्दर-सा पालना और बहुत-से खिलौने दे गया है। देखो न!"

उमा ने कुछ नहीं कहा।

३५

अमरनाथ मुरादाबाद से बारात के साथ ही आया था। बारात में बहुत कम आदमी थे। लाजपत आधुनिक और प्रगतिशील विचारों का व्यक्ति था। आशा उसे पसन्द थी। इससे अधिक वह कुछ नहीं चाहता था। अमरनाथ की इच्छा थी कि विवाह से एक सप्ताह पूर्व वह वहाँ पहुँच जाये। लेकिन संतोष ने उसे लिखा कि वह सब प्रबन्ध कर लेगी। न कर सकी तो करा लेगी। इससे वह निश्चिन्त-सा हो गया। लाजपत के पिता कोई झंझट न खड़ी कर दें, इससे उसने बारात के साथ जाना ही ठीक समझा। बारात के ठहरने खाने-पीने का ठीक प्रबन्ध था। प्रबन्धकों में कुछ काशी के, कुछ बाहर के लोग थे। बाहर के व्यक्तियों में से वह किसी को भी नहीं पहचानता था। इससे उसे बड़ा संतोष हुआ। बारात के ठहरने के उपरांत वह सीधा संतोष से मिलने गया। घर मेहमानों से भरा हुआ था। उसने एक छोटी बच्ची से कहकर संतोष को बुलवाया। एक तो वह बहुत देर में आयी और जब आयी तो बहुत व्यस्त दिखाई दी। अमरनाथ की समझ में कुछ भी नहीं आया। वह जनवासे मे लौट गया।

भाँवरों के समय आशा और लाजपत की जोड़ी को देखकर अमरनाथ का हृदय फूल की भाँति खिल उठा। उसे लगा जैसे उसकी अपनी ही बेटी का विवाह हो रहा है। वह संतोष को देखना चाहता था। जीवन से संघर्ष करने और इस लड़की को बड़ा करने में उसने कैसे साहस का परिचय दिया है! उसकी इच्छा हुई कि विवाह होने से पूर्व ही वह संतोष के संघर्षशील जीवन और व्यक्तित्व पर एक छोटा-सा भाषण दे और वह जहाँ कहीं छिपी हो, खींचकर उसे यहाँ ले आवे। पुरुष जाति यह देखकर चकित तो हो कि नारी क्या कर सकती है। वह सिद्ध करेगा कि जिस नारी में विद्रोह की भावना निहित है, वह अपने पैरों पर खड़ी हो सकती है, सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकती है, सबके सामने सिर ऊँचा

करके चल सकती है। तुरन्त ही उसके विवेक ने टोका कि यह स्थान, परिस्थिति और समय इस भाषण के लिए उपयुक्त नहीं है। सम्भव है लोग उसके इस उत्साह का कुछ और ही अर्थ लगावें। सम्भव है स्वयं संतोष इस बात को अच्छा न समझे, संकोच का अनुभव करे और उल्टा अप्रसन्न हो जाय।

इतने में संतोष की ओर के पंडित ने एक स्थूलकाय श्यामवर्ण व्यक्ति को जिनकी मूँछें ऊपर को चढ़ीं हुई थीं, लड़की का पिता कहकर संबोधन किया। अमरनाथ को पहले तो विश्वास नहीं हुआ। सोचा—पंडित को भ्रम हो गया है; लेकिन कन्यादान के समय उसका अपना भ्रम ही दूर हो गया। तो ये आशा के पिता हैं, संतोष के पति। इन्हीं के भय से संतोष ने ठीक-से बात नहीं की थी। चलो अच्छा ही हुआ, पति-पत्नी मिल गए!

—अब ?

—अब क्या ? जो संसार में होता आया है, वही हो रहा है।

—लेकिन यह हुआ कैसे ?

—जीवन में बहुत-सी घटनाएँ नित्यप्रति घटती हैं; जिन पर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता। यह भी एक ऐसी घटना है।

—मैं अब कहाँ ?

—मूर्ख, तू कब कहाँ था ?

विवेक ने मन में उगते प्रश्नों को मिटा दिया; लेकिन हृदय का मूल अंतर्द्वन्द्व नहीं मिटा।

विवाह हो गया।

रात्रि के तीसरे प्रहर में जब अमरनाथ लाजपत के घर वालों के साथ जनवासे की ओर लौट रहा था तो एक बच्ची ने दौड़कर एक पर्चा चुप से उसके हाथ में दिया। पर्चा संतोष ने भिजवाया है, यह समझते उसे देर न लगी। दूसरे दिन संध्या के छह बजे उसे बुलाया गया था। अमरनाथ ने

पर्चे को फाड़कर फेंक दिया। उपेक्षा और झुँझलाहट से उसने कहा, "उँह !"

दूसरे दिन संध्या के पाँच बजे तक अमरनाथ का निश्चय था कि उसे वहाँ जाने और संतोष से मिलने की कोई आवश्यकता नहीं है; लेकिन फिर भावना की कोमलता का एक झोंका, जिसमें मन की कुछ दुर्बलता निहित थी न जाने कहाँ से आया कि वह जाने को विवश हो गया। संतोष छत पर खड़ी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। दृष्टि मिलते ही वह ऊपर चला गया। इस कमरे में संतोष के साथ वह न जाने कितनी बार बैठा था।

संतोष ने मेज़ को खींचकर अमरनाथ के सामने कर दिया। पत्तल में कचौड़ियाँ और आलू की तरकारी थी। एक तश्तरी में थोड़ी सी मिठाई। शीशे के ग्लास में पानी।

अमरनाथ ने मेज़ को हटा दिया। ग्लास का पानी बिखर गया।

"खाते क्यों नहीं ?" संतोष ने अधिकार के स्वर में पूछा।

"मुझे नहीं खाना—बस।" अमरनाथ ने झुँझलाहट में उत्तर दिया।

संतोष जानती थी यह झुँझलाहट सच्ची है। एकाध बार पहले भी वह इसे देख चुकी थी। उसने आग्रह नहीं किया। वह जानती थी कि अधिक हठ करने पर वह खाना उठाकर फेंक देगा। उसने पत्तल उठाकर दीवाल के पास रख दी। मेज़ के पानी को साफ़ करके मेज़ कोने में सरका दी। छत पर जाकर ज़ीने की साँकल उसने लगा दी। कमरे में लौटकर आयी तो अमरनाथ झुँझलाहट में टहल रहा था।

"यह आदमी कौन है ?" उसने पूछा।

संतोष ने साहस बटोरकर हँसते हुए उत्तर दिया, "मेरे पति हैं।"

"यही वह व्यक्ति है जिसके लिए तुमने कहा था कि मैं उसका मुँह नहीं देखना चहती ?"

"हाँ।"

"कि मैं उससे बात नहीं करना चाहती ?"

"हाँ।"

"कि वह मेरे लिए मर चुका है ?"

संतोष चुप।

"जवाब दो।"

"हाँ, कहा तो था····।" काँपते हुए स्वर में संतोष ने कहा।

"फिर यह यहाँ कैसे है ?"

"तुम मेरी पूरी बात तो सुनो···"

"अब क्या बात शेष रह गयी है ?"

"लाजपत के पिता का पत्र आया था कि उन्होंने सुना है लड़की के पिता जीवित हैं। लिखा था, आपमें और उनमें किस बात को लेकर मनमुटाव है; उससे मुझे कुछ लेना-देना नहीं। आप उच्च कुल की हैं और आपके पति प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। मैंने सुना है कि बेटी आशा के पिता के पास रुपये की कमी नहीं; लेकिन लड़का मेरा नए विचारों का है। वह दहेज़ नहीं लेना चाहता। वह स्वतंत्र है, कमाता है और अपनी मा को उसने अपनी ओर मिला लिया है; इसलिए वे दोनों जो चाहते हैं वही ठीक है। मुझे आपके भेजे पाँच हज़ार मिल गए हैं। मेरे लिए इतना बहुत है। लेने देने के मामले में मैं अब हठ नहीं करूँगा। फिर भी लड़की का कन्यादान पिता ही करेगा—इसके लिए मैं आग्रह करूँगा। आप अपने पति को कैसे ही मनाकर लायें। यह आपका काम है। यदि वे विवाह के समय उपस्थित नहीं होंगे, तो इससे दोनों ओर की बदनामी होगी। लोगों के मुँह नहीं रोके जा सकते।...इसी डर से···"

"तो तुम उन्हें मनाने गयीं ?"

"नहीं, मैंने केवल उन्हें एक पत्र लिखा था। उसी पर वे आ गए।"

"और अब वे जीवन भर तुम्हारे साथ रहेंगे ?"

"कहते तो यही हैं।"

"तुम क्या चाहती हो ?"

"मेरी समझ में नहीं आता, मैं क्या करूँ। आशा की कल्याण-

कामना से प्रेरित होकर मैंने उन्हें बुलाया था। मुझे लगता है कि इस समय यदि लौट भी गए, तो वे जल्दी-जल्दी बार-बार आयेंगे।"

"और तुम मना नहीं कर सकोगी?"

"अब कैसे मना किया जायगा?"

"इस समय वे कहाँ है?"

"बाहर गए हैं। देर से लौटेंगे।"

"पीकर लौटेंगे?"

"हाँ। वह बहुत पुरानी आदत है। इधर खाँसी बहुत उठने लगी है। कह रहे थे—तुम्हे समझने में मुझसे भूल हुई। मुझे माफ़ कर दो। देखो, तुम्हारी वजह से मैंने दूसरी शादी नहीं की। मेरा जो पैसा है वह सब भाई-भतीजे खाए जा रहे हैं। रिटायर होने के बाद मैं बिल्कुल अकेला पड़ जाऊँगा। कैसे जीवित रहूँगा! पता नहीं कोई मुझे ज़हर दे-दिला दे।"

"उस पहाड़िन का क्या हुआ?"

"कहते हैं वह तो खाना पकाने को रहती है। जिस दिन तुम आओगी, उसे मैं निकाल दूँगा।"

"उससे इनका अनुचित सम्बन्ध नहीं है, तुम इस बात का विश्वास करती हो?"

"विश्वास तो नहीं करती; लेकिन उन्होंने अपनी भूल स्वीकार कर ली है..."

"यह कुछ नहीं है। जैसे-जैसे तुम्हारा यश फैला है, वैसे ही वैसे ये प्रभावित होते चले गये हैं; यद्यपि तुम क्या लिखती हो, इसका एक अक्षर भी ये नहीं समझ सकते। दूसरे, अपने बुढ़ापे का अभी से प्रबन्ध करना चाहते हैं। यह सच है कि पहाड़िन या भाइयों पर विश्वास नहीं किया जा सकता; लेकिन इस व्यक्ति ने जीवन भर तुम्हें दुःख दिया है। और इतने आगे बढ़कर अब पीछे लौटना ठीक नहीं है। जिस उद्देश्य को लेकर तुमने नया जीवन प्रारम्भ किया था, जब वही विफल हो जायगा, तो इस समझौते

से क्या फ़ायदा है ? आशा के विदा होने पर तुम इनसे स्पष्ट कहो कि अब ये कभी वहीं आयेंगे···"

संतोष चुप होकर अमरनाथ के मुँह की ओर ताकने लगी।

"मेरे मुँह की ओर क्या देखती हो ? तुम्हे यह सब कहना होगा।"

"उन्होंने अपनी भूल स्वीकार कर ली है, तब भी ?"

"हाँ। यह स्वीकृति कोई अर्थ नहीं रखती। यह एक धोखा है। मैं यह नहीं सोच सकता कि तुम्हारे विद्रोह का लक्ष्य इतना छोटा था।"

"कितना छोटा ?"

"अपने पति को झुकाना।"

"वे ख़ुद झुके हैं।"

"लेकिन अब वह समय आ गया है जब तुम उस आदमी को उसके निर्दय व्यवहार का उत्तर दे सकती हो। यह उत्तर तुम्हें मेरे सामने देना होगा।"

संतोष कुछ देर चुप रही, फिर उसने थोड़ी दृढ़ता से कहा, "नहीं, यह उत्तर मैं उन्हे नहीं दे सकती।"

अमरनाथ ने संतोष के दोनों कन्धे झकझोरकर पूछा, "क्यों नहीं दे सकतीं ?"

संतोष ने आवेश में भरकर कहा, "तुम मुझे इतना प्यार नहीं करते जो यह उत्तर मैं उन्हें दूँ।"

संतोष के गाल पर तड़ाक से एक चाँटा पड़ा। वह आँख फाड़कर अमरनाथ की ओर देखने लगी। अमरनाथ ने स्वर में क्षोभ भरते हुए कहा, "बेवकूफ़, यह प्यार का प्रश्न नहीं है ; उससे बड़ी बात है—नारी के विद्रोह की बात, उसकी मुक्ति की बात। तुम अँधेरे में लड़खड़ाती घूम रही थीं और जो मशाल तुम्हारे हाथ में जलाकर दी गयी थी, उसे तुमने भूल से फेंककर, अपने चारों ओर अँधेरा कर लिया है।"

आवेश शांत होने पर ज़ीने की ओर बढ़ते हुए उसने फिर कहा, "संतोष, हो सकता है कि मैं अपने अधिकार से बाहर चला गया होऊँ; लेकिन मैंने कोई अन्याय किया है, ऐसा मुझे अब भी नहीं लगता। बहुत

बार पुरुषों ने स्त्रियों पर हाथ उठाया है; लेकिन मरने से पहले यदि तुम कभी समझ सकीं कि यह भिन्न प्रकार का हाथ था, तो मुझे संतोष होगा।... और यह तुमसे मेरी अंतिम भेंट है।"

इतना कहकर वह ज़ीने से नीचे उतर कर न जाने कहाँ चला गया।

● ● ●